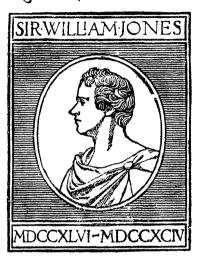
BIBLIOTHECA INDICA:

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

NEW SERIES, No. 1276.

चनुमान-दीधिति-प्रसारिणी



ANUMANA DĪDHITI PRASARINI

 $\mathbf{B}\mathbf{Y}$

KRISHNA DAS SARVABHAUMA WITH TATTVACINTAMANI AND DIDHITI

EDITED BY

PANDIT PRASANNA KUMAR TARKANIDHI

Professor, Sanskret College.

EASCICULAS I.-1//

Calcutta:

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHAKRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS.

No. 5, Nandakumar Choudhury's 2nd Lane.

AND PUBLISHED BY THE ASIATIC SOCIETY, 1, PARK STREET.

1911.

ASIATIC SUCIETY OF BENUAL.

No 1, PARK STREET, CACUTTA, AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MR. BERNARD QUARITCH, 11, GRAFTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W., AND MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied - some

of the Fasciculi being out of stock BIBLIOTHECA INDICA. Sanskrit Series • Advarta Brahma Siddhi, Fasc 2, 4 @ /10/ each ... Rs. Advaitachinta Kaustubha, Fasc 1-3 @ /10/ each ... 1 14 Advantacining Radiscining (10) each Aitarēya Brāhmaṇa, Vol I, Fasc 1-5; Vol. II, Fasc 1-5; Vol. III, Fasc 1-5; Vol. IV, Fasc 1-8 @ /10/ each ... 10 Altereya Lochana. n -Aņu Bhāshya, Fasc 2-5 @ /10/ each 8 Aphorisms of Sāndilya, (English) Fasc 1@1/-1 n Aştasāhasrikā Prajñāpāi amitā, Fasc. 1-6 @ /10/ each 12 *Atharvana Upanishad, Fasc 4-5 @ /10/ each Atmatattaviveka, Fasc I @ /10/ each 1 4 0 10 Açvavaidyaka, Fasc 1-5 @ /10/ each Avadana Kalpalatā, (Sans. and Tibetan) Vol 1, Fasc 1-7; Vol 11 Fasc. 1-7 @ 1/ each 15 0 Balam Bhatti, Vol. I, Fasc 1-2, Vol 2, Fasc 1@/10/each ... 14 Baudhāvana S'rauta Sūtra, Fasc 1-3 Vol II, Fase 1-3 @ /10/ each *Bhāmatī, Fasc 4-8 @ /10/ each 3 ... Bhātta Dipikā Vol. I, Fasc 1-6; Vol 2, Fasc. 1, @/10 each Baudhyostatrasaugraha Brhaddēvatā Fasc 1-4 @ /10/ each 0 ... 8 Brhaddharma Purāna Fasc 1-6 @ /10/ each ٠. 12 Bodhnearyāvatāra of Çāntideva, Fasc 1-5 @ /10/ each Cri Cantinatha Charita, Fasc 1-3 2 Cri Cantinatha Charita, Fasc 1-3 14 ... Cataduşanı, Fasc 1-2 @ /10/ each Catalogue of Sanskiit Books and MSS, Fasc 1-4 @ 2' each Qatapatha Brāhmaṇa, Vol I, Fasc 1-7, Vol II, Fasc I-5, Vol. III, Fasc 1-7 Vol 5, Fasc 1-4 @ /10/ each Ditto ... 4 14 Vol. 6, Fasc. 1-3 @ 1/4/ each ... Vol. VII, Fasc 1-5 @ /10/ Ditto 2 Ditto 3 Çatasāhasrikā Prajhāpāramitā Part, I. Fasc. I-14 @ /10/ each ... 8 *Caturvarga Chintamani, Vol. II. Fasc. 1-25; Vol III. Part I, Fasc. 1-18. Part II, Fasc 1-10 Vol. IV. Fasc. 1-6 @ /10/ each Ditto Vol. 4. Fasc. 7-8. @ 1/4/ each Ditto Vol. 1V, Fasc. 8-9 @ /10/ Clockavartika, (English) Fasc 1-7 @ 1/4/ each *Crauta Sütra of Apastamba, Fasc. 1 -17 @ /10/ each ... l 12 | Prauta Sütra of Apastamba, Fasc. 1'-17 @ /10/ each | Ditto | Qānkhāyana, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-4; Vol. III, Fasc. 1-4; Vol. III, Fasc. 1-4; Vol. III, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... | .. Çri Bhāshyam, Fa:c 1-3 @ /10/ each ... 11 Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. 1, Fasc. 1-7 @ /10/ each Ditto Achārasārah Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each ... 4 *** 6 ... Gobhiliya Grihya Sutra, Vol. 1 @ /10/ each ... Dutto Vol. II. Fasc. -2 @ 1/4/ each ... (Appendix) Gobhila Parisista Ditto ु परिमहण संः र ि र जी. Ditto Grihya Sangraha ... Haralata Karmapradiph, Fasc. I Kāla Viveka, Fasc. 1-7@/10/each Kātantra, Fasc 1-6@/12/each Kātantra, Fasc 1-6@/12/each Kathā Sarit Sāgara, (English) Fasc. 1-14@1/4/each 174/each 174/ *Kūrma Purāṇa, Fasc. ×-9 @ /10/ each ... Lalita Vistara, (English) Fasc. 1-3 @ 1/- each ... 0 Madana Părijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each 14 Mahā-bhāsya-pradīpēdyēta, Vol. 1, Fasc. 1-9; Vol. 11, Fasc. 1-12 Vol. 111, Fasc 1-10 @ /10/ each Drtfo Vol IV, fasc 1 @ 1/4 ... 19 6

Manutika Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each

Markandeva Purana. (English) Fasc. 1-9 @ 1/- each

4.

व तत्त्वचिन्तामिशाः।

प्रत्यद्योपजीवकत्वात् प्रत्यद्यानन्तरं बहुवादिसमातत्वादुपमानात् प्राग-नुमानं निरूष्यते।

श्रनुमानदीधिति:।

श्रों नमः सर्वभूतानि विष्टभ्य परितिष्ठते।
श्रवण्डानन्दबोधाय पूर्णाय परमात्मने॥१॥
पूर्व्वापरग्रस्यैकवाक्यताप्रतिपत्तये शिष्यानामवधानाय च सङ्गतिं प्रदर्शयज्ञनुमाननिरूपणं प्रतिजानौते प्रत्यचित्थादि।

दीधितिप्रसारिगी।

श्रीगणेशायनम, परदेवतायै नमः। विष्ठभ्येति। न च विष्ठभाः संयोगविशेषः। स च श्राकाशिन समं नास्तीति कथ-मेतदिति वाच्यम्। तत्पदेन (१) सन्नकारित्वस्थैव विवचणात्।

⁽१) विष्टकापदेनेत्वर्थः, तथाच जगिम्माय, तद्रचयार्थं सर्वभूतानि सहक्रता-यस्थितायेत्वर्थः।

श्रवीपजीव्योपजीवकभावः फलतः खरूपः प्रत्यचफलस्थानुसित्यनुव्यवसायादेरनुसित्युपजीवकतः ऽपि न सर्व्वाः प्रत्यचप्रसितयस्तया ।

स्वयमेव विभ्वन्तरनिरासात् वा। श्रखखिति। ईश्वरे स्वयमेव नित्यसुखव्यवस्थापनात् एतदुक्तम्। ननु सङ्गतं हि निरूप्यम् तदुपनिबन्धश्व मूले व्यर्थः इत्यत श्राह पूर्वेति।

तथाच सङ्गित (१), व्याप्या तथा चैकवाक्यतानुमानमित्यर्थः (२)। ननु िलन्तावदेकवाक्यत्तम्। न तावत् विणिष्टैकार्थान्वयबोधजनकत्तम्। प्रक्षत एव तदमावात् नापि तदेकतात्पर्यक्षतः, विभिन्नतात्पर्यकेऽपि प्रसङ्गादिसङ्गतिसत्त्वादित्यतः
बाह शिष्यानामवधानायेति प्रत्यचिति तु लिखनं भ्रमविजृश्यितभेव, ब्राभासग्रस्थे (३) श्रकारासत्त्वात् प्रत्यचित्यादीत्येव पाठः
साधः। प्रक्षतग्रस्थ स्वरसम्बलितस्यैव लिखनयोग्यत्वादिति।
फलत इति। फलयोरुपजीव्योपजीवक्यभाव एव प्रमानयोरिप
जिज्ञासायाम्परम्परोपयुक्त इति नार्थान्तरमिति।

साचा जिज्ञासो पयुक्तमाच स्वरूपत इति। अनुमित्यनु-व्यवसायादेरिति लौकिकप्रत्यचे विषयस्य कारण्लादिति

⁽१) सङ्गतिसदर्धे प्रतिपादकत्वभेवात् सङ्गतिपदेन याञ्चं एकवाकात्रस्य धन्य एव दक्तेः।

⁽२) अनुमानधन्यः प्रत्यचधन्येकवाक्यतावान् तत्प्रतिपाद्यार्थे सङ्गतिमद्र्धेप्रति-पादकत्यादित्वेवं कृपमनुमानम् ।

⁽३) मृतयन्ये द्रत्यर्थः।

श्रनुमितयस्तु सर्व्वाः साचात् परम्परया वा व्याप्तप्रादिप्रत्यचोपजीवका । पुरस्कृतश्चायमुपजीवक-तोत्कर्षः ।

यदापि सक्तनमेव प्रत्यच्यमलसुपजीवत्यदृष्टजननीं

भावः। श्रादिपदेनामुभित्यात्मकविशेषणञ्चानजन्यविशिष्टवैशिष्ट्य-प्रत्यचं संग्टहीतम्।

ननु प्रमिति विभाजकथर्भसामानाधिकरखेनापि उपजीव्योपजीवकभावोऽनुमितिप्रत्यच्योः सभ्यवत्येव। स एव कथं
नाहत इत्यत त्राह पुरस्तत इति। त्रयं तह्नभाविच्छिनः समयः
सङ्गेतः, तत्परिच्छेदिकानुमितिसु इदं पदमत्रथकं त्रसतिहच्यन्तरे
हृष्डेस्तत प्रयुच्यमानलादित्यादिरूपा। मल्कर्तव्यतापरिच्छेदिका
च इदं मलर्त्तव्यं, मल्कृतिं विना श्रमत्वे सति मदिष्टसाधनत्वादित्यादिरूपा, एवमादिपदादिष्टसाधनतानुमितिरिप (१)
बोध्याः, ननु तथापि प्रमिति विभाजकोपाध्यवच्छेदेन नोपजीवकता, प्रमिति विभाजकोपाधः प्रत्यचलस्य ईखरज्ञानहत्तित्वात्,
तथाच क पुरस्तार इत्यत श्राह ईरखप्रत्यचमिति तथाच प्रसिति
विभाजकोपाध्यवच्छेदेन नोपजीवकता, किन्तु फलतावच्छेदकावच्छेदेन, तच जन्यप्रत्यचलमेव इति भावः। हष्टहारित।

यद्यपि श्रद्धष्ठजनकमपि दृष्टदारकमेव तथापि दृष्ट-

⁽१) वागोमहिष्टसाधनः माडशाधिकारिप्रवर्त्तकप्रमाणशब्द्वोधितकर्त्तव्यता-कत्वात् इत्येवसिष्टसाधनत्वासुमानस्।

समयमत्कर्त्तेव्यतादिपरिच्छेदिकामनुमितिम् द्रेश्वर-प्रत्यचन्तु न फलं तथापि दृष्टद्वारकमिष्ट तथात्वमा-दरगीयम् ।

दूतरस्याविनिगम्यत्वात्, सर्वञ्चानुमितिकरण-मिन्द्रियापेचोत्पत्तिकम्। श्रनुमितिं भावयतोऽपौ-प्रवरद्गानस्य तत्करणतानिर्व्वाचकप्रत्यासत्तिविरहेण तथात्वात्।

मात(१) द्वारके तात्पर्थं, इतरस्य दृष्टादृष्टसाधारणस्य फलतावच्छे-दृकावच्छित्रसुपजीव्योपजीवकभावं पुरस्कृत्यस्वरूपतस्तमाइ सर्व्व-मिति। अनुमितिमित्यादि। प्रत्यासत्तिः फलसामानाधिकरस्यरूपा, अत्यात्वात् अकरणत्वात्, ननु प्रमितिकरणं प्रमाणम्, तच स्वरूप-योग्यं न च सर्वेत्र स्वरूपयोग्ये फलसम्बन्धो सृग्यते, अरस्यस्यदण्डा-दीनामतयात्वात्, किञ्च फलसामानाधिकरस्यमपि परामभ्रएवा पेचणीयम्। अन्यथा एकस्य पुंसः परामभ्रसत्वेऽन्यस्य परामभ्र-विश्वरस्य व्याप्तिज्ञानवतोऽनुमित्यापत्तेः, तथाच तत्ना(२)वस्त्रकत्वे करणेऽपि तत् (३) कुतो निवेशनीयम् इति चेत्र, ईस्वरज्ञानस्य

⁽१) नसु इष्टमाश्रद्वारकमि अइष्टाद्वारकरेनेमित इष्ट्वारकं तद्य्यसिखं प्रत्यच्चस्यापि संस्कारक्रपादण्द्वाराव्याप्तिस्वरणक्र्यास्त्रमानोपजीव्यत्वादिति चेद्र अइष्टणब्दस्य धम्मीधम्मीपरत्वात्।

⁽२) परामर्थे।

⁽३) सामानाधिकरण्यम्।

सर्व्वं पुनरिन्द्रियं नानुमानाधीनजन्म मनः श्रवण-योरजन्यत्वात्।

दृष्टद्वारा वा तथात्वमादरणीयम् । न चोत्पत्ति-मदपीन्द्रियं दृष्टद्वारकमनुमानमपेचते ।

श्रनुमितिं प्रति तथा कारणलाभावात्, उपादानप्रत्यचलेनैव तस्य कारणलात्, श्रन्थथा तस्य नित्यस्य तत्त्वे फलावश्यभावा-पत्तेः, न चेष्वरीयं ज्ञानं फलोपहितमेविति वाच्यं, कारणता-निर्व्वाहकसम्बन्धेन फलानुपहितत्वात्, तत्र व्याप्ती तथैव निवेशात्, श्रन्थथाऽनियमापत्तेः।

न च कारणतायां सामानाधिकरण्यं न निविष्टं, इति वाचं, येन सम्बन्धेन याइकान्वयव्यतिरेकी तेन सम्बन्धेन कारणल-कल्पनस्यैनोचितलात्, श्रन्यथा श्रतिप्रसङ्गात्, तच सामानाधि-करण्येनिति दिक्, सामानाधिकरण्येन फलोपहितस्वरूपस्येव उपजीव्योपजीवक भावः। जलपरमाणी स्नेहानुत्पत्था तथा व्याप्ते-रनङ्गीकारात्, श्रप्रयोजकलादित्यर्थभावनिरूपणमिति कथित्, फलायोगव्यवच्छित्रं कारणं करणमिति मतावष्टकोनेदमित्यपरे, स्वमते नित्यस्य इत्यादिव्याप्तेरप्रयोजकलमिप्पेत्य श्राह दृष्ट्वारा वेति, तथा चादृष्टाद्वारकप्रमाणतावच्छेदक-सामानाधिकरण्येनोप-जीव्योपजीवकभावः प्रकृते पुरस्कृत इति भावः। उत्पत्ति-मद्पीति। तथा चेन्द्रियलसामानाधिकरण्येन तथोपजीवकलं प्रकृते नास्तीति भावः, न चानुमितिकरण्येश्वरज्ञानस्य दृन्द्र- खयोपजीव्यं निरूप्येवोपजीवकं निरूप्यत द्रित न नियमः क्राचित् कार्य्यं निरूप्यापि कारणनिरूपणात् द्रित चेत् किञ्चातः न हि सङ्गतिरनन्तराभिधानव्याप्या, खानन्तर्य्याभिधान-प्रयोजक-जिज्ञासा-जनज्ञान-विषयो द्यर्थः सङ्गतिः।

जायते च कार्य्य कारणे वा ज्ञाते कार्यात्वस्य कारणत्वस्य वा ज्ञानात् किमस्य कारणं कार्यास्वेति जिज्ञासा ज्ञतएव तयोईयोरेव सङ्गतित्वम्।

यादिकं प्रत्युपजीवकलेन प्रत्यचकरणेऽपि श्रदृष्टा हारको पजीवक-लसत्तात्, एतदप्यनुमानसाधारणिमिति वाच्यं, श्रदृष्टा हारक-पदेनैव वारणात्, तदर्थेष तज्जनका दृष्टा जनकले सति तज्जनकलं न चेखरन्ना नस्य कार्य्यमात्र जनकस्यैतदस्तीति भावः, यत्र यत्र सङ्गतिस्तत्व तत्नानन्तराधिधानम्, तथा चोप-जीवकलमेव सङ्गतिः।

. तचानुमानद्वस्थेव इति मूल एव सुव्यक्तं अतएव तथैव व्यवस्थापितं पुरस्कृत इत्यादिना इति भ्रमं निराकर्त्तुं भूमि-कामारचयित अथिति, आनन्तर्व्यति। आनन्तर्थाभिधानप्रयो-जिका या जिज्ञासातज्जनकं यज्ज्ञानं तदिषयो योऽर्थः सा सङ्गतिरित्थर्थः। सङ्गतिज्ञानस्य जिज्ञासाजनकत्वन्तु अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां सत्प्रतिपच्चवदित्यवधेयं, कार्यसामान्यज्ञानात्वार्थ-

दूराञ्चीपजीवकतायास्तुल्यलेऽपि न चतिरिति मन्तव्यम् । लाघवायावैवोपमानस्य सङ्गतिं प्रदर्शयति बहुवादीति। सुप्रसिद्धतया निरसनीयाल्पवादिविप्रति-पत्तिकालीन सुप्रतिपद्तया चानुमान एव व्यत्यित्सोः प्रथमं जिज्ञासा नोपमानिऽप्रसिडलात् निरसनीयवर्ड-विशेषे जिज्ञासा तया च गुरुणानिरूप्यत इति जिज्ञासायां श्रानन्त-र्थाभिधानप्रयोजनत्वं, घटादिजिज्ञासाजनकसामान्यज्ञानविषये-ऽर्धे श्रतिव्याप्तिवारणायप्रयोजकान्तं. यद्यपि प्रक्ततिज्ञासाया श्रपि उपायेच्छालं श्रतस्तज्जनकेष्टसाधनताज्ञानविषये दृष्टसाधनले इसम्यतिवासि:, तथापि ताहमजिन्नासालाविक्वत्रकार्यता-निरूपितकारणतायालिलमिश्वोधं ताद्यजिज्ञासालाविश्व-लच ताह्यजित्रासालानतिरित्रवृत्तिधमाविक्वत्रलं, यतस्ताद्य-जिज्ञासालस्य कार्य्यतानवच्छेदकलेऽपि न चतिः, न च विशिष्ट-सङ्गतिघटकैकदेशे चतिव्याप्तिः तथा कारणतायाः विषयता-सम्बर्धेनावच्छेदकतापर्यास्यधिकरणलस्य विविचतत्वात् इताभास-लचणवत्।

दृश्यच्चेति सङ्गतिरनन्तराभिधानात्र्याप्यत्वे चेत्यर्थः, तथाच प्रश्यचे उपजीत्यवदुपजीवकत्वमिष वर्त्ततां, न चैतावतािष चितिरिति भावः। श्रतएव तद्यमाविच्छनोपजीवकत्वपुरस्कारे विवादेऽिष न दोषः, परन्तु प्राचीनविचारसु मूलमनुरुद्धै प्रविति ध्येयम्। लाषवाय तात्पर्थलाघवाय-निरसनीयाल्यवादि-विप्रति- वादिविप्रतिपत्तिकत्वेनातिदुरू इत्वाच श्रीत्मर्गिकीं रीतिमनुम्हेग्दं तेन कस्यचिद्दु रू चे प्रथमं जिन्नासोदये-ऽपि न चिति:। तथाचावसरसङ्खोपमाननिरूपणमिति भावः यथा चावसरस्य सङ्गतित्वं तथा व्यक्तमाकरे।

शब्दान्तरसमयग्राहकं सप्रवृत्तिनिमित्तकत्वबोधकं सामान्यतो दृष्टमन्ततोऽदृष्टजनकप्रवृत्तीपयिकञ्चानु-मानमपेच्यते निखिलमेवोपमानिमतीहापि उपजीव-कत्वमेव सङ्गतिरितिकेचित्। सम्भवति चेष्ट निरूपण-

पत्तिकलेनेति सुप्रतिपदतायां हेतुः एवस्तरत्न, ननु प्रतिबन्धकीभूतिजिज्ञासानिवृत्तिरवसरः, सा च स्वरूपसत्येव उपयुज्यते प्रतिबन्धकाभावलात् तथाच तत्न बचणभव्याप्तमित्यतः भाद्र यथाचेति
याकरे द्रति प्रतिबन्धकीभूतिजिज्ञासानिवृत्ती सत्यां वक्तव्यलज्ञानादेव जिज्ञासाजायते द्रति तस्यैव सङ्गतिलं द्रति प्राचीनैरिमधानादिति अत्र एव "विरस्यत्," द्रति प्रन्थादिपरिसमाप्ती तैरिमधीयत द्रति, जिज्ञासितार्थभी घ्रत्वमवसर द्रत्यपि किश्वत्। एवं
प्रसङ्गोपि उपेचान्द्रेलादिकमेव सङ्गतिरिति ध्येयम्। विचारस्तु
अनुमानालोकप्रसारिख्यामनुसन्धेयः।

शब्दान्तरित उपिमितिविषयीभूतिभन्नस्थेत्यर्थः, उपिमिति-विषयीभूतस्य तु श्राह सप्रवृत्तिनिमित्तकिमिति, गवयपदं स प्रवृत्तिनिमित्तकं साधुपदत्वात् इत्याकारकिमत्वर्थः, सर्वेद्वाह योरिप कार्यकारणभावः, अय तत्पूर्व्वकमित्यादिसूचे तत्पूर्व्वकत्वेनानुमाननिक्षपणात् तच्छन्देन व्याप्त्रादि-प्रत्यचपरामर्शादचापि सहचारप्रत्यचजन्यत्वादिना तिझक्षपणात् तस्य च प्रत्यचनिक्षपणाधीनत्वात्। एवमुपमानभिद्वत्वेनानुमाननिक्षपणमपि अनुमाना-पेचमिति संचेपः। तच लचणस्वक्षपप्रामाण्यादिभि-रनुमाने निक्षपणीये करणस्य क्रियाभेदभिद्ममूर्त्तिकत्या, क्रियालचणपूर्व्वकं तक्षचणसाह ॥११॥

यन्तत इति केचिदित्यस्वरमोद्गावनं तद्गीजन्त बहुवादिसन्मत-लादिति हेलसङ्गति: ननु प्रत्यचानुमानयोः सङ्गत्यभिधानेऽपि तिन्द्रूषणयोः पौर्व्यापर्थानियमे किमपि प्रयोजकं नोक्तमित्यत याह सभावति चेति एवं निरूपणयोरिप कार्थ्यकारणभावः सङ्गतिमुद्र्या नो प्राङ्कितो येनार्थान्तरमाप्रङ्केपतिति ध्येयं, ननु करणनिरूपण एव क्रियाया यपेचेति न युक्तम् अन्यथापि तिन्द्रूषणसभावादित्यत याह लच्चणस्वरूपेति लच्चणं तत्नारण-मित्यादिना स्वरूपं तचेत्यादिना प्रामाण्यम् अयेत्यादिना एषु सर्व्याष्ट्रमित्यपेचेति भावः।

अनुमानं निरूप्यत इति मृत्तस्यानुमानविशेष्यकान्वयबीध-जनकात्तात्तस्यैव तत्पदेन परामर्शः इति तथैव व्याचष्टे तचेति ।

निरूपणीये इति सति सप्तमीविशेषणस्य निरूपणस्य विषय-

तत्र याप्तिविशिष्टपच्छमीताज्ञान-जनप्रज्ञानमनुमितिस्तत्वरणमनु-मानम्।

व्याप्तीति तत्व व्याप्तिविविष्टलपचधकील-सामा-नाधिकरण्यावगाहिच्चानजन्यत्वमर्थः कक्षीधारयोत्तर-भावप्रत्ययस्य पदार्थतावच्छेदकदयसामानाधिकरण्य-वचनत्वात्॥ १२॥

तयाँ, अनुमित्याधारत्वात् आधारसप्तमीयमतो न प्रथमान्तान्वय-विरोध दत्यपि किसत् ॥११॥

कर्मधारयेति क्ततिवित्तसमासेभ्यः सम्बन्धावगमः त्व-तल्भ्यामिति कात्यायनवचनादिति भावः ननु भावप्रत्ययस्य समानाधिकरणत्वेन तत्तत्पदार्थतावच्छेदकदयसमानाधिकरणत्वेन वा

श्रक्तः, श्राये नीलत्वोत्पलत्वयोरेव लच्चणागीरवात् नीलोत्पलपदादभेदान्वयानुभवापलापापाताच्च, द्वितीये। श्रनन्तश्रक्तिकल्पनाप्रसङ्गात्, केवलघटत्वादौ च पृथक्शक्तिकल्पनम्। नीलघटीयनीलत्वघटत्वसामानाधिकण्यं द्रत्याकारकानुभवाङ्गीकारे
च श्रनुभवविरोधः, द्रत्येकदेशान्वयविरोधश्वेति, मैवं केवलघटत्व
मित्यादौ भावप्रत्ययस्य कृषाया एव शक्तेः प्रकृतार्थलाभात् तत्र हि

घटेतराष्टित्तत्वे सति सक्तलघटवित्तात्वप्रकारेण घटत्वमुपस्थाप्यते,

ज्ञानपदोपसम्बानन च वाधितासाधारणतज्-ज्ञानलाभाद्मभान्तानुमित्वव्याप्तिरित्याहः। तद्म परा-मर्भन नियमतो व्याप्तिवैशिष्ट्यादि सामानाधिकरण्य-ग्रहे मानाभावात्। गौरवेन च तहिषयक्षत्वेनाहेतु-त्वात्, सम्बन्धसम्बन्धाग्रहेऽपि विशिष्टज्ञानत्वस्थोप-पादितत्वात्॥ १३॥

तत्र च प्रक्षतित एव घटस्य लाभः इतराव्यत्तित्विम्नित्यादावेव भाव-प्रत्ययस्य प्रक्तिः तचापि इतरः व्यत्तित्वम्भावस्यार्थः अन्यया इतर-वृत्तित्वाभावस्य वृत्तित्वाभावपर्यवसन्तया (१) घटत्वादी तद्वीधा-प्रसङ्गात्, एवं इतरव्यत्तित्वयोः सम्बन्धस्य प्रकाते गीरवाच। अस्मन्मते तु वाक्यार्थभर्यादयेव तज्ञाभात् तथाच प्रक्रतेऽपि नील-घटेतरावृत्तित्वास्वयवोधः, न च सामानाधिकरस्यवचन-त्वादिति ग्रम्थविरोधः नीलघटत्वस्यैव विविच्चतविवेकेन नीलत्व-घटत्वसामानाधिकरस्यक्षप्रत्वात्॥ १२॥

न च नीलघटलिमितिशब्दात् नीलकम्बुग्रीवादिमत्त्वबोधः स्थात्, सक्ततदृत्तिलं इत्यत्र तत्तत्त्वमिभव्याद्वतावृत्तिलविशेषण-त्रयेव तिनिरासात् नियमत इति

व्याप्तिविशिष्टवानित्यत तज्ञानिऽपि व्याप्यवानित्यत सुतरां तदभाव: । ननु तथा हितुतैव तत्र मानं दत्यत ग्राह गौरवेनिति ।

⁽१) समनियतत्वेनेतरदृत्तित्वाभावस्य दृत्तित्वाभावादनितिरङ्गत्वादिति भावः।

श्रमखले च ताइशमामानाधिकरण्याप्रसिद्या-तज्ज्ञानासम्भवात् श्रसत्ख्यातिनिरासात् श्रवान्तर-वाक्यायायोग्यत्वनिर्णये महावाक्यार्यज्ञानानुदयात्, विषाणे शशसम्बन्धाभावनिर्णयदशायां शशविषाण-जन्यमिदं कार्मुकमिळादिशब्दे शाब्दवुद्वेत्रह्मणापि दुरूपपादत्वात्।

न च प्रमाणप्रस्तावात् प्रमैव लच्चा यदि च सन्दिग्धपरामशीदिप स्नानानुमिति तदाचरमज्ञान-पदं प्रमापरमिति वाच्चं श्रव्याप्यापचधर्मयोस्तच्वाव-गाहिनापरामर्शेन जनितायां वस्तुतः साध्यवत् पचाव-गाहितया प्रमायासव्याप्तेः । लिङ्गोपहित-लेङ्गिकासान-निरासेनांशिकसमत्वस्थाप्योगात्॥१४॥

ननु माभूत् तथा हेतुता मानं किन्तु विधिष्टज्ञानान्यथानुपपत्तिरेव मानं भविष्यतीत्यत श्राह सम्बन्धसम्बन्धाग्रह इति उपपादितत्वा-दिति ॥ १३ ॥

भवतामि प्रस्वस्थसस्वस्थिवषये तथितरसमू हालस्वनवैल च खेऽिय सम्बस्थसस्वस्थिवषयकसमू हालस्वनतोऽविविकतादवस्थ्यं श्रतो विष-यस्य ज्ञानयोर्व्विशिष्टज्ञाने प्रकारतासस्वस्थः समू हालस्वने च विशेष्यताख्यः सस्बन्धो भेदक इति, नन्तसदैवसामानाधिकरखं तच प्रसिद्धं इत्यत श्राह श्रसत्ख्यातिनिरासादिति, ननु पूर्वेप्रतीतस्य द्रेश्वरतादृशद्गानजन्यत्वस्थातिप्रसञ्जनत्वात् अत-एव व्याप्तिविशिष्टे पच्छमीता तज्ज्ञानं वा द्रत्यादिक-मपास्तम्। व्याप्तिविशिष्टञ्च पच्छमीञ्चेति दन्द्राश्रय-णात् व्याप्तिविशिष्टत्वपचछमीत्वावगाहिज्ञानजन्यत्वं लभ्यते पदार्थयोरभेदेऽपि पदार्थतावच्छेदकभेदेनैव प्रमाणप्रमेयेत्यादिसूचे अन्यच च दन्द्रस्य च दर्शनात्॥ १५॥

तत्र बाधेऽपि ज्ञानपर्यन्तस्य तत्राबाध एव इत्यत श्राह श्रवान्तरेति लच्चेति तथाच ज्ञानपदं प्रमापरिमिति भावः, यदि चेति गन्ध-प्राम्भावाविच्छन्नो घटो गन्धवान् इत्यादावित्यर्थः, उपाध्यायमते सामानाधिकरण्येनेवानुमितिरिति यदि चेत्युक्तं श्रव्याप्येति धूलि-पटलधूमादावित्यर्थः ननु तस्याः श्रपि श्रनुमितेर्निङ्गवच्चांशे भ्रमत्वं इत्यत श्राह लिङ्गोपहितेति॥ १४॥

श्रतिप्रसञ्जकलादिति। ननु भ्रमानुमिती तादृश्विशिष्ट-ज्ञानरूपलस्य परामश्रलस्य देखरज्ञाने श्रमभव एव तस्य सन्माता-वलस्वलात् तत्वयमितप्रसङ्ग दित चेन्न सदनुमिति स्थलीयपरा-मर्शलस्य देखरज्ञानसाधारणतया तज्जन्ये ज्ञानमात्र एव श्रति-प्रसङ्गसभावात् श्रतप्वेति यत एव प्रथमानुमित्यव्याप्तिः श्रत एव दत्यर्थः। पदार्थतावच्छेदकभेदेनेति ननु नौलघटयोरित्यत तादालां कुत्रान्वेति न तावद्यसाँणि तत्र वाधात् नापि धिसाताव- पदार्धदयाभेदबोधकाच कर्मधारयाद्वेदादेदासीनपदार्धदयबोधजनकत्वेनैव द्दन्द्रस्य भेदात्। व्याप्तिविशिष्टपदस्य धर्मापरतया वा व्याप्तिवैशिष्ट्यपचधर्मातयोर्जाभात्। न चैव मालोकोविज्ञव्याप्यो धूमवान्
पर्व्यत द्रति ज्ञानजन्येऽतिप्रसङ्गः एकच तदुभयावगाहित्वस्य उक्तत्वादिति केचित् तदप्यसत् एवमिष्यूमोविङ्गव्याप्यो द्रव्यं पर्व्यतवृत्ति द्रति ज्ञानजन्येऽतिप्रसङ्गात्
एककृपेण (१) तदुभयावगाहित्वोक्ती च मीमांसक-

च्छेदकयोः पदार्थतावच्छेदकालेन तत्राकाङ्काविरहात् हिवचनमत्र साधुतार्थमिति चेत् तर्हि कर्मधारय एवाङ्कीक्रियतां, किमधं हन्दस्य पटार्थतावच्छेदकपर्य्यन्तानुधावनमिति, मैवं पदजन्यपदार्थ-प्रतीतिविशेषक्षरूपस्य पदार्थस्य भेदापेच्चयापदजन्यप्रतीतिविषय-भेद एव हन्दः कल्पते लाघवात् कर्मधारयोत्तरं हिवचनानन्-शासनाच एवघ घटा इत्यवापि हन्दो न दुर्घटस्तव विशेष्यभेदात् प्रकृते तु प्रकारभेदादिति प्रमाणप्रमेयेत्यादि दिश्वतं तेन समं यथाश्रुते हन्दानुपपत्तिर्दृष्टव्या॥ १५॥

नतु कभौधारयस्थलेऽपि दन्दस्य विषयसत्वे कभौधारयः पृथक् किमधेमङ्गीक्रियत दत्यत श्राह कभौधारयादिति

⁽१) नन्वेक धम्मीविष्ठः सधिन्भीययुभवावगाहित्वविवचणात् न घूमी विद्धि-व्याप्यो द्रव्यं पर्वष्टिक्त इति ज्ञानजन्येऽतिप्रसङ्ग इत्यत आहः एक रूपेणेति।

मतानुप्रविशात्। मियस्तदुभयोपश्चेषावगाहित्वस्य च परामर्शाऽव्यापकत्वात्॥ १६॥

न च तदुभयविषयत्वनियतधर्माविष्ठन्नकारणता-प्रतियोगिककार्थ्यताशालित्वमर्थः॥ १०॥

तयाचानुभवभेद एव उभयोः परस्परं भेदकः इत्यर्थः नन्वेकसिन्नेव चैत्रे चैत्रत्वतसम्बन्धानां पदजन्यप्रतिपत्तिविषयाणां भेदे कथं न दन्दः इत्यत श्राह व्याप्तिविशिष्टपदस्येति मीमांसकमतेति व्याप्य-वानिति शाब्दपरामर्थस्थलीयानुमित्यव्याप्तिरित्यर्थः । (१) दितीयं पचं दूषयति मिय इति तदुभयेति व्याप्तिविशिष्टत्वपच्चधमात्वो-भयेत्यर्थे उपश्चेषः सम्बन्धः श्रव्यापकत्वादिति व्याप्तिविशिष्टवा-नित्यादी कदाचित्तदङ्गीकारेऽपि व्याप्यवानित्यादी सुतरामभावा-दित्यर्थः ॥ १६ ॥

न च तदुभयेति प्रक्ततपरामधेलस्य तदुभयविषयलयाप्य-लाइज्ञियाप्योधूमो द्रयं पर्वेतहत्ति इत्यादौ च प्रत्यचं प्रति विषयलेन कदाचिज्जानप्रत्यचं प्रति ज्ञानलादिनोभययापि तदुभयविषलव्याप्यलाभावादित्यर्थः।

न च तत्रत्यचे तत्त्वेनापि कारणलं तच तदुभयविषयलियत-मित्यव्याप्तितादावस्त्र्यमिति वाचं मित्रमते विषयस्य विशेषरूपेण कारणतायां मानाभावादिति तात्पर्थात्॥ १०॥

⁽१) भीमांसकैर्यथाविष्क्रव्याप्यवानयं द्रत्यादि व्याप्यतावच्छेदकानवगाहिपरा-मर्शादत्तिभितिरपलप्यते तथैवात्तिमित्यपत्तापो न्यायमतेपि खाति भावः।

पचधर्मातापदोपादानवैयर्ध्यात्। व्याप्तिविशिष्टं व्याप्तिप्रकारकं यत्पचधर्माताज्ञानं तज्जन्यमिति तु स्यात्। यद्यपि अवापि द्रस्थनसमानाधिकरणाभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकविज्ञत्वाविच्छन्नसमानाधिकरणे-स्थनवानित्यादिपरामर्शजन्येऽतिव्याप्तिः अखण्डव्याप्ते-रप्रसिद्धेः, भ्रमानुमितेर्जच्यत्वे अवाकाशमात्मन द्रत्यादी सुतरां तथा, तथापि तावत्यदार्थानां तथाविधपरस्परो-पञ्चेषावगाहित्वमावं विविच्चतम्॥ १८॥

न च व्यतिरेकिन्यव्याप्तिः, व्यभिचारधीविरोधि-धीविषयलेनान्वयव्यतिरेकव्याप्त्रोरनुगमात्, भवति

पच्छमंतित, न च व्याप्तिविषयतस्य वैयर्थमेव किमिति
नोदिक्कतं, पच्छमंतापदस्य पच्छत्तित्वपरतया साधारण्धमंवह्वामंद्वानादिजन्यसंग्रयादावितप्रसङ्कात्, न चैवमपि व्याप्तिज्ञानप्रत्यचेऽतिव्याप्तिक्तेवेति भावः। सुत्रामिति, श्रात्मनोऽधिकरणाभावादिति भावः, तावत्पदार्थानां व्याप्तिघटकपदार्थानां
तथाविधिति व्याप्तिज्ञाने यस्य पदार्थस्य येन येन सम्बन्धेन यत्र यत्र
विभेषणत्वं तेन तेन तत्र तथात्वावगाहित्वमित्यर्थः, तच्चाधिकरणे
साधनीयत्वं ताह्याधिकरणीयत्वं हत्ती हत्तीयत्वमभावे ताह्याभावीयत्वं प्रतियोगितायामित्याकारकमिति ध्येयम्॥ १८॥

न च व्यतिरेकिणेति तत्र पच्चधमातांत्री साध्याभाव-व्यापका-

हि धूमसमानाधिकरणाखनाभावाप्रतियोगिविक्कस-मानाधिकरणधूमत्वे वक्काभावव्यापकीभूताभावप्रति-योगित्वे वा ग्रहीते नियमतो विक्किव्यभिचारधीविरोधः, तथाविधधूमसभानाधिकरणत्वादिकन्तु न तथा, रास-भादौ तद्गृहेऽपि व्यभिचारग्रहात् व्यतिरेकसहचारेणा-न्वयव्याप्तिग्रहणाश्रयनादा ॥ १६॥

न च भ्रमसंश्योत्तरप्रखद्यं प्रति विशेषदर्शनस्य

भावप्रतियोगित्वस्य प्रकारत्वादित्यर्थः; ननु वङ्गात्यन्ताभाव-वहत्तिर्धूम इति व्यभिचारधौविरोधिनि धूमसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावाप्रतियोगिविद्धसमानाधिरणधूमसमानाधिकरणरासभ-वानितिज्ञाने उक्तरूपसत्वात् तक्जन्य प्रत्यचेऽतिव्याप्तिरित्यत ग्राह तथाविधिति न तथेति न पच्चधर्मतांग्रे व्यभिचारधौविरोधिधौ-विषयः, रासभादाविति धूमे व्यभिचारविरोधेऽपि पच्चधर्मता-ग्रालिनि रासभे व्यभिचाराविरोधादिति भावः।

ननु हेतुसमानाधिकरणेत्याद्यन्वयव्याप्तरेव व्यभिचारविरोधिते विवादः कयं व्यतिरेकव्याप्ती, किञ्च धूमसमानाधिकरणात्यन्ता-भावाप्रतियोगिविज्ञहित्तिवाच्यलविष्मुमवानिति ज्ञानजन्येऽनुव्यव-सायेऽतिव्याप्तिः तस्य पचधमातांग्रे व्यभिचारधीविरोधित्वात्, सामानाधिकरण्याविषयत्वेन च अनुमित्यजनकत्वादित्यक्चेराह व्यतिरेकसहचारेणेति ॥ १८ ॥ हेतुतामते तचातिव्याप्तिः, तथाविधनिश्चयत्वेन तस्य हेतुताया विविच्चतत्वात्, विशेषदर्शनस्य च भमाविरो-धित्वेन तत्त्वमित्युक्तत्वात्। श्वतएव लिङ्गवत्वादिलच्च-णातिदेशवाक्यार्थज्ञानजन्योपमितौ नातिव्याप्तिः तथा-विधवाक्यार्थप्रतिसन्धानेन च तस्य हेतुत्वात्॥ २०॥

न च उपनयार्थज्ञानजन्यन्यायार्थज्ञाने, तक्कव्हेन शक्केतितशब्दान्तरेण वा व्याप्यादिविशिष्टोपस्थिति-द्वाराजनिते शाब्दबोधेऽतिव्याप्तिः । व्युत्पादियष्यते हि महावाक्यार्थज्ञानस्यावान्तरवाक्यार्थधीजन्यत्वं तदादेश्च विशिषक्षपेणोपस्थापकत्विमिति वाच्यं तत्रातिरिक्तस्य पदजन्यत्वस्य कारणतावक्केदकेऽनुप्रविशात् निश्चय-त्वस्याप्रविशाच्च॥ २१॥

न्यायेति प्राचीनमतेनेदम् खमते तु न्यायेन विधिष्टवैधिष्ट्य-

हितुतामत इति मियमत इत्यर्थः उपाध्यायमते विशेष-दर्शनस्थोत्तेजकलात्, स्वमते तु यल्लोटित्याप्यदर्शनं तस्य तदभाव-कोटिवाधकलात् इत्युक्तलादिति मियौरित्युक्तलादिति भावः। संगये सति व्यावर्त्तकधमीदर्भने वा श्रन्थकारस्थलीयघटादि-संगयोत्तरमालोकादिसमवधाने वा एवं कुङ्कुमे गन्धसंग्रयानन्तरं तैलादिसमवधाने वा प्रत्यचस्य जायमानलात्त्रयैव हेतुलिमिति, तयाविधिति श्रतिदेशवाक्यार्थज्ञानलेनित्यर्थः॥ २०॥

न च तथापि तत्ति विशिष्टियेशिष्टिय ज्ञानं प्रति ति विशिषणताव च्छेदकप्रकारक निश्चयत्वेन हेतुत्वात्, ताहणणाब्दबोधे प्रत्यचे च अतिव्याप्तिः, दण्डो रक्तो न विति संशये रक्तदण्डवानयम् द्रति ज्ञानानुदयादिति वाच्यम्॥ २२॥

ज्ञानाजननादुपनयनिगमनाभ्यां जिनते बोधे अतिव्याप्तिबीध्या,
ननु ग्रन्थकारमते महावाक्यार्थज्ञानं प्रति अवान्तरवाक्यार्थज्ञानं
न कारणमित्यत आह तच्छन्देनिति, ननु प्राचीनमते वृिष्ठस्थलप्रकारिणैवान्वयबीधः विशेषप्रकारिणान्वयबीधसु प्रयत्नसाध्यः,
इत्यत आह सङ्गितितित पदजन्यलस्थिति बन्धूपद्भितकलायाद्युपस्थितिर्व्यारणाय तस्यावश्यं वाच्यलादिति भावः। ननु पदच्चानं
करणं पदार्थज्ञानं व्यापारः पदपदार्थज्ञानयोस्य यस्थेति पदच्चानस्य
स्मरण एव जनकलात्, तस्य च संग्रया नात्मकलेन ज्ञानलस्थैव
समुचितलादिति भावः॥ २१॥

पान्दबोध इति पूर्वे खण्डवाक्यार्यज्ञानत्वाविष्ठिन्नहेतुता-मादायातित्याप्तिहेत्ता इदानीं तु प्रत्यचादिसाधारणतत्ति श्रिष-णतावच्छेदकप्रकारकहेतुतामादाय इति विश्रिष्ठः। एवसुप-मिताविष बोध्यं तत्र विवादय इति न लिखितं, दण्डो रक्तो न वेति, अयमाश्रयः विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानन्ताविष्ठश्रेषणमिति न्यायेन विशिष्टस्य वैशिष्ट्यमिति न्यायेन विशिष्टवैशिष्ट्यमिति न्यायेन वा रक्तदण्डवानित्यन देधा छत्रीकुण्डली वासस्वी देवदत्त इत्यनैक्रत

न्नानोपरमेपि विशिष्टविषयोपधानेन दृच्छादेषयोः कृतेय साचात्कारादिशेषणविषयकादिशिष्टसंस्कारादे-

इयमिति न्यायेन एकविशेषणविशिष्टेऽपरविशेषणान्वय इति न्यायेन च देधाभिदाते तत्र च विशिष्टस्य वैशिष्टाविषयकरूपं यदन्भवसाचिकं विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं तत्र संग्रयात्मके निषयात्मकी वा विशेषणतावच्छेदकप्रकारकानुभवसाचिके वैशिष्टाप्रकारक-निश्वयो हेतु: रक्तोदण्डो न विति संग्रयानन्तरम् श्रीचित्यावर्ज्ञितो रक्तदग्डवान् न विति संग्रयः स तु विश्रेषणिमति न्यायेनैव जायते श्रतएवातिरिक्ते विशिष्टवैशिष्टाबोधे मानं नास्ति विशिष्टदयविष-यकमेव ज्ञानमर्थवग्रसम्पद्धं विशिष्टवैशिष्टारूपमिति मित्रमतमपा-स्तम्। दण्डोरको न विति संशयानन्तरमजायमानस्य रक्तो-दण्ड इति ज्ञानानन्तरं जायमानस्य संप्रयनिश्चय साधारणस्य विलचणज्ञानस्य दुरपङ्गवलात् दृदं पुनरच रक्तोदण्डो न वेति संग्रयानन्तरमौचित्यावर्ज्जितस्य रक्तत्वरक्तत्वाभाववहण्डनिरुपित-वैशिष्ट्यावगाहिसंग्रयस्य रत्तत्वनिरूपितद्खवैशिष्ट्यवैलच्चसा पादा रक्तदर्छनिरुपितवैशिष्टावगाहिसंग्रयस्य रक्तत्वे निरुपित-दण्डांग्रे वैशिष्ठ्यवैलचण्यमापाद्य रत्तदण्डनिरूपितवैशिष्टावगाहि-विशिष्टबोधात्मके सुधीभिश्चिन्यमिति॥ २२॥

इच्छाडेषयोर्निर्व्विकत्यकं प्रति कदाचिदिच्छाडेषाव्यविहत प्राक्कालोत्पन्नज्ञानादेव तत्सभवेऽपि विनम्बदवस्पन्नानजन्येच्छाय-नुसरणाप्तायासादाइ क्वतेरिति। साचालारोऽव्र निर्व्विकत्यक- रविशिष्टस्मरणाच तिहषयकगुणानां तच हितुत्वे न्यून-वृत्तेर्ज्ञानस्याप्रविशात्॥ २३॥

द्रच्छादितः संस्काराचानुमित्यनुदयात् संस्कारा-द्यन्यत्वस्य गुरुतया ज्ञानत्वेनैव तच हेतुत्वात् ॥२३।१॥

रूप:, सिवनत्यकस्य विषयां सिवनत्यक्तकितित्वां सिविकत्य-कतः एव सभावात् कितिनिर्व्धिकत्यकतः एव सभावात् कितिनिर्व्धि-कत्यकपूर्वे सिविकपीर्थमपि विषयस्मृतिस्वाकारादान्न विशेषण् विषयकादिति। श्रव च निर्व्धिकत्यकात्मकस्मरणं सिन्नान्तविकन्न-मिति भावः॥ २३॥

गुणानामिति। ननु विशेषणतावच्छेदकप्रकारक गुणलेन हेतुले सत्त्वं किमित्युपेचितम्, विशेषण विषयकलमेव वा हेतुतावच्छेदकमसु अनं गुणलानुधावनेनेति चेत्र, प्रकारता-सम्बन्धेन विशेषणतावच्छेदकवलंशयान्यलेन कारणलात्. गुणल-विषयिलयोरप्रविशात्, न च दण्ड इति स्मृतिमतः पुरुषोदण्डी न वेति संग्रयानन्तरं दण्डिनं पुरुषं सन्देश्चि इत्यनुव्यवसाये व्यभिचारः, विशेषणतावच्छेदक प्रकारकस्य दण्डीति निययस्य तत्वाभावादितिवाचं, नैयायिकमते प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वापत्ति-भयेन व्यवसाय विशेषणानिङ्गित विशेषणीयलस्य व्यवसायेऽनुव्यव-साये नाविषयीकरणात्, न च रक्तदण्डांशे अनुद्धुषसंस्तारसत्त्वात् इति वाचं तत्र प्रत्यचस्य रक्तदण्डांशे सत्तिकषे विनैवाभावात् न च परामर्शानुव्यवसायेऽतिव्याप्तिः सामान्यतः प्रत्यचिषयत्वे न तत्ति दिषयकप्रत्यचे तत्त्वेन कादा-चित्कज्ञानादिप्रत्यचे ज्ञानत्वादिना तत्र हितुत्वं न तु यावानेव तत्तदितरत्वादेर्व्विषयनिष्ठो धर्माः तेन तदिष-यक्तत्वेन च कार्य्यकारणभावः॥

स्मृतेस्तू दोधकाभावादेवाभावात् न च तथापि विनिगमनाविरहा-द्रपनय एव गुणलेन प्रयोजकलमसु विभिष्टवैभिष्ट्यबोधे तु ज्ञान-लेनीत वाचं रत्तदण्डगोचरसंस्कारवतस्त्रत्तीकिकसन्निकर्षविधरस्य रक्तदग्डगोचरनिर्व्विकल्पकापत्तेः न चेष्टापत्तिः उत्तरकालं विशिष्टज्ञानस्यानुभवबाधितत्वादिति सम्प्रदाय विदः। अतेदं चिन्छं रक्तो दण्डो न विति सन्देहवतो रक्तदण्डगोचरानुइइ-संस्कारशालिनश्च रत्तदराङवानिति विशिष्टवैशिष्टाबोधापत्तिर्दुर्वा-रैव, विग्रेष्यांग्रे लौकिकसिवकिष्मचात् रक्तदर्खगोचरस्य सन्देहः उपनयस्य सत्त्वात् तत्र विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्त्रीकारे पूर्वजापि तत् स्वीकारो दुर्वार: एवं प्रक्षष्टदीर्घदण्डगोचरलीकिक-सन्निकर्षवतस्तत् गोचरानुडुषसंस्कारवतश्च प्रथमत एव दीर्घदग्छ-वानिति विशिष्टवैशिष्टाबोधापत्तिः सर्वेषामेव सते प्रथसतो न तत्र विशिष्टवैशिष्टाबोधः ज्ञानलेन विशिष्टवैशिष्टाबोधहेतले त् तिहलस्य इति। ननु अनुमिताविप विशिष्टवैशिष्टाबोधवत संग्रयान्यगुणलेनैव हेतुलमसु लाघवादित्यत श्राह दच्छादित द्रति॥ २३।१॥

मैत्रावलोकित चैत्रिनिर्मित नीलेतर घटति हषय-वादिना तडितुत्वे अनन्तकार्ध्यकारणभावप्रसङ्गात् मानाभावात् अन्ययोपपत्तेश्व । अय विशिष्टस्मरणे ऽतिव्याप्तिः नचोपेचान्यत्वेन तत्व हेतुत्वं उपेचात्वं हि न जातिः, चाचुषत्वादिनाजाति सङ्करप्रसङ्गात्, आं-णिकत्वोपगमाच ॥ २४ ॥

नापि प्रवित्तिनिवृच्यजनकत्वम् अजिज्ञासितविषय-त्वम् वा तादृशाद्दिप स्मृत्युत्पादात् नापि संस्कारा-जनकत्वम् तज्जनकतावच्छेदकरूपान्तरापरिचयादन्यो-न्याश्रयप्रसङ्गात्, संस्कारानुत्पच्येव अस्मरणसम्भवे स्मृतिजनकतायां तद्प्रविशाच नाप्यनुभवत्वेन तथात्वं

ननु ताद्यकार्थान्यथानुपपत्तिरेवमानमित्यत आह अन्यथोप-पत्तेश्वित । जातिसङ्गरप्रसङ्गादिति उपेचालं विहाय चाचुषलं घटप्रत्यचादी चाचुष्रत्यं विहाय लाचादी वर्त्तमानं उपेचालं चाचुषे उपेचाज्ञाने सङ्गीर्णमिति । चाचुषलादिव्याप्यसुपेचालं नानेव वक्तव्यं तावद्वेदसूटो निवेधनीयः इत्यत आह आंधिकलोप-गमाचेति एकसिन्नेव ज्ञाने अंधत उपेचा अंधतीऽनुपेचा इति भावः, (१) तज्जनकतावच्छेदकरूपान्तरापरिचयादिति॥ २४॥

⁽१) जातेव्यांष्यद्यात्त्विनयततया ख्रव्याप्यद्यत्तित्वेनापाद्वेन स्रव्य जातित्वा-भावः आपा द्यत इत्याभयः।

संस्कारस्य फलनाभ्यतयासक्तदनुभूतस्य सारणीत्तर-मसारणप्रसङ्गात् समानाकारस्येव फलस्य नाभक-त्वात्॥ २५॥

समूहालम्बनादितो नैकैकगोचरक्रमिकस्मरणा-नुपपत्तिः, जायते च पुनः पुनः स्मरणादृदृतरः संस्कारः॥

श्रन्योन्यात्रय एव हेतु: भवित हि उपेचान्यत्वे द्वाते संस्कार-जनकल्द्वानं तिसंश्व उपेचान्यल्द्वानिमिति, कचित् रूपापरि-चयादिति पाठः तथाच श्रवच्छेदकाग्रहे जनकलाग्रह इति स्वतन्त्वं दूषणम्, नतु माभूदन्यदवच्छेदकम् उपेचान्यलमेवाव-च्छेदकं भविष्यतीत्यत श्राह श्रन्योन्यात्रयादिति।

ननु तत्त्वेन तत्त्वेनैव संस्तारजनकता, तावद्वेदकूटवत्त्वम् उपे-चात्तम् इति कुतोऽन्योन्यात्रय इत्यत श्राह संस्त्ररानुत्पच्यैवेति श्रस्मरणसम्भवे उपेचणीयास्मरणसम्भवे तदप्रविशादिति उपेचा-न्यत्वस्याप्रविशादित्यर्थः।

सक्षदिति वारान्तरानुभवे च तत एव संस्कारस्य फलनास्थले प्रथमस्मर्णेनैव समूहालम्बनसंस्कारनामात्तदुत्तरं ति विषयान्तर-स्मरणानुपपत्तिरित्यत आह समानाकारस्येति प्रथमस्मरणस्य समूहालम्बनासमानाकारत्वादिति भावः आदिपदेन घट-वद्गृतलम् ॥ २५ ॥ परित्यच्य च निश्चितव्यभिचारकं रूपं ग्रह्ममाण-व्यभिचारकेण कारणत्वकल्पनानुदयात्॥ २६॥

दूरमेव चान्यच सामान्यकारणतावक्छेदकत्वे वीजम् अभिहितच्च तात्पर्य्यटीकायाम् प्रथमसूचे अव-यविविचनाप्रसावि मिश्रेः, स्मृतीणां खकार्य्यविरोधिनी नाम सह भावादिति चेन्न चरमज्ञानपदस्थानुभव-परत्वात्, साचात्तज्जन्यत्वस्य च विविच्चतत्वादिति कश्चित्॥ २०॥

ननु समूहालम्बनसंस्तारस्य चरमस्मरणत एव क्ततो नागः
तस्यापि तदसमानाकारत्वात् तस्य कालादिना नाग्रोपगमे
फलस्य नाग्रकत्वव्यभिचारः तत्त्वेन तत्त्वेन नाग्रकत्वे सक्तदनुभूतस्यापि चरमस्मरणभेव नाग्रकमित्यस्त्ररसादाह जायते चेति,
दास्त्रें संस्तारगतो जातिविश्रेषः तच भटिति स्मरणादिफलैरेव
कल्पाते इति भावः।

ननु भटिति स्मरणादिकं तथाविधोद्योधकसमवधानाद्मविष्यति
न च प्रत्यचं तत्र मानं, तादृशजातिरतीन्द्रियत्वोपगमात् इत्यत
श्राह परित्यच्य चेति, ननु तथापि संश्यान्यत्वं तत्र जनकतावच्छेदकं न च संग्रयस्थले स्मृत्यापित्तः उद्योधकाभावात् उद्योधकस्य
च विशिष्यैव कार्थ्यकारणभावात्॥ २६॥

न च संशयस्थले संस्कारक स्पना तस्य च नाशकादिक स्पनिति

किञ्च व्याप्यविशेष्यकात्पचिविशेष्यकाद्या परामर्शा-दनुमितिदर्शनात् तदुभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वेन तत्र हेतुत्वं लचणघटकमपि तदेव एकतरविशेष्यक-चानादन्यतरविशेष्यकसारणाभावात् श्रन्यया नियमेन स्मृतेनभयविशेष्यकत्वप्रसङ्गात्॥ २८॥

वाचं संस्तारजनकतायां तखवेशेऽपि स्मृतिजनकतायां तखवेशे
गीरवादिति चेन्न अनितप्रसक्तरूपेणैव कारणतायाः सम्प्रदायसिद्धलात् अन्यथा सत्वादिनापि कारणतापत्तेर्दुर्व्वारत्वादिति
स्वकार्य्यविरोधिनीनां स्वकार्यकतो यो विरोधो विनाशः तद्दतामित्यर्थः, कश्चिदित्यस्तरसोद्वावनं तद्दीजन्तु साचात्वं न तावदव्यवद्वितोत्तरचणजन्यत्वं विनश्यदवस्थपरामर्थजन्यानुमितावव्याप्तेः
न तावत्तज्जन्याजन्यत्वे सति तज्जन्यत्वं परामर्थजन्यसिद्विनाशजन्यानुमितावव्याप्तेरित्यादिस्वयमुह्नीयम् ॥ २०॥

प्रकारान्तरेणापि स्मरणेऽतिव्याप्तिनिरायसभेवे ज्ञानपदस्य किमर्थमनुभवपरत्विमत्यत आह किञ्चेति विशिष्यैव कार्य्यकारण-भाव इत्यत्न प्रथमतो हेतूनाह एकतरेत्यादि श्रन्यथा विशिष्य-कार्य्यकारणभावं विना श्रनियमेनेति किचित् पाठः। तत्र कार्य्यकारणभावानियमो बोध्यः एवं उभयवैशिध्यावगाहिज्ञानत्वेन कारणत्वे चकारोऽस्वरसस्चनाय स च पूर्वोक्त एव ॥ २८ ॥ समानप्रकारकलंनेव ज्ञानसारणयोः कार्य्यकारण-भावात् तत्र विशिष्येव कार्य्यकारणभावः नत्रकरूपेण गौरवान्मानाभावाच द्रत्यपि केचित् एवच्च विशिष्ट-वैशिष्ट्यवोधादौ क्वापि नातिप्रसङ्ग्रङ्कापि वङ्गायनु-मितौ वङ्गादित्यभिचारधीविरोधिधीविषयधर्मप्रका-रकपचधर्मताज्ञानत्वेन हेतुतामते तु नितरां तयैव चचणे निवेशात् श्रतएव व्याप्यवत्यचाद्यभावज्ञानं प्रति व्याप्यवत्यचादिज्ञानत्वेन हेतुत्वेऽपि न चतिः ॥ २८॥ व्याप्त्राविषयत्वेन वा जन्यं ज्ञानं विशेषणीयम्,

येषां मते विशिष्टवैशिष्टाबोधसामान्यं प्रति विशेषणताव-च्छेदकप्रकारकनिश्चयस्य न हेतुलं तन्मतेष्यभावबुिर्ज्ञिशिष्ट-वैशिष्टाबोधरूपैव तत्र च प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छिन्नप्रतियोगि-ज्ञानं हेतुरिति तत्र पृथगतिव्याप्तिं वारयति अतएवेति।

श्रतएव उभयवैशिध्यावगाहिशानलेन हेतुलं विविचति-मित्यर्थः श्रादिपदात् येषां मते व्याप्यविशिष्यकपरामर्थः कारणम्, तन्मते तादृशामावस्यापि संग्रहः (१) ॥ २८ ॥

ननु उभयवैशिष्ट्यावगाहिम्नानलेन हेतुले विज्ञव्याप्ये पर्व्वत इति न्नानादप्यनुमित्यापत्तिः। न च पर्व्वतस्य त्राधारलाव-

⁽१) पत्त्वहत्तिव्याम्याभावस्य चाधेयतया पत्त्ववत्व्याप्याभावस्य च संपह इत्सर्थः।

एतेन स्मृतिं प्रति संस्कारद्वारा अनुभवं प्रति च साचादिशेषणियो हेतुत्वस्य निर्व्विकल्पात्मकस्य वा स्मरणस्य अनुभवं प्रत्येव वा तस्याहेतुत्वस्य नियमतः कृतिसाचात्कारपूर्वे विषयस्मृतेश्च कल्पनात् व्याप्य-वत्पचादिद्वानेऽतिव्याप्तिरित्यपि परास्तम् ॥ ३०॥

गाहिज्ञानलेन कारणलम्, पर्वते विज्ञञ्चाप्य इति ज्ञानाञ्चाप्य-लात् (१) एवं व्याप्यस्य आधियलावगाहिलविवचणेऽपि विज्ञ-व्याप्यवान् पर्वत इस्रत्न अञ्चाितवींध्या न च एकत तदुभयभाने प्रमाणमस्ति, न च विज्ञञ्चाष्यवान् न विति संग्रयविक्षोभय-वैधिष्यावगाहिनिययलेन हेतुलं, एतक्तते पर्वते विज्ञञ्चाप्य इति ज्ञानस्य भिन्नप्रकारतया तथा, संग्रयाविरोधिलात् अयं विज्ञ-व्याप्यलावच्छेदकधभावान् पर्व्यतवांस्य विज्ञञ्चाप्य इति ज्ञाना-दप्यनुमित्यापत्तेः। विधिष्ठवैधिष्यावोधिवत्तचणहेतुलायुक्त-निख्लविवचणे न तथा, ननु स्मृतिस्थले संस्कारद्वारा कार-णलमनुभवेतु साचालस्वस्थेनित सम्बन्धभेदालारणताभेदः इत्यतः आह निर्व्विक्षण्यविति।

नतु निर्व्धिक स्वयम्भरणं सिडान्तिविरुडिम स्वत श्राष्ट्र श्रनुभव-मिति दैवादिति साध्यतावच्छेदककोटौ पचतावच्छेदककोटौ

⁽१) इति चानेऽव्याप्तिरिति भावः।

साध्यादेरननुगमात् एकचोपादानेऽन्यानुमितौ दैवाद्याप्तिविषयिण्याञ्च अव्याप्तिः परमविषयाते, सापि ताद्यश्चानवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वविवचया निर-सनीया एतल्लाभायैव चानुभवार्थकं चरमज्ञान-पदम्। एवञ्चान्वयव्यतिरेकव्याप्त्रोः पृथक्प्रयोजकत्वे-ऽपि न चतिः।

पर्व्यतविज्ञयायवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वाविष्ठ्यन्त कारणताप्रतियोगिककार्य्यताया विज्ञयायवत्पर्व्यत-निश्चयत्वाविष्ठिन्न-कारणताप्रतियोगिक-व्याप्तप्रविषयक-हित्तकार्य्यताया वा श्रवक्छेदिका ज्ञानहित्तः सामा-

वा व्यात्यवगान्तिन्यां समृत्त्वालस्वनरूपायां वा एवं जातिघटित-सत्त्वणकरणे॥ ३०॥

नतु ताद्दयज्ञानदृष्यनुभवत्वव्याप्यजात्यपेच्यालघुलच्यमाह पर्व्वतिति तत्र च ताद्द्यकार्य्यतात्र्यदृष्येवानुभवत्वव्याप्यजातिः इह तु ताद्द्यकार्य्यतावच्छेदिकाजातिः इति विश्वेषः, ननु उभय-वैशिष्णावगाहिनिश्चयत्वेन हेतुत्वं पूर्व्वमेव दूषितम्, न च तथापि विनिगमनाविरहात् पर्व्वते विज्ञव्याप्य इति निश्चयत्वेन हेतुत्व-मस्तु, परामर्थस्यामितिसमानाकारस्येव विनिगमकत्वात्, अनु-रिष विशेषोऽध्यवसायकर इति न्यायात् अनुमितिश्च पद्यविशेष्य-कत्वनियमादित्यभिष्ठेत्वाह विज्ञव्याप्यवदिति। नाधिकरखीनावच्छेदिका वा या जातिस्तदक्तं वा बोध्यम्॥ ३१॥

व्याप्तिभानेऽवश्यं भासमानो यस्तादृशानुमित्य-विषयोऽर्थस्तद्विषयत्वमाचं वा ग्राच्चं, यां काञ्चिदनु-

नन्ववच्छेदकलमवच्छेदकलकोटिप्रविष्टलमवश्यं वाचं, वक्कानुमितिलादेरेव कार्थ्यतावच्छेदकलात् तथाच विक्कितमादाय
वक्कावित्याप्तेरित्यत श्राह ज्ञानहित्तिरिति, ननु ज्ञानानुमितिलं
यत्र कार्थ्यतावच्छेदकं तत्र ज्ञानलस्थापि तथालादित्याप्तिस्तदवस्थैव एवं कीवलवक्कानुमितिलमपि नावच्छेदकं वाचं,
तथाच परामर्भकुचिनिचिप्त ज्ञानलमादायातिव्याप्तिस्तदवस्थैविति
श्रव्यरमादाह सामानाधिकरस्थेनिति, कार्थ्यकारस्थावज्ञाने कार्थतासामानाधिकरस्थेन यस्याभानं द्रस्थर्थः। विक्कावज्ञानलादेख
कार्थ्यतावच्छेदकलसंस्यर्शभावादिति भावः॥ ३१॥

तादृशानुमित्यविषय इति साध्यादिवारणाय तथाच व्यासविषय इत्यच श्रभावाद्यविषयक इत्यथः। श्रयञ्च लाघवमभिप्रेत्य व्यास्यविषयकेत्यस्य निष्कर्षः कतः, ननु विज्ञव्याप्यवत्पर्वेतनिञ्चयत्नेनापि न हेतुत्वम्। श्रालोकधूमसाधारणव्याप्तेरेकधर्माभावात् न च विज्ञव्याप्यधूमवान् पर्वेत इति परामर्भत्वेन
हेतुत्वं तदुत्तरवज्ञानुमितित्वेन कार्य्यत्वं एवं श्रालोकादाविष इति वाच्यं, सर्व्वासामेवानुमितीनां तदुत्तरत्वात् न च तदुत्तरत्वे
सति तत्वालोनानुमितित्वनेव कार्य्यतावच्छेदकमिति वाच्यम्, मितिव्यक्तिमादाय तद्यक्तिसमवेतानुभवत्वान्यानु-भवान्यासमवेतधर्मसमवायित्वमिति वा वक्तव्यम्। अनुभवत्वजात्यनङ्गीकारे तु तद्यक्तिसमवेतस्मरणा-समवेतधर्मसमवायित्वं वक्तव्यम्॥ ३२॥

विक्कवायालोकापरामर्शकायमानायां विक्कवाय्यभूमवत्यर्वता-वगाहिन्यां वक्करनुमिती व्यभिचारात्। नच विक्कवाय्य-धूमवान् पर्वत द्रत्येतत्पर्वतज्ञानातिरिक्तपर्वतज्ञानाजन्यपर्वतो विक्कमानित्यनुमितित्वेन कार्यता उभयपरामर्शजन्यानुमितौ तु प्रथगेव कार्यतित वाच्यं अन्योन्याययात्। तादृशपर्व्वतज्ञाना-जन्यत्वे ग्रहौते एतत्पर्व्वतज्ञानजन्यत्वं ग्राह्यं ग्रहौते वास्मिंस्तद्भाष्ट्य-मिति। न च विक्कव्याप्यधूमवान् पर्वत द्रति परामर्शाव्यव-हितोत्तरानुमितित्वमेव कार्य्यतावच्छेदकमिति वाच्यम्। अव्यव-हितत्वस्य तद्धिकरण-चणध्वंसाधिकरण-चणध्वंसानधिकरणत्वे सति तद्धिकरण-चणध्वंसाधिकरणत्वरूपस्य तत्तद्वाक्तिवयान्त-तया तथाविधपरामर्थस्य हेतुत्वे मानाभावात् कुतस्तथाविध-जचणावतार द्रत्यभिष्रत्याच् ग्रामिति।

केचित्तु परामर्शवदनुमितिलेन कार्य्यतामतुवर्यसु अव्यव-हितोत्तरत्वं सम्बन्धाननुगमसुनदोषाय स्वरूपसम्बन्धादौ तथोप-गमात्। अन्यथा घटपटत्वादिकमिष दुर्व्वचं तिह्वघोत्तरटत्वम्, तच सर्व्वटकारसाधारणिमिति घाव्यविहतटत्वं वाच्यं, तच प्रत्येकवित्यान्तमिति एवं शिक्तग्रहाभावे व्यवहारविलोप इति श्रन्थे तु परामर्शलेन कारणता श्रनुमितिलेन च कार्य्यता परा-मर्भलञ्च जातिविशेषः न च चाच्चष्रलादिनासङ्गरः सर्वत परा-मर्भस्य मानसस्यैवाभ्युपगमात्। न च तादृश्चजाती मानाभावः कार्य्यकारणभावान्यथानुपपत्तेरेव मानलात् इत्याद्यः। नवीनाः पुनः प्रकृतलचणं रच्चयन्तो वर्णयन्ति यत्र कुत्रचित् विशेषे एकेनैव व्याप्येन व्यापकस्यानुमितिर्जाता तत्र तादृश्परामर्भलेन तादृशानु-मितिलेन कार्य्यकारणभावी वाधकं विना सुघट एव, तथाच तामनुमितिमादाय जातिगर्भलचणं सम्यगिति। प्रत्यचलादि-वारणाय तद्यक्तिसमवेतित।

तथापि प्रत्यच्चलादिर्विषयतया कालिकविशेषणताविशेषणचानुमितिष्ठत्तित्वात् समवेतिति । अनुभवत्ववारणाय अनुभवत्वाचेति ज्ञानलादेळीरणाय अनुभवान्यासमवेतित ननु अनुभवान्यासमवेतिति व्यर्थे अनुभवत्वान्येति पदेनैव वारणात् अनुभवत्वतावच्चित्रभेदस्य सकलानुभवष्टत्तिभेदपर्यवस्त्रतया ज्ञानत्वादेरिप
वारणात् (१) अनुभवत्वष्ठत्ति एतत्वमेव प्रतियोगितावच्चेदकं अत्र
सनुभवत्वतं हि अनुभव इति ज्ञानप्रकारत्वं न तु अनुभवेतराखत्तित्वे सति सकलानुभवष्टत्तित्वं अतो न ज्ञानत्वादिवारणमिति
तस्यापि अनुभवान्यमहाकालबत्तित्वात् असभववारणायासमवेतेति, ताष्ट्रप्रधर्भस्य महाकालबत्तित्वात् तत्रातिव्याप्तिवारणाय
समवेतिति बोध्यम् ॥ ३२ ॥

⁽१) अनुभवत्वत्वं सक्तनानुभवष्टित्तत्वं तच्च ज्ञानत्वेऽिय वर्त्तते इति ज्ञानत्वानु-भवसाघार्णं तदविष्कः वप्तियोगिकभेदवच्च ज्ञानत्विभिति भावः।

व्याप्तिज्ञानत्वाविक्वित्तकारणताप्रतियोगिककार्यः-तावक्रेदकाविक्वित्ता या, विशिष्टपरामर्शत्वाविक्वित्त-कारणता-प्रतियोगिककार्य्यता, तत्ममानाधिकरणानु-भवत्वव्याप्यजातिमस्वं तत्त्वमित्यपि कश्चित्॥ ३३॥

परे तु पच्चधर्मतित्यच पचता विशेषणं तथाच पचतासहक्षततादृशपरामर्शजन्यत्वमर्थः, यथोक्ताया विशेष्याद्यभावरूपाया वा पचतायाः प्रत्यचवारणाय परामर्शस्थोपादानं तत्त्वेन जनकत्वमेकावक्केदेन तदु-

व्याप्तिज्ञानलेति अनुमिती व्याप्तिज्ञानं करणं परामशीं व्यापार इति करणव्यापारयोरेकमेव कार्य्यतावच्छेदकमित्यभिप्रायेणेदं तत्राद्यं दलं व्याप्यविद्यिष्टवैशिष्ट्यवीधादिवारणाय, दितीयं तु व्याप्तिज्ञानप्रत्यचादिवारणाय, किषिदित्यस्वरमोज्ञावनं तदी-जन्तु व्याप्तिज्ञानलस्य कारणतावच्छेदकत्वमेव खण्डितमिति एवं परामर्थस्य कार्यतावच्छेदकं पच्चिशिषादिघटितं व्याप्तिज्ञानस्य कार्य्यतावच्छेदककोटी तिन्नविश्रनमफलमिति॥ ३३॥

पचतासहक्षतिति मित्रैविवचितं तच प्रव्दतः कयं सभ्यत इत्यत ग्राच पचधभीतित ।

तयाच विधिष्टज्ञानलेनैव विधेषणजन्यलमपि लभ्यत इति
भावः यथोक्ताया मित्रमते योग्यतायाः कालचिटितलेन, अन्यमतेऽपि
सिषाधियषाविरहवैधिष्ट्यांशे कालस्य निवेशने च योग्यानुपलिध-

भयजन्यत्वञ्च विविच्चितं तेन बाधादिकालीनेन दैवात् प्रतियोगिविषयकेण परामर्शेन जन्ये पचताया: प्रत्यचे, तदुभयसमूहालम्बने वा नातिप्रसङ्गः । तदृत्यनुभवत्व-व्यायजातिमत्त्वविवचया च नाव्याप्तिरित्याहः तिच-न्यम्॥ ३४॥

तत्करणिमिति। न च व्याप्यादिज्ञानजन्यज्ञान-करणत्वेनेतरभेदसाधने व्याप्तिज्ञानत्वं तादात्मासम्ब-स्वेन व्याप्तिज्ञानमेव वा गमकं व्याप्तिरननुगमेऽपि अधि-

विवादादाइ विशेषाद्यभावरूपाया वेति क्रमेण व्याहित्तमाइ तेनेत्यादि वाधादिकालीनेत्यनेनानुमितिव्युदासः प्रतियोगि-विषयक्षेनेति सिद्धिविषयक्षेनेत्यर्थः सिद्धाभावप्रत्यचे विषयतया सिद्धाभावस्य हेतुत्वं परामर्थस्य च सिद्धिज्ञानात्मकतया प्रति-योगिज्ञानत्वेन हेतुत्वमिति भावः तिच्त्यमिति परामर्थत्वेन जन-कताविवचयैव उक्तक्रमेन निख्लातिव्याप्तिनिरासः॥ ३४॥

इतरस्य वैयर्थप्रसङ्ग एवमेकावच्छेदेनेत्यपि प्रकृते वाधितं पचताजन्यतावच्छेदककोटौ पचतावच्छेदकस्य सामानाधि-करण्यस्य तदवच्छेदकावच्छेद्यानुमितिवैज्ञचण्यविशेषा विनिवेश-नीयाः परामग्रें तु तिहरह इत्यपि बोध्यम्। व्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानत्वाप्रवेशायाच तदाक्म्यसम्बन्धेनेति न च तादृश-निश्चयत्वाविच्छन्नहेतुत्वविवचायां निश्चयत्वस्य ज्ञानत्वघटितत्या कस्य भागासि ज्ञिवारणमात्रप्रयोजनत्वादिति वाच्यम्। फलोप ज्ञितस्य जच्यतया व्याप्तिज्ञानत्वादेरितप्रसक्त-त्वात् करणत्विष्ठव्याप्तेस्तादृशज्ञानत्वत्वाद्यनवच्छेद्यत्वा-द्यतिरेकव्याप्तेर्गमकतया वैयर्ध्यशङ्कानवकाशाचिति।

लिङ्गस्यानित्यविष्यनुमितिकरणस्य स्वरूपतः प्रत्य-

कथमेतदिति वाचम्। तत्र संग्रयान्यताद्द्यज्ञानतस्य विलचण-स्वैव निवेशात् इति भावः, श्रिषकस्येति ताद्द्यज्ञातिमत्वरणतस्य इत्यर्थः, भागासिद्धौति व्याप्तित्वस्य एकस्य श्रभावात् विग्रिष्य-व्याप्तिज्ञानत्वमेव हेतुतावच्छेदकं वक्तव्यं तच्च सर्व्वानुमितिकरणा-वृत्तीत्यर्थः, फलोपहितेति व्याप्तिज्ञानत्वस्य स्वरूपयोग्यव्यक्तितया फलोपहितेतरभेदव्यभिचारित्वात् ताद्दश्रश्रातिमत्वरणत्वविवच्चण तु फलोपहितकरणत्वविवचणात्र व्यभिचारः, तथाच व्यभिचार-वारकमेव विशेषणमिति भावः। पचसङ्गोचनिबन्धनारुचेराष्ट्र करणत्वेति तथाच यनिष्ठा यन्निरूपिता व्याप्तिरित्यादिन्यायेनैव ध्रमप्रागभाववन्न वैद्यर्थमिति भावः।

यद्यपि करणलस्यापि स्वरूपयोग्यतावच्छेदकतया तद्पि स्वाप्तिज्ञानलमेव, तथाच क यित्रष्ठेत्याद्यवकायः तथापि तादाक्येन स्वाप्तिज्ञानमपेच्य बोबस्थम्। यद्या करणलमितिरिक्तमेव स्वति-रेकिति श्रनुमानितरभेदाभावस्यापकतया उक्तहेतुप्रतियोगिका-भावनिष्ठाया ग्राह्यलात्। वैयर्थेति श्रवण्डाभावघटकतया न वैयर्थिमिति भावः।

त्रव त्रनुमानप्रामाख्यनिरूपणम्।

श्रथानुमानं न प्रमाणं योग्योपाधीनां योग्या-नुपलब्ध्याभावनिश्चयेऽप्ययोग्योपाधिशङ्कया व्यभिचार-संशयात् शतशः सहचरितयोरिष व्यभिचारोपलब्धेश्व लोके धूमादिदर्शनानन्तरं वद्भ्यादिव्यवहारश्च सम्भा-

च्योपजीवकालं व्यवस्थापयद्वाह तचेति अनुमितेर्ज्ञाना-करणकज्ञानलेन प्रत्यचमिति मध्यनिवेशे तत्करण-स्थापि प्रत्यचप्रमाणान्तर्भावः स्थादिति तद्विरस्थति तचेत्यपि कश्चित्॥ ३५॥

इति अनुमानदीधिती अनुमितिनिरूपणं समाप्तम्।

ननु अनुमानपरीचायां तचेत्यादिग्रस्थोऽनुपयुक्त इत्यक्चेराह लिङ्गस्थेति केचिदित्यस्वरमोद्भावनं तहीजन्तु प्रत्यचस्य लचणान्तर-सम्भव इति ज्ञानाकरणकेति। ज्ञानकरणकत्वयभिचार्थेनुभव-त्वयाप्यजातिमत्वमित्यर्थः, तेन यवणकरणकात्मसाचात्कार-संग्रहः॥ ३५॥

इति दीधितिप्रसारिखां अनुमितिनिरूपणं समाप्तम्।

वनामात्रात् संवादेन च प्रामाख्याभिमानादिति ना-प्रस्यचं प्रमाणम् ॥ १ ॥

द्रित न अप्रमाणसाधर्मीं ग्रणप्रामाण्यसाधने दृष्ट-साधर्म्यस्मानुमानत्वात् एतदाक्यस्य सन्दिग्धविपर्यः-स्तान्यतगं प्रत्यर्थवत्त्वात् तयोश्च परकीययोरप्रत्यच्चत्वात्, अनुमानमप्रमाणमितिवाक्यस्य प्रामाण्याप्रामाण्ययोर्व्याः-

दीधिति:।

यनुमानप्रामाण्यं परीचितुं चार्ळाकमतमुत्थाप-यति यथेति यनुमानं यनुमानत्वेनाभिमतं धूमादि-ज्ञानमसत्स्याख्रपनीतमनुमाननेववा सम्बादेन सम्बा-दाभिमानेन सम्भावितस्यासतोऽनुगताकारस्य परमार्थ-सत्स्वलचणमानसाचिणाध्यचेणानुक्षेखात्॥१॥

प्रमाप्रमासभावितस्य सभावनाकालीनानुगतविषयत्वेन श्रसत्-स्थाः तिलात्। निर्व्विकत्यक्षस्य सिंद्वयतया विषयजन्यतया श्रीचित्यानेकविषयत्वरूपसम्बाद इत्यर्थः। परमार्थसत् वस्तुसत् स्वं श्रसाधारणं देशाननुगमात् परमार्थश्च कालाननुगमात् श्विणकस्य श्रतत्वलच्चणं यस्य इत्यर्थः। श्रनुगतधमात् निर्व्वि-कत्यकविषय इत्यर्थः।

श्रनुक्षेखादिति। तथाचं तनाते प्रमाणद्वयपरिग्टहीतेत्यादि-रूपसम्बादस्य प्रकृतेः श्रनवतार द्रति भावः॥१॥ घाताच । अपिचानुमानाप्रामाखी प्रत्यचस्याप्यप्रमाण-त्वापत्तेः, प्रामाख्यस्थानुमेयत्वात् स्वतश्च प्रामाख्य ग्रे तत्मंशयानुपपत्तेः । व्याप्तिग्रहोपायश्च वच्यते ॥ २ ॥

> दति श्रीमद्गद्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणी श्रनुमानप्रामाख्यनिरूपणं समाप्तम्।

अध्यत्तम् लक्षिविकल्पोिश्विखितत्वाद्दा संवादः अनु-मानाप्रामाख्ये च तन्मू लक्षसमयनिर्णयाद्यधीनप्रवृत्ति-क्योः शब्दोपमानयोः सुतरामप्रामाख्याद्वाप्रत्यचं प्रमाणिमत्याद्व द्रति नित्यादि अप्रमाणसाधर्मात्रण प्रमाणताप्रयोजकरूपश्चत्वेन दृष्टसाधर्मात्रस्य साधर्मात-

ननु तनाते नैतत् सम्बादलचणवस्यणः चिणकलेन एकनिर्व्विकल्पकविषयस्य निर्व्विकल्पकान्तरविषयत्वात् तदीयसम्बादलचणमाइ अध्यचिति अध्यचं निर्व्विकल्पकं यथाश्रुतम् लस्यापि
अनुमानमित्याद्युपक्रमान्नाप्रत्यचं प्रमाणमित्याद्युपसंहारविरोधादाह अनुमानिति अपमानसाधमास्य अप्रामाण्यसाधने व्यभिचारादाह अप्रमाणिति। ननु अव्यवहितमेवाभिहितं तुम्ने त्यादिना,
लिङ्ग ज्ञानमेवानुमानं तत्कुतः साधमास्यानुमितिकरण्लामिति ग्रम्थ-

दर्शनस्य वा, नन्वभिह्तिमेव साधक्त्रादर्शनं सक्सावनां भावयति सक्सावनेव च बहुशो व्यवहारहितुरित्यत याह अनुमानमिति ।

नन् न वयमापाततो भमजनकत्वलचणमप्रामाण्यं निरूपयामो येन भ्रमस्य विषयवाधाधीनतया प्रामाखं सक्साव्येतापि परन्तु प्रमाकरणत्वव्यतिरेकमत श्राह चपिचेति। स्वत दूति न चानुगताकारासंस्प-र्शिनि परमार्थेसत्खलचणसाचिणि खसंवेदनसंविदित-प्रामाखे निर्व्विक ल्पकत्ताने न प्रामाखं सन्दि हाते परन्तु तदुत्तरभाविनि समुद्धिखितालीकानुगताकारे सविकल्पक एवेति वाच्यम् । निर्व्विकल्पकस्य सन्माचा-वलम्बनल--स्वविषयलप्रामाख्यावगाहिलानामनुमाना-धीनसिंडिकलात्। सर्व्वमिदं सति व्याप्तिनिश्चये स्थात् स एव तु न सस्भवसुपायाभावादिस्यत आह व्याप्तीति॥२॥

इति अनुमानदीधिती अनुमानप्रामाखानिरूपणं समाप्तम्।

क्तमतं पूरयति साधभागदर्भनस्थेति, श्रभिह्तिमेव उक्तमेव, साधभागदर्भनं प्रमाणताप्रयोजकरूपप्रदर्भनं, भावयति उत्पादय-तीत्यर्थः, न प्रामाण्डं सन्दिद्यते इति तथाचान्यत्र सविकल्पके

अथ व्याप्तिपञ्चकम्।

तत्त्वचिन्तामणिः।

नन्वनुमिति हेतुव्याप्तिन्ताने का व्याप्तिः न तावद-व्यभिचरितत्वं ति न साध्याभाववदद्वत्तित्वम् साध्य-विक्षन्नसाध्याभाववदद्वत्तित्वम् ॥ १ ॥

दीधितः।

समारश्चानुमानप्रामाखपरीचाकारणीभृतव्याप्ति-यद्योपायप्रतिपादनिनदानं व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमार-भते नन्वित्वादिना साध्याभाववदद्यत्तित्वस्थाव्याप्य-द्यत्तिसाध्यकसद्वेतावव्याप्तिमाशङ्काह साध्यविद्वद्विति। साध्यविद्ववे यः साध्याभावस्तदद्वत्तित्वमर्थः॥१॥

प्रामाख्यसंग्रयात् निर्व्धिकत्यके स्तरः प्रामाख्यग्रहो न विरुष्ठ इति भावः। सन्मात्रेत्यादिकच्चापाततः, तन्मते सन्मात्रावनस्वनत्वादि-व्यवहारस्तु सन्भावनयैव भविष्यतीति॥२॥

दति दीधितिप्रसारिखां अनुमानप्रामाखानिक्षणं समाप्तम्।

साध्यवित्तवाहित्तित्विमित्यसैव सम्यक्तत्वे साध्याभावपदवैयर्थ-मिति सार्व्वभौमदूषणमुडर्त्तुमार्ह[ं] साध्यवित्तवे य इति तथाच साध्यवित्तवो गुणः तहित्तसाध्याभावविश्रेषनाभार्थे साध्यवित्तव साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावा-सामानाधिकर-ग्यम्॥२॥

सक्तलसाध्याभावविद्वष्ठाभावप्रतियोगित्वम् ॥ ३॥

कमीदी संयोगाद्यभावस्य भिन्नत्वे मानाभावादाह साध्यवदिति॥ २॥

इति तचाभावे श्रन्वितं न साध्याभाववदित्यन्तेन, तथाच न वैयर्थ-गन्धोऽपि।

न च घटलघटपटसंयोगान्यतराभाववान् पटलादिखहा-व्याप्तिः साध्यविद्वन्नघटिनष्ठसंयोगरूपसाध्याभाववित पटे पट-लस्य हित्तात्वादिति वाच्यम् । तत्र साध्याभावस्यातिरिक्तस्यैवाभ्युप-गमादेकमानप्रतियोगिकाभावाभावस्यैव भावरूपलात् । केचित्तु साध्यविद्वन्नस्या भेदेन सम्बन्धेन साध्याभाववित विशेषणात् कम्भ-धारयपन्नेऽपि न दोष इत्याद्यः (१)॥१॥

कभीदाविति। न च साध्यविद्वविद्वविद्याष्ट्रो यः साध्या-भावः तददव्यत्तित्विमत्युक्तौ नाव्याप्तिरिति वाच्यम्। साध्याभावां-भवेयर्थात् साध्यविद्वविद्यविद्यविद्यविक्यात् सावोक्तावेव सामञ्जस्यात्॥ २॥

⁽त) यथासिन्नवेधे वैयर्थ्याभावात् स्रत्न साध्याभाववत एव छित्तत्वांधे निवेधेन तत्न साध्यविद्वस्य विधेषणस्वे देडगडित्तत्वघटितजचणस्य जचणान्तरत्वेन न दोषः इति भावः।

हेतोः साध्यवत्यचिभद्गदृष्टान्तवृत्तित्वेनाव्याप्तेराह सक्तिति साक्तव्यं साध्याभाववित साध्ये च बोध्यं साध्याभावो वा साध्यतावक्तदेकाविक्तद्रप्रतियोगि-ताको ग्राह्मसेन विग्वैकदेशिनष्ठाभावप्रतियोगिनि व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिः न वा नानाव्यक्तिसाध्यक-संद्वेतावव्याप्तिः। श्रव्याप्यवृत्तिसाध्यकव्यापवृत्तिसद्वे-तावव्याप्तर्व्यभिचारिणि चाव्याप्यवृत्तावितव्याप्तेर्वार-णायाभावद्वये प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं बोध्यम्॥

सिंडिक मैं लं साध्यलिमिति यथा श्वतार्थे पचीयसाध्यस्यै वेत्य-भिग्नेत्य साध्यवत्पचेत्व्यक्तम् (१)।

श्रव धूमवान् वक्नेरित्यच साध्याभाववज्जनिष्ठाभावप्रतिन् योगिन्यतिप्रसित्तवारणाय साकत्यमिति साध्याभाववतीति साध्ये चेति साध्याभावे साकत्यदाने तत्तद्भ्दाद्वत्तित्वादिक्ष्पेण् यो वक्न्यभावस्तस्थापि सकलसाध्याभावमध्ये सित्तविशात् तावता-मधिकरणस्थापसिडेः, ननु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छित्रत्व-विवचाया श्रावश्यकत्वात्रकते च संयोगसम्बन्धावच्छित्रप्रतियोगि-ताकयावदभावाधिकरणस्य जात्यादेरेव प्रसिद्धत्वादिति चेत्र धूमवान् वक्नेरित्यादी सत्वादिना साध्याभाववति जात्यादी

⁽१) चिडिरनुमितिः तिह्वयत्वं न दष्टान्तस्य साध्यस्य तत्र पच्चता विरहादिति साध्यवत् पदेनैव साध्यवत्मचो जभ्यते इति भावः।

हैत्वभावोऽिष प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छद्गप्रति-योगिव्यधिकरणः तत्प्रतियोगित्वच्च हेतुतावच्छेदक-रूपेण बोध्यं, तेन द्रव्यत्वादी साध्ये विशिष्टसच्चादी नाव्याप्तिः न वा विशिष्टसच्चात्वादिना ताहणाभाव-प्रतियोगिन सचादावितप्रसङ्गः॥

वज्ञगदिरभावादितियातिः, घटलाभावादेः साध्यतायां सकत-साध्याभावान्तः पातित्वाद्वटावृत्तित्वाविच्छित्राभावानामधिकरणा-प्रसिद्धाव्यायापत्तेः साध्ये चेति चकारोऽनास्थायां अत्रण्वाद्व साध्याभावो विति। यदा सत्तावान् जातेरित्यत्र गुणकर्मा-खताविधिष्टसत्ताभाववित गुणादौ जातेरवृत्तेरभावादव्याप्तेराद्व साध्याभावो विति विपचैकदेशो यः कञ्चन साध्याभाववान् तिन्नष्ठा-भावप्रतियोगित्वादित्यर्थः। व्यभिचारिणि चेति रूपवसंयोगा-दित्यादावित्यर्थः॥

हेलभावोऽपौत्यिपना साध्याभावसमुचयः। क्रमेण व्यावृत्ति-माह तेनेत्यादि ताद्यपित प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नव्यधि-करणेत्यर्थः साध्याभावस्य तथात्वोपादानाच गुणकमास्यात्व-विशिष्टसत्तावज्ञातिमत्वादित्यादौ। प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्या-भाववज्ञात्यादिनिष्ठाभावप्रतियोगिन जातिमत्वे नातित्याप्तिः। न च तत्साध्याभावस्य गुणादौ प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात्पृति-योगिव्यधिकरणसाध्यतावच्छेदकाविच्छन्नाभावाप्रसिद्धेः, कुतोऽति-

साध्यवदन्यादृत्तित्वं वा केवलान्वयिन्यभावात्॥४॥ इति श्रीमद्रङ्गेशोपाध्याये विरचितं तत्त्वचिन्तामणी व्याप्तिपञ्चकं समाप्तम्।

यनैक्यिक्तिकं साध्यं विपची वा तन निर्धूमला-दिव्याप्ये तत्त्वेन साध्ये निर्विक्तिलादी चाव्याप्तिस्तन हिल्सभावस्य वक्त्रादिः प्रत्येकं याविष्ठपचावृत्तिलादत बाह साध्यवदिति ॥ ३॥

व्याप्तिरित वाच्यम् । संयोगिएतलादित्यन्तेषिन वच्यमानरीत्या मधिकरणविभेषिनयन्त्रितस्य तस्य वक्तव्यलादिति। संयोगा-भाववान् विभागादित्यत्राप्यव्याप्तिर्वीध्या । साध्ये साकच्याप्रसिष्ठैः सक्तवसाध्याभावाप्रसिष्ठेषेति क्रमेणाव्याप्तित्रयमास् यचित्यादिना, साध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकाविच्छन्नप्रतियोगिकलविवचणा-दाइ विपचो विति ॥

द्रमीखरभिनं ति इन त्याप्य कारक प्रमानिषय लादि त्यादी । ननु साम व्यक्ति स्थापे वक्त व्यक्ति स्थाप्त श्राह निर्धू मलेति, निर्धू मलस्य धू मलाव च्छित्र सामान्याभावस्य एक व्यक्ति मध्य एव गतलादाह तस्य चेति तेन यिल चिलाध्यवतो अव्यक्ति । साध्यवद्यक्तान्तरे हक्तिमति धूमादी नाव्याप्तिरिति । श्रव्याप्येति । संदेतुलार्थ-माह तस्त्वेनित व्याप्यत्वेनि त्यर्थः ॥ ३ ॥ तस्य चान्योन्याभावस्य साध्यवस्वाविक्तः न्राति-योगिताक्तं व्युत्पत्तिबललभ्यम् निष्ठ भवति नीलो घटो घटादन्य दृति॥४॥

द्ति अनुमानदीधिती व्याप्तिपञ्चनं समाप्तम् ।

व्यासतीति यच्छव्दसमिव्याहृतमन्यपदादिनं प्रयुच्यते तद-शीन्वयी तदवच्छेदकं अन्वयितावच्छेदकं तदवच्छित्रप्रतियोगिता-कालं व्यात्पपत्तिबन्तनभ्यमित्यर्थः। तदेव व्यतिरेक्षेण साधयति नहीति । ननु घटलस्यावच्छेदकलं कस्य संसर्गः, न तावत् घटल-वटयो:, तयोः परस्परमनन्वयादेव। न तावत घटलाभावयो: वटलस्य पदार्थेकदेशतया श्राकाङ्काविरहादिति चेत्र। घटा-भावयोरेव घटलावच्छित्रप्रतियोगितायाः संसर्गलात । वस्र घटांशे प्रकारलेऽपि संसर्गतया भानमविरूडम्। घटा-गाववङ्गतलमित्यच घटाभावस्येव घटलावच्छित्रप्रतियोगितायाश्व ाटलमवच्छेदकलं प्रतियोगितित्येतत् वितयात्मिकायाः सम्बन्ध-शत्। नोलस्फटिक इत्यव नीलसमवायिनीलसंयोगस्येव घटला-च्छिनप्रतियोगिता अखण्डा इत्यपि किथत् प्रमेयं नास्तीति तीत्यनापत्तेः विशेषणताविशेषेण प्रमेयत्वघटत्वोभयानविष्यन-तियोगिलाऽप्रसिद्धेः, नवीनासु यावन्तो विशेषस्ताविशेषेस भावास्तावित्रकृषिता एकौव प्रतियोगितायावन्तश्च प्रमियत्वेन भावास्तावत् स्त्रे केवप्रतियोगिता प्रमियं नास्तीत्यत्रोभयावच्छिनः

त्रय सिंहव्याव्रलचणम्।

तत्त्वचिन्तामणिः।

नापि साध्यासामानाधिकरण्यानिधिकरण्यं साध्य-वैयिधिकरण्यानिधिकरण्यं वा तदुभयमपि साध्यानिध-करणानिधिकरण्यं तच्च तत्र यित्किञ्चित्साध्यानिध-करणाधिकरणे धूमे चासिडम्॥१॥

दीधिति:।

नापीति साध्यमसमानाधिकरणं यस्य यदधि-करणानधिकरणं साध्यं तत्वम् साध्यनिष्ठासामानाधि-

प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रमेयत्वविशिष्टबोध (१) इति नानुपपत्तिः रित्याहः॥ ४॥

इति अनुमानदीधितिप्रसारिखां व्याप्तिपञ्चकं समाप्तम्।

प्रक्ततत्तवणयोः पौनक्तिः शङ्कयान्यथा व्यावष्टे साध्य-मिति। तथा चात्र बहुबीहिक्त्तरच तत्पुक्ष इत्यभिप्रायः, यत्तदर्थयोरननुगमादाह साध्यनिष्ठेति प्रतियोगित्वं निक्ष्पकत्वं ननु द्रव्यं सत्त्वादित्यादावित्याप्तिः सत्वस्य द्रव्यत्वसामानाधि-करण्याभाववत्त्वाभावात् सत्वे द्रव्यत्वनिष्ठासामानाधिकरण्यनिक्-

⁽१) प्रमेयत्वघटत्वोभयाविष्कः सप्रतियोगिताया एव प्रमेयत्वेनावच्छे द्वत्वमात्रं विषयोक्तत्वसंसर्गतया भानेन प्रमे नायंस्तीति श्वमात्रकप्रतीत्व्यपपत्तिरिति भावः।

करण्यप्रतियोगित्वम् साध्यनिष्ठार्धयत्वानिक्रपकाधि-करण्यतित्वमिति यावत् तदनधिकरण्विमित्यर्थः साध्यवद्भिन्नस्य च साध्यनिष्ठाधियत्वानिक्रपकात्वात्त-हृत्ती नातिप्रसङ्गः साध्यनिष्ठाधियत्वानिक्रपकाधि-करण्वव्यापकाभावप्रतियोग्यधिकरण्तासामान्यकत्व-मिति निष्क्रपक्षेत्तेन सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादी न दोषः॥

पकलाभावादतः साध्यनिष्ठेति केचित् वसुतो बहुत्रीह्यश्रंघितस्य गुरुलादाह साध्यनिष्ठेति । ननु साध्यनिष्ठाधियलानिरूपकाधि-करणाहित्तिलं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैव वक्तव्यम् । श्रन्यथा विक्रमान् धूमादित्यच ताद्यस्वावयवे धूमस्य हत्तेरव्याप्तिः । तथाच सत्तावान् द्रव्यलादित्यत्व सत्तानिष्ठाधियलानिरूपकाधि-करणसामान्यादिसमवेतलस्य श्रप्रसिद्धाऽव्याप्तिस्ततो निष्कर्षे कुरुते साध्यनिष्ठेति । श्रचाधियलमपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धे-नैव तेन वक्तेः समवायेन साध्यले धूमे हेतौ सम्बन्धसामान्येन साध्यनिष्ठाधियला-निरूपकाधिकरण-जलक्रदादिनिष्ठाभावप्रतियो-ग्यधिकरणताकि वक्तौ श्रतिव्याप्तिरित्यतो व्यापकिति । याक्तिचिद्यत्व सिक्तव्यापकलात्, व्यभिचारिष्यतिव्याप्तिरित्यत श्राष्ट्र सामान्येति, तेनेति तथाच सत्तावान् द्रव्यलादित्यत्व सत्तानिष्ठा-

साध्यवैयधिकरण्यं साध्यविद्वन्नाधिकरणकत्वञ्चर-माधिकरणत्वांश्रस्थानितप्रयोजनकत्या तदपहायदय-मेकोक्त्या अनूदादूषयित तदुभयमपीति॥१॥

साधित्यादेः साध्यं यदिधकरणानिधकरणं तत्त्वा-भावः। साध्यस्य यदनिधकरणं तद्दृत्तित्वाभावश्चार्यः। तत्र केवलान्वियिन साध्यनिष्ठाधियत्वानिरूपकाधि-करणाप्रसिद्धाः नानाव्यिक्तसाध्यके च एकसाध्य-व्यक्तिनिष्ठाधियत्वानिरूपकाधिकरणत्वं साधनाधिकरण-व्यक्त्यन्तरस्थेत्यव्याप्तिः, क्वचिद्याभिचारिणातिप्रसङ्गश्चाद्ये दितीये च साध्यवैयधिकरण्ये यदि साध्यवत्त्वाविक्तव-

धेयत्वानिक्पकाधिकरणे समवेतत्वाप्रसिद्धाविप सामान्यादी द्रव्यत्वाधिकरण्वाभावात् नाव्याप्तिः साध्यासामानाधिकरण्वादेः साध्यानिधकरण्वानिधकरण्वे पर्य्यवसानमभिप्रत्याह अनितिप्रयोजनकतयेति अभावभेदात् ययोक्तसिविधाचावैयर्थेऽपि प्रयोजनराहित्यमित्यर्थः॥१॥

साध्यसिति प्रयमलचणाभिप्रायेन साध्यस्येति, दितीयलच-णाभिप्रायेण अप्रसिद्धेति अधियलनिरूपकलसामान्याभावमभि-प्रेत्य नानेति, यिलिश्विदभावमभिप्रेत्यसामान्याभावपचे दोषा-न्तरमाह कचिदिति। गुणकभाष्येले सित सत्तावान् जाते-रित्यक, अत च सत्तानिष्ठं यावदाधियलं तदनिरूपकं सामान्याये- प्रतियोगिताकोभेदो विविच्चतस्तदा केवलान्वयिनि यदि च यत्किञ्चित्साध्यवद्याक्तिभेदस्तदा नानाधिकरणसाध्यके सर्व्ववाव्याप्तिः॥

केवित्त साध्यासामानाधिकरण्यं हेतुतावच्छेदक-सम्बन्धेन हेलिधिकरणे तेनैव सम्बन्धेन साध्यवहृत्ति-लाभावस्तदिधिकरणिभद्गत्वमर्थस्तेन धूमस्य स्वावयवे संयोगेन विद्वमित च समवायेनाहत्ताविप न चितिः। ताहणाभावस्य सम्बन्धान्तरेण तचैव वर्त्तमाने सुलभः व्यभिचारिणस्तु व्यभिचारिनरूपकाधिकरण एव ताहणि ताहणाभाववच्वं सत्तायां गुणे न द्रव्यत्वसामानाधि-करण्यमित्यनुभवात्। न चैवं गुणकक्षान्यत्वविणिष्ट-सन्त्वेऽव्याप्तिः, विणिष्टस्यातिरिक्तत्वात् स्रनतिरिक्तत्वे

ति धूमवान् वक्नेरित्यत्न त्वयोगोलकस्य ताद्ययतात्रातित्याप्तिः।

ाद्यप्रतीकस्य व्याद्यत्तिमास्, तेनेति। दितीयस्य तदास्, विक्वतीति। तेनैवेति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैव एतच अभावायौति बोध्यम्। न चतिरिति, विक्वमान् धूमात् दत्यत्न

ाव्याप्तिरित्यर्थः। ताद्याभाव दति न च गगणे एव प्रतिद्धिः,

ाने ताद्यस्तिष्विकरणाविच्छित्नसाध्यवद्वत्तित्वाभाविवरहात्,

द्यौति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुमतीत्यर्थः। ननु ताद्य-

तु विशेषणविशेष्यसम्बन्धस्येव परम्परया व्याप्तलात्, केवलाव्ययिन चाव्याप्तरिभधानं दितीयलचणाभिप्रायेण्याचुरू चिन्त्यं सत्तायां गुणे न द्रव्यत्यसामानाधि-करण्यमिति प्रतीतिर्हि द्रव्यत्वे गुणे न पृथिवीत्वसामानाधि-करण्यमितिप्रतीतिवत्सत्तानिष्ठद्रव्यत्वसामानाधि-करण्यावच्छेदकत्वस्य परम्परासम्बन्धेन सामानाधि-करण्यस्य वा अभावं गुणेऽवगाइते न तु सत्तायामेव द्रव्यवृत्तित्वाभावं सत्ता न द्रव्यवृत्तित्वाभावं ते सत्तावित्वादिसर्व्वजनसिद्धप्रतीति-वाधितत्वात् वाधकाभावात्तु संयोगतदभावयोरव-च्छेदकभेदेनैकवप्रतीत्या तदुभयोरकव सिद्धः। अती-

प्रतीत्था सामानाधिकरण्यस्य प्रतियोगित्वमवगाञ्चते तत्नुती-ऽवच्छेदकस्य प्रतियोगित्वावगाइनेन निर्व्वाष्ट इत्यत प्राष्ट्र, परम्परा-सस्वस्थेनेति । ननु द्रव्यव्वत्तित्वस्य प्रव्याप्यव्वत्तित्ववादिनो मते द्रव्यव्वत्तित्वाभावोप्यव्याप्यव्वत्तिस्तत् कृतो विरोध इत्यत ग्राइ, द्रव्यव्वत्तित्वाभाव इति । ननु मृत्वे किषसंयोगो नास्तीति प्रतीतिर्म्यू संयोगावच्छेदकत्वाभावादिविषयत्वेनोपपत्ती किप-संयोगाभावोऽपि वृत्ते न सिध्येत् इत्यत ग्राइ, वाधकाभावाचिति । संयोगाभावो न वृत्तवित्रत्ययाभावादित्यर्थः । ननु प्रवापि न्द्रियसाध्यकेऽतीन्द्रिये व्यभिचारिखितप्रसङ्गाच । तच सामानाधिकरखाभावस्य प्रत्यचत्वासस्भवेनासिडेः ॥ २

न च तदभाववहृत्तित्वेन तच तदनुमेयं तददृत्ति-भिन्नत्वस्रोपाधित्वात्। किञ्च ददमिदानीमितिप्रतीति-नियामकविशेषणताविशेषेण हेतुतायां सहेतावव्याप्तिः तैन सम्बन्धेनाधिकरणे काले तेन सम्बन्धेन साध्य-वदृत्तित्वस्य विरहिणोऽप्रसिद्धेः॥ ३॥

> दति श्रनुमानदीधिती सिंहव्याघ्रलच्छां समाप्तम् ।

द्रव्यवृत्ति लाभावो न सलावृत्तिरिति प्रतीतिरिषष्ठेत्वत श्राह, श्रतीन्द्रियेति। इदं गुरु श्राकाणाभावादित्वत्रेत्वर्थः ॥२॥

ननु श्राकशाभावी गुरुखवहृत्तिलाभाववान् गुरुखाभाव-वहृत्तिलात् इत्यनुमानात् मेल्यिति इत्याशङ्का निषेधित, न चेति। तहहृत्तिभिवलस्येति श्रस्य उपाधेः तेजस्वादी साध्यत्या-पकता साधनात्यापकता च पचादी इति न चैवंविधतर्कावतारे श्रतीन्द्रियसंयोगस्यापि श्रव्याप्यहत्तित्वं न स्थात् इत्यत श्राह, किश्वेति। न च स्वनिष्ठतादृशसामानाधिकरस्थाभावानवच्छेदक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धीयहेलिधिकरशीयलिवच्ययेव एतदुद्वार इति वाच्यम्। विकल्पासहलात् तथाहि स्वनिष्ठं यक्षामानाधि- करणं तदभावस्य अनवच्छेदकालं हेलिधिकरणस्थेत्युक्ती विक्तमान् धूमादित्यत्रात्याप्तिः धूमवित्रष्ठं यसामानाधिकरणः तदभावस्यैव पर्व्यतरूपादिनिष्टस्य हेतुतावच्छेदकसम्बन्धीयहेलिधिकरणपर्व्व-तादेरवच्छेदकालात्।

श्रय स्वनिष्ठो यः सामानाधिकरण्याभाव द्रति वाचम्।
कालो घटवान् पटात् दत्यत्र तु पटस्यावयव एव तथा भावः प्रसिद्धः
कालस्तनानवच्छेदक एवंति वाच्यम्। प्रमेयवान् श्रभिधेयात्
दत्यत्र स्वरूपसम्बन्धेन हेतुतायां गगनपरिमाणादेईतीर्यः स्वनिष्ठः
साध्यवहृत्तित्वाभावः तदवच्छेदकमेवाकाशादिकं तत्सम्बन्धावचिक्रवहेत्वन्तराधिकरणमित्यव्याप्तेः, श्रय यद्यक्तिनिष्ठस्तादृशवृत्तित्वाभावस्तद्धिकरणस्य श्रनवच्छेदकत्वं वक्तव्यं तदेदं पार्थिवपरमाणुत्वाभाववत्, परमाणुत्वाभावादित्यत्र परमाणुत्वाभावस्य
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धान्येन सम्बन्धेन श्रधिकरणेषु कालादिव्यपि
विशेषणताविशेषेण वृत्तेस्तादृशवृत्तित्वाभावो हेतावप्रसिद्ध एव
दत्यनं तदेकदेशप्रतिकारेण दत्ति॥ ३॥

इति अनुमानदीधितिप्रसारिखां सिंच्याघलचणं समाप्तम्।

ग्रय व्यधिकरणधमीविच्छन्नाभाववादिलचणम्।

तत्त्वचिन्तामणि:।

अधिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यच समवायितया वाच्य-त्वाभावो घट एव प्रसिद्धः व्यधिकरणधर्माविक्छन्नप्रति-योगिताकाभावस्य केवलान्वयित्वात्। न चैवं घट एव व्यभिचारः साध्यतावक्छेदकाविक्छन्नप्रतियोगिताका-भाववहृत्तित्वं हि व्यभिचारः न च वाच्यत्वाभाव-स्तादृशो घट दृति चेत्तर्हि तादृशसाध्याभावसामानाधि-करण्याभावोव्याप्तिः तथाचाप्रसिद्धिः।

दीधिति:।

समवायितयेति वाच्यत्वं न यथा समवायि तथा वन्यते, घटादिसमवायितयेत्वर्थः द्रत्यप्याहुः प्रमेय-

प्रसारिणी।

समवायितयेति। ननु समवायिलं वाच्यलनिष्ठप्रतियोगिताया व्यधिकरणमेव न भवति। तथाहि वाच्यलं तावदीश्वरेच्छा
तत्र इच्छालादीनां समवायात्, इच्छानिक्षपितसमवायप्रतियोगिलाच इति दिविधस्य समवायिलस्य तत्र भाव दत्यत
भाह, वाच्यलमिति वच्यत इति। वाच्यलं नेश्वरेच्छामातं,
तथाले घटशब्दस्य सम्बन्धो वाच्यो कृपनिक्षितसमवाय इव

साध्यके च भावलेनाभावानां स्रभावलेन भावानां विद्धालेन निर्व्वद्धी स्रवित्तमात्रवित्तगगनलादिना विश्व हिन्द्यस्थास्य सर्व्वत प्रमेयमातस्थाभावः सुलभः॥१॥

ननु पारिभाषिकमेवाऽव्यभिचारित्वं तथाहि यत् समानाधिकरणाः साध्यतावक्छेदकाविक्छन्नव्यापकता-

क्ष्पस्य इति चेन्न, ति विशिष्टस्य न समवायित्वं न वा सम-वेतत्वमिष, वस्तुत एव तन्मते शिक्तरितिरक्तेन इति घठश्रव्दस्थापि पटे शक्ततापत्तेः। श्रय घटशब्दोपिहतिष्वरेच्छा इति स्वयमेन प्रतिपादितमिति स्वयं शिक्तं प्रदर्शयन् प्रमियसाध्यके व्यधिकरण-धन्माविच्छन्नाभावं व्यवस्थापर्यात, प्रमियसाध्यक इति सच्चणयो-गैमनन्तु ईष्टशाभावानवतारेऽपि घटत्वेन वाच्यताभावमादाय प्रथमस्य श्रेयत्वत्वेन वाच्यताभावमादाय दितीयस्य सम्भव इति। नतु प्रमियमात्रस्थ एकोऽभावस्त्रधापि नायात इत्यत श्राह, विश्च-त्वेनिति। नतु केवलान्वियप्रमियमात्रस्थाभावो सन्यत इत्यत श्राह, गगनत्वेनिति। नतु गगनत्वेनप्रमेयं नास्तीत्यत्र गगनत्वविशिष्ट-प्रमियाभाव एव विषयो वक्तव्य इत्यत श्राह, विश्वेति॥१॥

यदित्यादि श्रत यत्पदं हेलभिमतपरं साध्यपरले परि-माणवान् श्राकायत्वात् इत्यत् श्राकायपरिमाणलेन परिमाणा-भावस्य तादृशस्य स्वविष्यष्टहेलिधिकरणाप्रसिद्याऽत्यास्यापत्तेः। वक्छेदकप्रतियोगिताका यावन्तोऽभावाः प्रतियोगि-समानाधिकरणास्तत्व सर्व्यच वाच्यत्वाद्यभावस्य तथा-त्वाद्यावन्त्वोपादानम् । अतएव भूतत्वमूर्त्तत्वोभयवान् मूर्त्तत्वादित्यादौ दित्वाविक्षद्राभावस्य प्रतियोगिसामा-नाधिकरण्धेऽपि भूतत्वमनोन्यत्वाद्यभावस्यातथात्वा-द्यातिप्रसङ्गः॥

साधनसमानाधिकरणस्य गोत्वाद्यभावस्य तत्तत्साध्य-

एतत्पदादाने विक्तमान् धूमात् द्रत्यादी विक्तित्वाविक्तित्रप्रितान्योगिकवक्त्रभावस्य प्रतियोगिसामानाधिकरस्याभावात् दोष द्रित, यद्यपि तदभावस्य कालिकसम्बन्धेन विक्तिसहित्वात् न दोषः, तथापि स्यमात्माज्ञानादित्यादावव्याप्तिबीध्येति। साध्य-तावच्छेदकाविच्छित्रसाध्यनिष्ठा या व्याप्यता, तिन्द्रिपका या व्यापकता, तदवच्छेदिका या प्रतियोगिता, यत्र यत्र साध्यताव-च्छेदकाविच्छित्रं साध्यं, तत्र तत्र वक्तमानव्यत्तिर्वा या प्रतियोगिता, ताद्यप्रतियोगिताकाभावा द्रत्यर्थः, सर्व्यत व्यभिचारित्यति-व्याप्तेरिति प्रेषः। तथात्वात् प्रतियोगिसमानाधिकरण्त्वात्। सत्यव ताद्याभावस्य यावच्चिववच्चणादेव, साभिप्रायं ताद्या-भावस्य यावच्चिववच्चणादेव, साभिप्रायं ताद्या-भावस्य यावच्चे विवच्चिते उदासीनमनोन्यत्वाद्यभावमादायापि नातिव्याप्तिरिति कैमुतिकन्यायेनाच्छं, मनोन्यत्वेति॥

नतु यसमानाधिकरणा यावन्तीऽभावाः प्रतियोगिसमा-नाधिकरणा द्रत्येवासु श्रतं साध्यतावच्छेटकेत्यादिविवचणे- व्यक्त्यभावस्य चातथात्वात् साध्यतावक्तेदकीत्यादि। येन सम्बन्धेन हेतुसीनैव तदिधकारणं बोध्यम्॥२॥

तैनातमत्वे साध्ये समवायेन हेतोर्ज्ञानस्यविषयतया अधिकरणे घटादीवर्ज्ञमानस्य साध्याभावस्यातयात्वेऽपि

नित्यत ग्राप्त, साधनसमानाधिकरणस्येति। ननु गोलाद्यभावस्य साध्याभाव इत्यनेनैव वारणात् त्राप्त, तत्तिदिति। ननु साध्य-तावच्छेदकयापकप्रतियोगिताकाभावा यावलेन विशिष्यन्तां किं त्रवच्छेदकावच्छित्राभ्यां, व्यापकलम्तु तद्दविष्ठप्रतियोगिव्यधिकर-णात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं. प्रतियोगिता च न तदवच्छेदकधर्मः. श्रपितु श्रतिरिक्तीव इत्यत श्राह, श्रतएविति। निरुक्ताभावस्य यावलविवचणादेविति नव्याः। श्रतयालात् प्रतियोग्यसमाना-धिकरणलात्। साध्यव्यापकप्रतियोगिका इत्युक्तेऽपि तत्रैव दोष द्रत्यवच्छेदकानुसरणं साध्यतावच्छेदकावच्छित्रव्यापकप्रतियोगि-काभावा दलवापि तदभावमादायैव दोषः तदक्करेपि वक्किलाव-च्छित्रं प्रति प्रमेयलेन व्यापकलात्। एवं साध्यतावच्छेदक-व्यापकप्रतियोगिताका इत्यवापि तदक्किनिष्ठप्रतियोगिताया अपि प्रमियलेन विज्ञलव्यापकालात्। न च साध्यतावच्छेदकाविच्छन-प्रतियोगिताका यावदभावा इत्येवीच्यतां, प्रमेयसाध्यकाव्याप्ते-रित्यादि खयमू हणीयम्॥ २॥

तेनीति विक्रमान् धूमादित्यत्न धूमावयवद्यत्तिसंयोगसम्बन्धाव-च्छिनवक्राभावमादायापि यद्यपि व्याद्यत्तिर्युच्यते । एव, तथापि न चितः। एवं दलान्तरेऽपि सम्बन्धभेदनिबन्धनो दोषः सम्बन्धेक्यविवचया निरसनीयः॥ ३॥

तदभावस्य उत्पत्तिकाले विज्ञमिति, एवं द्रव्याव्याप्यवृत्तिल-वादिमते श्रवच्छेदकभेदेनापि सत्त्वात्, प्रतियोगिसामानाधि-करण्यसभाव इति, न च तथापि हिलिधिकरणावच्छेदेन प्रति-योगिसामानाधिकरण्यविवच्चणेनैव प्रक्ततिनर्व्वाच इति वाच्यम्। ताद्वयविशेषणानुसन्धानिऽपि साध्याभावमादायापि व्यावित्तरत इत्यभिप्रायात। श्रतएव विक्रमत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वाभाव-मादाय प्रयोजनमपि अनादेयं, साध्यनिष्ठव्याप्यता च साध्यताव-च्छेदकसम्बर्धन बोध्या। तेन समवायसम्बर्धन विज्ञसाध्यके व्यभिचारिणि हेती साध्यनिष्ठसम्बन्धसामान्यव्याप्यता निरूपित-व्यापकतावच्छेदकप्रतियोगिताकस्य हेत्समानाधिकरणस्य व्यधि-करण्धसीव च्छित्रस्यैव श्रभावस्य प्रतियोगिसामानाधिकरखेन दोषः। तथाविधवन्नग्रवयवलाभावादौ प्रतियोगिसामानाधि-करण्याभावात्। ननु ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् द्रत्यतातिव्याप्तिः. समवायसम्बन्धावच्छिनज्ञानाभावस्य विषयतया प्रतियोगिसमा-नाधिकरण्लात्। त्रय त्राक्षलसुखाद्यभावानां तादृशप्रतियोगि-सामानाधिकरखविरहात् नातिव्याप्तिरिति चेत्. न तथापि काले हेलिधिकरणे सर्वेषामेव ताह्याभावानां प्रतियोगिमामा-नाधिकरस्थात्। प्रय वस्यमागद्देवधिकरगावस्केदेनेत्यनेनैव तदारणं इति चेन्न, तथापि ज्ञानवान् श्रात्ममहाकालान्यतर-

लात् इत्यादावितव्याप्तिरित्यत ग्राह, एवमिति सम्बन्धेकोति, ग्रव व्यापकताघटकसम्बन्धेन प्रतियोगिसामानाधिकरण्यं विवचणीय मिति व्यापकताघटुकसम्बन्धसामानाधिकरखघटकसम्बन्धयोरैका-विवच्चयेत्वर्थ:। तेन समवायाविक्षात्रव्यापकतावक्केदकप्रति-योगिताकसुखाद्यभावस्य समवायेन सुखाद्यसमानाधिकरण्लात्र दोष इति । अन केचित व्यापकताघटकसम्बन्धप्रतियोगिसामा-नाधिकरण्यघटकसम्बन्धयोरैकाविवचणिन किं, येन येन सम्बन्धेन यस्याभावस्तेन तेन सम्बन्धेन तद्धिकरण्ड्वत्तित्वं तदभावस्य इति विवचयैवातिव्याप्तेवीरणात्। तथाहि ज्ञानवान् त्रात्मसहाका-लान्यतरलादित्यत समवायसम्बन्धाविक्तित्रज्ञानाभावस्य कालिक-सम्बन्धाविक्वनज्ञानाभावस्य च प्रतियोग्यधिकरणे सहाकाले व्यत्तिलेऽपि न चतिरिति। तन नानो घटवान् पटादित्यवात्राप्तेः, दैशिकविशेषणतासम्बन्धेन मंयोगसम्बन्धाविष्ठत्रघटक्पप्रतियोग्य-निधकरणे महाकाले हत्तिलात्, न च साध्यताघटकसम्बन्धन व्यापकलं, प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धस्य प्रवेशात्, ननु इय-मिच्छा, ईं खरस्य ज्ञानं सविषयकालादित्यत व्यभिचाराधिकरणी-भृतेच्हाक्षत्योर्वेर्त्तमानानां तादृशाभावानां व्यापकताघटकविष-यितासस्बन्धेन सर्वेषामेव प्रतियोगिसमानाधिकरण्लादति-व्याप्तिरिति चेन, यावन्तो व्यापनताघटनसम्बन्धास्तैस्तैः प्रति-योगिसमानाधिकरणलस्य विविच्चितलात्, तयाचेश्वरज्ञानला-भावस्य इच्छान्यलाभावस्य वा ताद्याच्यापकताघटकसमवायेन सक्पेण वा सम्बन्धेन प्रतियोगिसामानाधिकरस्थाभावानाति-

क्षपदिसामान्याभावे साध्ये पृथिवीत्वादिकं संडेतु-रेव प्रलये परमाणावृत्पत्तिकाले चावयविनि तत्सच्वात्।

व्याप्तिरिति। न चाभावांशे सम्बन्धविवचाया श्रभावादिति, विषयितासम्बन्धेन ततापि तादृशाभावीऽस्तीति वाचं, येन येन सम्बन्धेन निरुत्ताभावानां हेतुमति इत्तिस्तेन तेन खविशिष्ट-हिलधिकरणावच्छेटेन तैस्तैर्व्यापकताघटकसभ्वदैः प्रतियोग्यधि-करणद्वत्तित्वस्य विवचणीयत्वात्, तथाच ईम्बरज्ञानत्वाभावस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेनेच्छावृत्तेः तेन सम्बन्धेन प्रतियोगि-सामानाधिकरण्याभावामातिव्याप्ति:। केचित्तु व्यापकताघटक-सस्बस्यमतियोगिसामानाधिकरख्यचटकसम्बन्धयोः साध्यतावच्छे दक्तसम्बर्धनैकां वर्णयन्ति तन्न सर्वत्र वाचलाद्यभावस्थिति ग्रन्थ-विरोधात्, यत्र महाकालान्यत्वविधिष्टो घट: कालिकसम्बन्धेन साघ्यः काललादिति हेतुः तत्र व्यभिचारनिरूपकाधिकरणे महाकाले कालिकसम्बन्धेन तावदभावानां प्रतियोगिसामा-नाधिकरखसस्वात् अतिव्याप्तिश्वेति, अस्मनाते तु खग्डकाल-ललाविच्छन्नाभावस्य तथाविधस्य व्यापकताघटकदेशिकविग्रे-षणताविशेषेण प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावादतिव्यास्यनव-कामात् इति दिव्॥ ३॥

ननु प्राचां मते रूपसामान्याभावस्य साध्यतायां पृथिवीत्वं विरुद्धं तच युक्तिविरुद्धम्, श्राद्यच्ये रूपं नास्तीतिप्रतीतिसिद्धस्य रूपसामान्याभावस्य तत्राभ्युपगन्तुसुचितत्वात्।

न च प्रतियोगिवत् तद्वंसप्रागभावयोरत्यन्ताभाव-विरोधित्वं मानाभावात् ॥ ४ ॥

तत कौट्यो व्यवहार इत्यत ग्राह रूपेति । केवित्त प्राचां मते तवालच्ये तनाते एव तवातिव्याप्तिः, तथान्ति रूपसामान्याभाव-स्याभावो रूपं, तच रूपध्वंसप्रागभावयोरप्यभावः जन्यभावस्य खर्धंसप्रागभावाखन्ताभावाभावलाभ्युपगमात्, तथाच रूपखरूपा-भावस्य सध्यंसादिसमानाधिकरणलात् दत्यत श्राह रूपेती-त्याइ: तद, तदाते पृथिव्यन्यताभावस्यापि तादृशतात् तस्य च प्रतियोगिसामानाधिकरखाभावात्, न च तत्नांप घटव्वत्तिल-विशिष्टपृथिव्यन्यलाभावस्य प्रतियोगी योऽभावः तत्र्यतियोगी परे वर्त्तते पृथिव्यन्यलाभावोऽपि तत्र वर्त्तत इति सामानाधिकरणः मिति वाचम्. तथापि पृथिव्यन्यत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यताभावस्य तथालात्, न च तस्यापि उक्तप्रकारेण तथालं तथापि पृथि-व्यन्यवप्रकारकप्रमाविशेष्यवाभावस्य अतथावात्, न च तथा-प्यक्तताहग्रमाविग्रेष्यत्वस्य विग्रेषणताविग्रेषक्रपत्र्यापकताघटक-सम्बन्धेन प्रतियोगिसामानाधिकरखाभावात् । किञ्च एवं धूमवान् वज्ञरित्यतापि निचिद्धिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्थाभावरूपप्रति-योगिना धूमाभावस्य समानाधिकरणलात् त्रतित्याप्तेः दुरुद्वर-व्यादिति, प्रबये महाप्रबये, परमाणी पार्थिवपरमाणी, तस्रस्वात् रूपसामान्याभावसत्त्वात्। मानाभावादिति न च रूपात्यन्ता-भावस्य रूपादिवितयाभावात्मकालं व्याहतम् इष्टलात्, ननु

अतएवान्तराध्यामे रत्तं रूपं नास्तीति प्रत्ययः। न चैष रित्तमरूपध्वंसाद्यवगाष्टी पूर्व्वापररित्तमध्वंस-प्रागभाववित द्रदानीं रत्तेऽपि तथा प्रत्ययप्रस-ष्ट्रात्॥५॥

भवयविनि उत्पत्तिदशायां रूपसामान्याभावे नाध्यचं प्रमाणम् इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया श्रभावात्। नाष्यनुमानम् श्रप्रयी-जकत्वात् इत्याशङ्का यत्र तडमीविच्छनस्य कस्यचिड्वंसः कस्य चित्प्राग्भावः तच मध्यमदशायां तडमीविच्छन्नध्वंसादिना विरोधाभावात्॥ ४॥

मामान्याभावं व्यवस्थापयत्राह, श्रतएविति। यत एव ध्वंसप्रागभावयोरिवरोध इत्यर्थः, पूर्व्वापरित रक्तव्वात्त्रया प्रत्ययप्रमङ्गात्, रक्तव्वाविच्छत्रप्रतियोगिताकेन संसर्गेण रक्तव्वविष्यष्टरूपनिरूपिता या प्रकारता तच्छानौप्रत्ययप्रसङ्गादित्यर्थः, तच
तत्र वाधितम् कस्यचिद्रक्तस्य विद्यमानवादिति प्रक्रान्त्यिकिञ्चत्
ध्वंसस्य प्रागभावस्य च तत्र विद्यमानवादित्यर्थः, न च रक्तं
नास्तौतिप्रतीतेः रक्तवाविच्छत्राभावविषयत्वं वाच्यम्। श्रन्तरास्थामेऽपि रक्तं नास्तौतिप्रतीतेरपनापप्रसङ्गात्, न हि ध्वंसप्रागभावयोः सामान्याभावत्रवादिमतेऽपि तत्र रक्तव्वाविच्छत्रध्वंसप्रागभावौ स्त इति। न च रक्तव्वाविच्छत्रध्वंसन्तम् एव इति
वाच्यं विशेषदर्श्वनोऽपि तथा बोधात् तथाच रक्तं नास्तौति-

तत्सामानाधिकरण्यञ्च खिविशिष्टच्चेत्वधिकरणाव-च्छेदेन बोध्यं तेन गोत्वजन्यद्रव्यत्वप्रणयाद्यत्तित्वा-दिना गवादेरभावस्य गवाद्यनिधकरण्देशावच्छेदेन तद्वति काले महाकाले वा दृत्ताविष यदा गोत्वं तदा गौर्यं कालतं तव जन्यद्रव्यं प्रणयाद्वत्तिर्व्वेत्यादी नातिप्रसङ्गः।

प्रतीते रक्तवाविष्क्रत्राभावविषयत्वं वाच्यम्, स चेदन्तराध्यामे वर्त्तते तदा गतं ध्वंसप्रागभावयोर्व्विरोधेनेति॥ ५॥.

तेनेत्यादि। प्रक्रतहेलोर्च्यभिचार इत्यत्यन्ताभावाय न खण्डप्रक्रये ब्रह्माण्डान्तरे तदानीं गवादेः सत्त्वात् इति महाप्रक्रये तत्
प्राक्कालादी व्यभिचारो बोध्यः, तन स्यूलद्रव्याणां गवादीनां प्रादी
नाशः, तदनन्तरं द्राणुकपर्य्यन्तानां जन्यद्रव्याणां नाशः, तदनन्तरं
गुणानां नाशः इत्यभ्युपगमात्, क्रमण त्रीस्त्रीनभावानादाय प्रक्रतविशेषणाद्व्यभिचारमुद्रमुं गोलित्याद्युक्तं, जन्यस्य कालोपाधित्वानद्गीकर्त्तृमते त्रयोगोलकान्यत्वाद्यभावस्य पत्र्वताद्यवृक्तित्वात् धूमवान् वक्रिरत्यत्र नातित्याप्तिरिति तदुपेच्य गोलाद्यनुधावनं, ननु
स्वष्टिकाले गवाद्यनिधकरणदेशावच्छेदेन गवाद्यभावो विवादपस्तः, इदानीं भूतले गौनीस्ति द्रत्यादिप्रतीत्या साधनीयः
तस्याय भूतलादी तत्वालीनत्वावच्छेदेन देशिकसम्बन्धावच्छित्रगवाद्यभाववच्वं किंवा काले ताद्यपदेशावच्छेदेन कालिकस्वन्धावच्छिन्नतदभाववच्वं चाविषय इति विवादात् इत्यत ग्राह, महा-

हितुमतिप्रलये तत्सामानाधिकरण्याभावात्। खिविशिष्टेतिविशेषणात् किपसंयोगाभाववान् मेयत्वा-

काल इति। एतिहवादतत्त्वम् तु सिहान्तलच्चणे वच्चते। महा-प्रलयाभावाभावस्य महाप्रलयाक्षकस्य सृष्टिकाले प्रतियोगि-सामानाधिकरस्थान्महाकालपर्य्यन्तानुधावनमिति केचित्, तन्न तस्यापीदांनीन्तनध्वंसाक्षककालोपाधी प्रतियोगिमिति वृत्तेः कालिकव्याप्तिं दर्शयित्वा दैशिकीमाह, यत्निति। जन्यद्रव्यत्व-मपेच्य व्यापकरूपेणापि श्रतिव्याप्तिं दर्शयितं प्रलयावृत्तिव्वंति। तयाणामेव साध्याभावानाम् एकमेव प्रलयाभावमादाय विशे-षणाभावं दर्शयन्नाह, हेतुमतीति।

ननु प्रलयान्यत्वाभावस्य ताद्यस्य कथं प्रतियोगिसामानाधिकरण्यं न हि प्रलयान्यत्वाभावाभावो देशिकसम्बन्धेन सृष्टिकाले
महाकाले वा वर्त्तते येन प्रतियोगिसमानाधिकरण्यं सिध्येत, न च
प्रलयान्यत्वस्थापि नित्यतया कालिकसम्बन्धेन प्रलये द्वत्ते: प्रतियोगिसामानाधिकरण्यमिति वाच्यं व्यापकताघटकेन देशिकविधीषणताविधेषेण प्रतियोगिनोऽभावाधिकरणासम्बद्धतादिति चेन्न
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणे येन सम्बन्धेन वर्त्तमानत्वम्
स्रभावस्य तेनैव सम्बन्धेन व्यापकताघटकसम्बन्धाविक्षत्रप्रतियोग्यधिकरण्वित्तत्वं वक्तव्यं भवति, हि कालत्वाधिकरणे प्रलये
कालिकसम्बन्धेन प्रलयान्यत्वाभावस्य द्वत्ते: व्यापकताघटकसम्बन्धेन देशिकविधेषण्यताविधेषेण प्रलयान्यत्वाऽधिकरणे महाकाले

दिखादौ संयोगाद्यात्मकस्य साध्याभावस्य सकलहेल-धिकरणाष्ट्रत्तित्वेऽपि नाव्याप्तिः॥ ६॥

कालिकसम्बन्धेन प्रसयान्यताभावस्य वृत्तित्वभित्यतिष्याप्ति-समावनया विशेषणदाने च तदभावस्य कालिकसम्बन्धेनाधि-करणे प्रलये दैशिकविशेषणताविशेषण सम्बन्धेन प्रलयान्यल-स्थानिधकरणलावातित्याप्ति:। न च तथापि महाकालो घटवान महाकालाकाशान्यतरत्वात् इत्यादी ये ये ताद्रशाकाशान्यता-भावादयो विशेषणताविशेषेणाकाशमात्रवृत्तयः त एव कालिक-सम्बन्धेन खविणिष्टयावहेळिधिकरणीभूतकाले व्यापकताघटक-सम्बन्धेन प्रतियोगिसमानाधिकरणा इत्यतिव्याप्तिरिति वाचं, येन येन सम्बन्धेनाभावानां हिल्वधिकरणे खवैशिष्ट्यं तावलाखन्धेन स्वविशिष्टहेलिधिकरणावच्छेरेन व्यापकताघटकसम्बन्धाविच्छेत-प्रतियोग्यधिकरणहत्तिलस्य विविधतिलात् भवति, हि स्ववैधिष्ठां ष्याकामेऽपि विभेषणताविभेषेण तत च प्रतियोग्यधिकरणविन-लाभाव इति कपिसंयोगाभावित्यादि प्राचां मते संयोगाभाव-साध्यके प्रमेयत्वं व्यभिचारीति कपीति ननु कपिसंयोगाभाव-वित द्रव्ये वर्त्तमानस्य किपसंयोगात्मकाभावस्य प्रतियोगिताव-च्छेदकलात्, न च कपिसंयोगस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणलात् श्रभावान्तरस्य च श्रनवच्छेदकलम् प्रक्षतप्रतियोगिताया श्रच्त-मिति वाच्यम्, प्रकृतव्यापकतायां प्रतियोगिसामानाधिकरण्या-प्रवेशसीव सम्यक्लात् तव तत्पदं निविश्व स्वविशिष्टपद-

दानस्य सन्दर्भविरुद्धलात्, न च ऋखख्डाभावेनावैयर्थमिति वाचं तयापि अन्तिप्रयोजनकलादिति चेन तददाने हि व्यापकल-मीटगाभाववादिमते निर्द्धक्तमशकाम्, तथा हि तहनिष्ठात्यन्ता-भावाप्रतियोगिलम् न प्रतियोगितात्रयस्य, त्रव्यापकलं तस्य तत्र अधिकरण्धभाविच्छन्नाभावसत्त्वात् नापि प्रतियोगितायाः ताइग्राभावप्रतियोगितानवच्छेदकालं प्रतियोगितारूपेण घटा-दीनामभावस्य विद्यमानलात्, नापि ताद्यमानप्रतियोगितायाः सामानाधिकरखोनानवच्छेदकलं प्रक्ततप्रतियोगितायाः विक्रमान् भूमादित्यत वज्लियापकतावच्छेदिकया प्रतियोगितया पर्ञ-तादौ महानसीयिकमिप नास्तीतिप्रतीतिसिद्धाभावस्य विज्ञ-मत्यर्वेतादिनिष्ठस्य सामानाधिकरखेन प्रतियोगितायाः प्रति-योगितावच्छेदकलात्, नापि ताइशाभावप्रतियोगिताया अनति-रिताहत्तिभिन्नलिमिति वाच्यम्। विज्ञिनिष्ठप्रतियोगिताप्रकारेण विज्ञधूमोभयाभावस्य विज्ञसमानाधिकरणस्य प्रतियोगितायाः भनितिरिक्तष्टत्तिरेव तादृशप्रतियोगितेति तस्या व्यापकलावच्छेद-कलचते:।

नाप्यन्यूनहत्तिलं, ताइशतत्तदात्त्र्यभावनिक्षितप्रतियोगितायाः
श्रन्यूनहत्तिलादेव तस्रतियोगितायाः, तथाच सामानाधिकरखेन श्रन्यूनानितिरिक्तहत्तियदवच्छेदकं तदन्यलमेव वक्तव्यम्,
एवं यथा तथा निक्चतां तदपेचया प्रतियोगिताप्रकारेण उपदिशिताभाववारणन्तु प्रतियोगिव्यधिकरणपदेनैव इति। न च
घटाद्यभावस्यापि घटलेन प्रमेयं नास्तीत्यादिप्रतीतिसिद्धाभावा-

जलादिवृत्तित्वविधिष्टगोत्वाद्यभावस्याभावस्तु जल-त्वाद्यभावो न तु धूमाद्यभावः जलादाविष तदभाव-

भिन्नतया प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिदिति वाचं, प्रति-योगितावच्छेदकाविच्छन्नासामानाधिकरण्यस्यैव विविच्चतलात्। प्रन्यन सिंडान्तलचणरीत्या प्रवधेयम्, व्यवहारसिंडप्रतियोगिकै-यधिकरण्याचिटतव्यापकतामादाय साध्यसामानाधिकरण्यावच्छे-दक्तेत्यादिव्यापकतामादाय वा स्वविधिष्टपददानमित्यपि केचित्। यत्तु विष्टमान् धूमादित्यन तार्णाताणीभयवद्धाभावस्यापि ताद्य-लात् तस्य च ताद्योभयवत्यवर्त्तमानस्य हिल्धिकरणावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावात् श्रव्याप्तिरिति स्वविधिष्ट-पददानमिति तन्न ताद्यगोभयवतोऽपि कालिकसम्बन्धादिना ताद्यगभाववत्त्रे वाधकाभावात्, सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यन नित्यल-विधिष्टसत्ताभावस्य हेतुसमानाधिकरणस्य हेत्वधिकरणावच्छेदेन श्रव्यत्तिरिणाय श्रयमात्मा ज्ञानादित्यनैतदात्मान्यत्वविधि-ष्टाक्तवाविच्छन्नप्रतियोगिताकाभावस्य एतिइन्नाहित्त्वेनाव्याप्ते-वरिणाय च स्वविधिष्टेति नव्याः।

केचित्तु इदं प्रमेयं वाच्यलादित्यत्र प्रमेयलभेदस्य तादृशस्य प्रमेयले वर्त्तमानस्य ईलिधिकरणावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधि-करण्याभावात् उभयोरेव लच्चणयोरव्याप्तिरिति स्वविशिष्टपद-मित्याद्व: ॥ ६ ॥

नतु धूमवान् वक्केरित्यवातिव्याप्तिः धूमाभावे जलवित्तित्व-

प्रत्ययप्रसङ्गात्। यत्समानाधिकरणानां साध्यताव-च्छेदकावच्छित्रव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छित्रप्रतियोगि-

विभिष्टगोलाभावो नास्तीतिप्रतीतेर्धूमाभावसक्ष्यासम्बन्सस सम्प्रदायसिडलेन धृमाभावस्य गोलाभावप्रतियोगिसामानाधि-करखादित्यत भाष्ट, जलादिव्यक्तिते जलादावपीति। न च ध्माभावस्य तादाक्येन गोलाभावाभावरूपलमिति कुतीऽति-प्रसङ्गसम्भव इति वाच्यम् श्रनन्ताभावानां तादाक्षेत्रन तादृश्गोला-भावाभावरूपलकल्पनमपेच्य एकस्यैव जनलाभावस्य तयालं करुयते लाघवादित्यभिप्रायात्। ननु धूमवान् बक्केरित्यन तयापि श्रतिव्याप्तिर्भूमवद्गृत्तित्वविशिष्टगोत्वाभावस्य उत्तन्यायेनधूमाभावा-भावतया तस्य च गोलाभावरूपप्रतियोगिसामानाधिकरखात्, न च संयोगात्मकव्यापकताइटकसम्बन्धेन प्रतियोग्यसामानाधिकर-खात तथिति वाचम् श्रयोगोलकनिष्ठसंयोगिपदार्थधूमान्यतरयी-र्धूमवदृत्तित्वविधिष्टलेन रूपेण योऽभावः सोऽपि धूमाभावसम-नियत इति, श्रतिव्याप्तितादवस्थ्यादिति समनियताभावभेदाभि-प्रायेणैवेदं वाच्यं, तच स्वासमातम् इत्यस्वरसात्, स्वमते लच्च-णान्तरमान्न, यदिति। तथाचोत्ताभाववारणाय प्रतियोगिताव-च्छेदकावच्छित्रसामानाधिकरख्यमवध्यं वाच्यं, तथाच सत्तावान् जातेरित्यताव्याप्तिद्रव्यव्यक्तित्वविशिष्टमत्ताभावस्य साध्यतावक्केद-काविच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकप्रयियोगिताकलात् तस्य च ताह्य-

ताकानां यावदभावानां प्रतियोगितावक्छेदकाविक्छन्न-सामानाधिकरण्यं तत्त्वं वा तत् ज्ञीयत्वत्वादिना वाच्य-त्वादौनामभावः सुलभ एव। शेषं दर्शितदिशावसेयम् अत आह प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति॥ ०॥

प्रतियोगिसामानाधिकरस्थाभावात्। यतः साध्यतावच्छेदकाव-च्छित्रव्यापकतावच्छेदकरूपाविच्छित्रेत्यादि, नन्वत्र व्यापकताव-च्छेदकेति त्यच्यतामिति चेत्, लघुसमनियतगुरुसाध्यतावच्छेद-काविच्छत्राभावाप्रसिद्धाव्याप्तेः तत्पददाने तु लघुना व्याप-कतावच्छेदकरूपेणाविच्छत्रप्रतियोगिताकत्यमभावस्य दति नाप्र-सिद्धिति केचित्। प्रत्यवयवव्याद्वत्तिस्तु पूर्व्ववत् बोध्या, रूप-पदन्तु व्यापकतावच्छेदकपर्य्याध्यधिकरणतालाभाधें तेन तत्त-दक्षित्वस्य बद्धित्वस्य रूपत्वेऽपि न व्यापकतावच्छेदकत्वमिति वाच्यतादीनामित्यादिपदेन प्रेयत्वत्वेन घटाद्यभावोऽपि द्रष्टव्यः।

श्रेषिति सम्बन्धादिनैयत्यसित्यर्थः साध्यतावच्छेदकाविच्छत्र-व्यापकतावच्छेदिका यावत्यः प्रतियोगिताः प्रत्येकं तिविशिष्टसा-मानाधिकरण्यं विवचणीयं, तथाच धूमादिनिष्ठा या ताद्यशी प्रतियोगिता तिविशिष्टसामानाधिकरण्याभावात् नातिव्याप्तिरिति पूर्वेवचणमपि निदीषम् इति नवीनाः।

त्रयेतसच्यं व्यधिकरणधर्माविष्कित्राभावानङ्गीकारिऽपि सुस्यं सम्बेत्र साध्यतावष्केदकाविष्कित्रसाध्यादिभेदमादायैव निर्व्वाहात्,

तथाच प्रतियोग्यहत्तियेत्यादेरवतारणं विक्डम् इति चेत् ईट्य-लच्चणे नञ्चर्यः बच्चग्रः प्रविष्टलात्, तस्य च व्यधिकरणधर्माव-च्छित्राभावती वैलच्च खार्थं विशेष एस्यावस्य कलात् इति चेदत विक्रलेन धूमाभाववित किमपि धूमवधृत्तिनीस्तीतिप्रतीति-सिडाभावस्य धूमाभावाभित्रतया तस्य च वक्कित्वाविच्छन्नविक्कि-समानाधिकरणतया वातिव्याप्तिः, न च पर्वते विज्ञकाले धूमस्य प्रागभावदशायां धूमो नास्तीतिप्रतीतिर्वर्त्तते तदानीं च विज्ञलेन धूमवहृत्तिसत्ता तदभावस्य च धूमाभावन्यूनहित्त-लात् काभेद इति वाच्यं विज्ञलेन धूमकालोप हितधूमवद् हित्त किमपि नास्ति इतिप्रतीतिसिडाभावमादाय तथापि तहोष-तादवस्यात् न चायोगोलकान्यलाभावमादायातित्याप्तेक्दार इति वाचम् त्रयोगोलकमातृ क्तियों भेदः तद्योगोलकान्यला-न्यतरत्वरूपेणायोगोलकान्यष्टत्तिकिमपि नास्ति इतिप्रतीति-सिडाभावस्य तादृशान्यतरत्वावच्छित्रसामानाधिकरण्यस्य सत्वा-दितित्र्याप्तितादवस्र्यात् एवं सम्मान्तरमपि जन्नम् दत्याहुः। अब वदन्ति, विक्रिलेन किमपि धूमवदृत्ति नास्तीतिप्रतीती दण्डेन पुरुषो नास्तीत्यचेव विशिष्टधर्मा एव प्रतियोगितावच्छेदको न तु शुद्रविज्ञलम्। न च धूमवदृत्तिकिमपि नास्तीत्यं ये ताद्य-निखिलस्यैव प्रतियोगिलावगाइनेनान्यांशि विज्ञलविरहेण च शुड-विक्रिल्स्यैवावच्छेदकलम् इति वाच्यं सर्व्वताभावप्रतीतौ यावत् प्रतियोगिनोऽभावेन प्रमाणाभावात् सामान्यलचणयोदुर्वारत्वा-पत्तेरिति॥ ७॥

केचित्तु व्यापवृत्ते हेतुसमानाधिकरणस्य साध्या-भावस्य प्रतियोगिताया अनवच्छेदकं हेतुसमानाधि-करणस्य व्यापवृत्ते: प्रतियोगिव्यधिकरणस्य वा अभा-वस्य प्रतियोगितायाः सामानाधिकाखोनानवच्छेकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छित्तसामानाधिकरखं व्याप्ति:

चक्रवर्त्तिलचणमाष्ट्र, केचिदिति । इदं कपिसंयोगी एतत्वा-दित्यवाव्याप्तिवारणाय व्याप्यवृत्तेरिति विज्ञिलेन रूपेण ज्ञदला-भावमादाय विक्रमान् भूमादित्यत्राच्याप्तिवारणाय साध्येति, अन प्रतियोगिव्यधिकरणपददाने इदं वाचं प्रमेयलादित्यच प्रति-योगिव्यधिकरणसाध्याभावाप्रसिद्धिरिति तदुपीच्चतमिति ध्येयम्। ननु विज्ञलाविच्छत्रज्ञदलाभावेन समं ज्ञदलाविच्छत्रवज्ञा-भावस्यैक्यात् साध्याभावात्मकस्य तस्य प्रतियोगिताचच्छेटक-मेव विज्ञलिमित्यव्याप्तमतः समिनयताभावानामैक्यमते लचण-माइ, हेतुसामानाधिकरणस्थेति। ननु व्याप्यष्टित्तलं न स्वस-मानाधिकरणात्यन्ताभावाऽप्रतियोगित्वं रूपव्यापकतालचणोक्त-दृषणयासात् इत्यभिप्रेत्याह प्रतियोगिव्यधिकरणस्य वेति। ननु प्रतियोगिवैयधिकरण्यं यदि प्रतियोगिसमानाधिकरण-भिन्नत्वं तदा व्यधिकरणधर्माविच्छन्नाभावस्य तावतैरवारणं सामानाधिकरस्थेनेति व्यर्थम्, एवं प्रतियोगितावच्छेदकाव-च्छित्रसमानाधिकरणभित्रत्वोक्तावणीति चेत् ऋन्यूनानतिरिक्त-

एवञ्च व्याप्तरव्यभिचारक्षप्रतापि सङ्गच्छते हेती साध्यतावच्छेदकाविच्छन्नसाध्याभाववहृत्तित्वस्थेव साध्य-तावच्छेदके हेतुमन्निष्ठसाध्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-तस्थापि व्यभिचारत्वात्। अवच्छेदकत्वञ्चेह तत्-

वित्तत्तत्रातियोगितावच्छेदकावच्छित्र-प्रतियोगिसमानाधिकरणा
ये ये स्रभावा स्रव्याप्यवृक्तिप्रतियोगिकाः प्रसिद्धाः तावद्रेदक्टस्य
विविच्चतत्वात् तथाच ताद्यस्यधिकरण्धिमाविच्छित्राभावमादायाव्याप्तिरिति, सामानाधिकरण्धेनेति । ननु तथापि विक्रमान्
धूमादित्यत्राव्याप्तिः विक्रत्वेन विक्रिधूमोभयाभावस्य प्रतियोगितायाः सामानाधिकरण्धेन विक्रत्वाद्यच्छेद्यतात् इति चेत्
प्रतियोगिताया स्रन्यूनवृक्ति यदवच्छेदकं तदन्यत्वस्योक्तत्वात्, स्रवच्छेदकपददानाच्च, महानसीयवक्क्र्यभावप्रतियोगिताया स्रन्यूनविक्तित्वेऽपि विक्रत्वस्य न चितः, विक्रत्वाविच्छित्रविक्षिधूमोभयाभावस्य विक्रत्वाविच्छित्रविक्षिसमानाधिकरण्वात् प्रतियोगीत्यादिपदेनैव वारणमित्यपि किष्वत् ।

एवचिति। तथाचाव्यभिचारस्य पारिभाषिकतानिर्व्वचनेऽपि न चितिरित्यन्यलचणेभ्यो वैलचण्यमिति भावः। साध्यतावच्छेदक इति। न च साध्यतावच्छेदके ताद्यसाध्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाप्रसिद्धिरिति वाच्यम्। वाच्यत्ववघटाभ्यां वाच्यत्वं
नास्तीति प्रतीत्या तत्सत्वात्। ननु विधिष्टवक्करभावस्य विधिष्टविक्रित्वमेव प्रतियोगितावच्छेदकं तच्च विविच्चतविवेकेन वैधिष्ट्य-

पर्याप्ताप्रिकरणतं तेन विशिष्टवज्ञाभावस्य ज्ञद्वविज्ञ-त्वोभयाविक्वन्नाभावस्य च प्रतियोगितावक्केदकालेऽपि विज्ञत्वस्य न चितः। सत्ववित च गुणादौ संयोगाद्य-भावीऽपि व्याप्यवृत्तिर्वस्यमाणं वा प्रतियोगितावक्केद-कानितिरिक्तवृत्तित्वमेव तदवक्केदकात्विमिन्नापि बोध्यम्। भवित च गुणत्व-गुणावृत्तित्व-द्रव्यमावसमवेतत्वाद्यव-क्किन्नप्रतियोगिताकव्याप्यवृत्त्यभावप्रतियोगितावक्केदक-गुणत्वाद्यनितिरिक्तवृत्त्विव संयोगत्विमित्यान्तः॥ ८॥

एव पर्याप्तमित्यत माइ, इदलव इल्लोभयेति। ननु इदं संयोगिसलादित्यादौ संयोगाभावस्यात्र्याप्यष्टित्तिलात् व्याप्यष्टस्यभावान्तरस्य प्रतियोगितानवच्छेदकलमेव संयोगाभावलस्येत्यतिव्याप्तिरित्यत माइ, सलवतीति व्याप्यष्टत्तिरित। तथाच तदिधकरणावच्छेदेन व्याप्यष्टत्तिलं याद्यमिति भावः। मतएवारुचेराइ,
वच्चमाणं वेति। व्याप्तिसिंखान्तलच्चे वच्चमाणमित्यर्थः तेन सत्तावान् जातिरत्यत्र जात्यधिकरणगुणादिनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदक्तस्य विशिष्टसत्तालस्यानितिरिक्तष्टत्तिलेऽपि सत्तालस्य न च्चतिः।
ननु गुणलावच्छित्राभावस्यापि स्वमते उत्पत्तिकालावच्छेदेन
प्रतियोगिसमानाधिकरणलात् संयोगाभावतुत्यलम् मतो रूपानत्रिणाभावमादाय तदाइ, गुणावृत्तीति। ईट्याभावस्तु द्रव्यावित्तिस्तेन उत्पत्तिकालेऽपि गुणावृत्तिद्रव्यवृत्तिजातीनां सलादिति

साध्यतावक्केदकावक्किन्नसामानाधिकरण्यावक्के-दक्षसमानानाधिकरणसाध्याभावत्वकत्वम् ।

यसमानाधिकरणसाध्याभावप्रमायां साध्यवत्ता-ज्ञानप्रतिबन्धकत्वं नास्ति तत्त्वं बाव्याप्तिरिति तु न युक्तं सर्व्यव साध्याभावपदवैयर्थ्यात्। यत्तु साध्याभाव-

भावः। इदं संयोगिगुणान्यत्वे सित सत्वादित्यादिसाधारणद्वंयोग-व्यभिचारिणिसत्वे यादृशक्ष्पाविष्किन्नाभावमादाय नातिव्याप्तिः तदाह, द्रव्यमानेति॥ ८॥

प्रगल्भीयं लचणमाइ, साध्येति। स्वं हिलभिमतम् इदं गुण-कम्मान्यलविधिष्टसत्तावत् सलादित्यत्त गुणकम्मान्यलविधिष्टस-त्तालाविक्छिन्नाभावादीनां साध्यसमानाधिकरण्लादितिव्याप्तेराह, साध्यतावच्छेदकाविष्टिन्नेति। सामानाधिकरण्यावच्छेदकलं सा-मानाधिकरण्यानितिरिक्तद्वत्तिलं व्याप्यलिमिति यावत्।

नतु विक्तमान् धूमादित्यत्र धूमवित वक्ताभाववत्त्वभ्रमस्य साध्यवत्त्रज्ञानप्रतिबन्धकत्वात् ग्रव्याप्तिरिति दितीयलच्चे प्रमायामिति प्रमात्वावच्छेदेनित्यर्थः, तेन धूमवान् वक्रेरित्यत्र व्यिष्ठकरण्धक्षाविच्छित्राभावप्रमायां साध्यवत्त्वज्ञानाप्रतिबन्धकत्वेऽिष
न चितः। प्रमा च सर्व्वांग्रे बोध्या, तेन घटाभावस्य साध्यप्रतियोगिकत्वभ्रमेऽिष न चितः। सर्व्वेति ताद्वश्रसाध्यसामानािधकर्ण्यावच्छेदक्षसमानािधकरण्यत्विमत्यत एव प्रथमस्य,
यसमानािधकरण्प्रमात्वावच्छेदेन साध्यवत्वज्ञानाप्रतिबन्धकत्वम्

वित यहुनौ प्रक्ततानुमितिविरोधित्वं नास्ति तत्त्वं व्याप्तिरिति तद्व अनुमित्यविरोधित्वज्ञानस्यानुमिति हेतुत्वे साध्याभाववदृत्तित्वस्यानुमित्यविरोधितया व्य-भिचारिस्यितिप्रसङ्गात्॥ ८॥

इत्यत एव दितीयस्य च सामञ्जस्यात्, इति साध्याभावपदं सार्थकं कर्त्ते द्रवणान्तरेण तस्यैव लच्चणं दूषियतुमुपन्यस्यति, यलिति । यदृत्ती यदृष्टत्तित्वसामान्धे तेन व्यभिचारिणि-व्यधिकरणधर्माक-च्छित्राभाववद्दत्तिलस्याविरोधिलेऽपि नातित्याप्तिः। विरोधिलं विरोधिप्रमाविषयतावच्छेदकलं, व्यभिचारिणि तु साध्याभाव-वर्ष्ट्रित्तलज्ञानलेनैव विरोधिलम्, एर्तन यर्ष्ट्रित्तालावच्छेरेन प्रक्षतानुमित्यविरोधित्वम् दत्यनेनैव सामञ्जस्य साध्याभावपद-वैयर्थमिति परास्तं, नेवल्डित्तिखज्ञानलेनैव कुतापि प्रतिबन्धक-लाभावादिति भावः। ऋतेदं चिन्त्यं यथा नेवलक्षत्तिलज्ञानलेन प्रतिबन्धकलं तथैतमाते साध्याभाववदृहत्तिलेनापि किन्तु साध्य-तावच्छेदकावच्छित्रसाध्याभाववदृष्टत्तित्वे नैव तथा प्रसन्ते:। श्रय प्रतिबन्धकता येन तेन रूपेणासु किन्तु हेत्निष्ठानां साध्या-भाववदृष्टत्तिलानां यावतामेव तथालं वक्तव्यमिति चेत् तर्हि हेत्-निष्ठहत्तित्वानामेव तयात्वमसु इति साध्यपदवैयर्थमत्रापि दुरू-दरमिति । अतुमित्यविरोधिलेति । एतद्वराप्तिवादिमते एतद्वराप्ति-विषया कि प्रतिबन्धकं साध्याभाववद्द्वत्तित्वज्ञानं तु न तथा

कैचित्त् यावन्तः साध्याभावाः प्रत्येकं तत्तत्सजा-तीयाः ये तत्तदिधकरणहित्तत्वाभावास्तद्दन्तं, तत्त्वं साजात्यञ्च समानासमानाधिकरणधक्यीविच्छ व्रप्रति-

किन्वनुमितिविरोधिसाध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञानमेव तथाच साध्या-भाववदृत्तित्वस्यातादृशले व्यभिचारिस्यतिव्याप्तिरिति भावः॥८॥

मियनसणमेव बहुधा परिष्कुर्व्वद्राह, केचित्तिति। ननु समानाधिकरण-धर्मावच्छित्र-प्रतियोगिताकयावित्ररूपितप्रक्षत-साजार्खे व्यतिरैकि खप्रसिद्धमत श्राह, प्रत्येकिमिति । नमु यावतां साध्याभावानां प्रत्येकानिरूपितं यत् साजात्यं तद्वनैकोऽप्यभाव दखत श्राह, तत्तदिति । यावत् पदस्य सजातीयपदस्य वाऽक-रणेऽतित्राप्तिस्मुटैव तत्तदिधकरणाप्रसिष्ठिवैयर्थे चेत्यतः तत्तदिति साजात्यञ्चेत्यादि। ननु केवलेन तत्तत्पदेन यावस्वाकर्षणे धृमा-भाववान् धूमाभावात् इत्यादौ तादृशसाध्याभावरूप यावबूमाधि-करण इत्यत्र इटं वाच्यं, ज्ञेयलादित्यच प्रक्ततसाध्याभावे स्वकीय-प्रतियोगितासमानाधिकरणधन्माविष्कत्रप्रतियोगिताकत्वतद्वाधि-करणधर्माविक्विप्रतियोगिताकलान्यतररूपेण साजात्यं वृत्तिला-भावस्य वत्त्रव्यम्, तयाच स्वकीयप्रतियोगितासमानाधिकरणधर्माव-च्छित्रप्रतियोगिताक्तमप्रसिद्धम्, वाच्यत्वत्वरूपेण वाच्यत्वाभावा-प्रसिद्धेरिति चेत् सत्यं सम्बन्धान्तरेण वाच्यत्वत्वाविष्टिमाभावादेः सुलभत्वात्। तथाचायमर्थः ये ये प्रक्ततसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धे-नावच्छित्रप्रतियोगिताकाः साध्याभावस्तव्यतियोगितासमानाधि-

योगिताकत्वान्यतरहपेण साध्याभावश्व पूर्वीक्तरीत्या प्रत्येतव्यः।

व्याप्यहत्तिश्च प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नप्रति-योगिव्यधिकरणो वा तेन तत्तत्साध्यव्यक्तेरव्याप्यवृत्तेर्व्या

करणधर्माविच्छत्रप्रतियोगिताकलं सस्वन्धान्तराविच्छत्राभाव-निष्ठं प्रसिष्ठं तदा दायैवान्यतरत्वस्य प्रसिष्ठिरिति दितीयेति साध्यतावच्छेदकाविच्छत्रव्यापकतावच्छेदकरूपाविच्छत्रप्रतियोगि-ताका दत्वर्धः। प्रथमरीत्या तु विक्कमान् धूमादित्यादौ विक्कघटो-भयाभावसजातीयतद्वदृत्तित्वाभावाभावादोष द्रति ध्येयम् न च विक्कत्वेन पर्व्वतीयविक्कद्रव्यान्तरयोरत्यतराभावस्य साध्यतावच्छेद-केत्यादिरूपप्रालिनोऽधिकरणमपर्व्वतमेव, अपर्व्वतवृत्तिप्रतियोगि-कताद्वराभावय हेतावसभ्यवीति वाच्यम् ताद्वयव्यापकतावच्छे-दक् रूपाविच्छत्वेत्यत्र रूपस्य प्रतियोगिताया अन्यूनवृत्तिसमा-नाधिकरणतया यदवच्छेदकं तदन्यत्वे नावच्छेदकत्वं वाच्यं, तच्चोभयया अन्यूनवृत्तिसमानाधिकरणतया केवलव्यधिकरणतया विति।

ननु व्याप्यहत्तिलं पूर्वोत्तरीत्या दुर्व्वचम् इत्यत श्राह्न, प्रति-योगितावच्छेदकावच्छित्तेति । प्रतियोगितावच्छेदकावच्छित्तासमा-नाधिकरण इत्युत्ते व्यधिकरणधर्मावच्छित्ताभावासंग्रह इत्यत श्राह्न, प्रतियोगीति । यद्यप्यतापि वाच्यत्वत्वरूपेण वाच्यत्वघटोभयं नास्तीतिप्रतीतिसिद्धाभावेन समं प्रमियत्वत्वावच्छित्ववाच्यत्वाभा- साध्यस्याभाववति हेतोर्हत्ताविष नाव्याप्तिः । तद्दवृत्ति-त्वाभावस्तु तत्तत्साध्याभाववद्दृत्तित्वत्वव्यापकव्यासच्य-दृत्ति इसीनविक्तद्रप्रतियोगिताकस्तत्तत्साध्यभाववद्दृत्ति-तात्वातिरिक्तसमानाधिकरण-धर्मानविक्तद्रप्रतियोगि-ताको वा बोध्यः तेन साध्याभाववद्यक्तिविशेषदृत्तित्वस्य पार्थिवत्वादिविशेषितस्य दित्वाद्यविक्तद्रस्य वा साध्या-भाववद्दृत्तित्वस्थाभावमादाय नातिप्रसङ्गः। अत च

वस्याभिन्नत्वात्, तस्य प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वादप्रसिद्धिः तथापि चक्रवित्तिं जच्योक्तरीत्या
प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्न-प्रतियोगि समानाधिकरण-भिन्नत्वं
वक्तव्यं व्यासच्यञ्जत्तिधमानिविच्छन्नप्रतियोगिताक दत्यनन्तरं तत्तसाध्याभाववन्नृत्तित्वत्वातिरिक्त समानाधिकरणधमानिविच्छन्नप्रतियगिताको विति क्वचित् पुस्तके पाठः, स हि धूमवान् वङ्गरित्यव
निर्धूमष्टत्तित्वत्वव्यापकव्यासच्यद्वत्तिधमानिविच्छन्नप्रतियोगिताकपूर्व्यचण्डत्तित्वविधिष्टाभावमादायातित्याप्तिभयेन संगमनीय इति
केचित् तन्न निर्धूमहत्तित्वत्वेन निर्धूमहत्तित्वविधिष्ठयान्यतराभावमादाय धूमवान् वङ्गरित्यवातित्याप्तिभयेन साध्याभावसाजात्यत्वस्य प्रतियोगितासमानाधिकरणान्यूनहत्तिभिन्नत्याद्युक्तधर्मोणावध्यकवक्तव्यत्वे कृतः पूर्व्यचणहत्त्वविधिष्टाभावमादाय
दोषो येनोत्तरावतारणिकादीयेतित इत्यं हत्तित्ववाविध्यना-

हेतुतावक्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववहृत्तित्वं बोध्यम्। तेन वज्ञाभाववित खावयवे धूमस्य हत्ताविष न दोषः, दृत्यञ्च साध्याभावोऽिष हेतुतावक्छेदकसम्बन्धेन कस्य-विदिधकरणे वर्त्तमानो ग्राद्यः तेन जातिमान् सत्त्वा-दित्यादी हेतुतावक्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववद्हत्ति-त्वस्याप्रसिद्यापि न चतिः॥ १०॥

भावविवद्यणमिष सम्यगिति पार्थिवलादिविभेषितस्रेत्यन्तेन तत्त-लाध्याभाववदृत्तिललव्यापकस्य प्रयोजनकथनं तत्नापि व्यक्तिवि-भेषिनष्ठवृत्तिलाभावमादायाधिकमंग्रहाय, पार्थिवलादौति विभे-षितं यदृत्तिलं तद्वज्ञो नास्ति वज्जेस्तैजसलादिति भावः।

साध्याभावोऽपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनैव बोध्यः, तेन सम-वायसम्बन्धावच्छिन्नाभावमादाय विक्रमान् धूमादित्यादी न दोष इति ध्येयम्। इत्यच्चेति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तित्व-विवच्चे सति चेत्यर्थः, तेनिति। यद्यपि विक्रमान् धूमादि-त्यत्व संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयसामान्याभावस्थाधिकरणे गुणादी संयोगसम्बन्धेन वृत्तित्वमप्रसिद्धमिति, तचाप्यव्याप्तिर्वतुम् चिता, तथापि तदभावस्थोत्पत्तिकाचावच्छेदेन द्रव्यवृत्तित्वेन निरुक्तप्रति-योगिव्यधिकरणाद्यनुसन्धाने प्रयासगीरवमत श्राष्ट, जातीति। तथाच व्यधिकरणधर्माविच्छन्नजात्यभावमादायैव चच्चणगमन-मिति भावः। यद्या यावन्तस्तादृशाः साध्याभावाः प्रत्येकं तेषां सजातीयस्य व्यापकीभूतस्य व्याप्यवृत्तेरभावस्य प्रति-योगितावच्छेदकेन धर्मोण यद्रूपाविच्छद्गं प्रति व्याप-कत्यमविच्छदाते तद्रूपवच्चं तत्त्वम्। साधनस्य तादृशव्यापकताभावप्रतियोगित्वं तदवच्छेदकत्वं वा साधनतावच्छेदकस्य द्रति तु न वाच्यं द्रव्यं सत्वादि-त्यादी मत्तादेर्गुणकक्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वाद्यविच्छद्ग-

ननु विक्तमान् धूमादित्यत तथाप्यव्याप्तः, द्रव्यवृत्तिसंयोग-सम्बन्धेन प्रमेयत्वाविष्ठित्राभावस्य गुणादौ प्रतियोगितावच्छेद-काविष्ठित्रप्रतियोगिव्यधिकरणस्य संयोगेन सम्बन्धेन कस्यचिद्धि करणे द्रव्ये वर्त्तमानस्याप्यधिकरणे गुणादौ हेतुतावच्छेदकसम्ब-स्थेन वृत्तित्वमप्रसिद्धमिति चेत् प्रतियोगिवैयधिकरण्याविष्ठित्र-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धाविक्षित्रपदार्थाधिकरणवृत्तित्वमित्यत्र तात्-पर्यात्॥ १०॥

ननु इदं द्रव्यं गुणकभान्यते सित सतादित्यतात्याप्तिः भवापि द्रव्यव्यक्तित्वस्य गुणादी सत्तायां सत्तात् विधिष्टस्थानित-रिक्ततयाऽव्याप्तेराह, यद्देति । ताद्द्याः साध्यतावच्छेदकाविच्छत्र-व्यापकतावच्छेदक-रूपाविच्छत्रप्रतियोगिताका-व्याप्यव्यत्तयश्चेत्यर्थः भव व्याप्यवृत्तिः पूर्व्ववद्बोध्या, धूमवान् वक्केरित्यत्न निर्धूमजल-वच्यभावप्रतियोगित्वादक्कावित्याप्तेराह, व्यापकीभूतस्रेति । रूप- प्रतियोगिताकताहशाभावप्रतियोगित्वात् अतिव्यप्तिः च्चेयं, प्रमेयादित्यादौ प्रमेयत्वादेस्ताहशप्रतियोगितान-वच्छेदकात्वात् अव्यप्तिश्च प्रमेयत्वव्यधिकरणप्रतियोगि-त्वस्याप्रसिद्धेः।

यदा यावन्तस्तादृशाः साध्याभावाः प्रत्येकं तत्तत्-प्रतियोगितावक्छेदकेन धर्मोण यद्रूपाविक्तः प्रति व्यापकत्वमविक्तद्यते तद्रूपवत्त्वं तत्त्वमित्याहः। परे तु वृत्तिमदृत्तयो यावन्तः साध्याभाववदृत्तित्वाभावा-स्तदत्त्वं व्याप्तिः॥ ११॥

वत्संयोगादित्यनाव्याप्तेराह, व्याप्यवृत्तेरितिक्रमेण प्रयोजनमाह, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावित्यादि।

द्रतोऽपि लघुलचणमाह, यद्देति । मित्रान् प्रत्याचेपविजृत्भितमिदं यत् सजातीयपदादानेऽपि तदेकदेशेनापि निर्वाह दति,
न चात्रापि याविद्वस्तादृश्रव्यापकतावच्छेदकैः यदूपाविच्छत्रं प्रतिव्यापकत्मविच्छ्यते द्रत्यनेनैव सामज्जसमिति वाच्यं यथोक्तविशेषणविशेष्याभावे न वैयर्थमितिभावात्, कूटपदादानेऽपि सार्व्यभौमीयं लच्चणं परिष्कुर्वेत्राह, परेत्विति । श्रत्र विद्वमान् धूमादित्यादी व्यधिकरणधन्माविच्छत्ववद्वाभाववज्जगहृत्तित्वत्वसमनियतप्रतियोगिताका ये येऽभावास्तावदात्र्यत्वं, निर्व्वद्वित्तन्त्वसमनियतप्रतियोगिताका ये येऽभावाः, तावदात्र्यत्विमित

येन सम्बन्धेन हेत्ता वृत्तिमहृत्तय द्रखवापि तेनेव सम्बन्धेन वृत्तिमत्त्वं बोध्यं तेन व्यधिकरणधर्माविक्छन्न-वङ्ग्रभाववित संयोगेन या वृत्तिस्तदभावस्य जात्यादी वर्त्तमानस्य धूमादावसर्वेऽपि न चितः, साध्याभावश्व पूर्व्ववद्योध्यो व्याप्यवृत्तिश्व तद्दवृत्तित्वाभावोऽपि स्वव्या-

लक्षणसमन्वयः। व्यभिचारिणि तु निर्धू महित्तव्वसमनियतप्रति-योगिताका ये येऽभावा धूमव्याप्येषु प्रसिद्धास्तदभावादेव नाति-व्याप्तः, श्रव यावदित्यनुक्तौ श्रिथकरणे व्यधिकरणधर्माविच्छिन-प्रतियोगिताकसाध्याभाववद्दृत्तित्वाभावमादायातिव्याप्तिः, हित्त-मत्पदादाने सर्व्वेव प्रायशे व्यधिकरणधर्माविच्छिनसाध्याभाववद् हित्तत्वाभावस्याहित्तमाविष्ठस्याभावादव्याप्तिः, श्रमभवस्तु नास्ति तादाक्षेत्रन सम्बन्धेन हितुतायां व्यधिकरणधर्माविच्छिनसाध्या-भाववित गगनादेरिष तादाक्षेत्रन हित्तत्वाद्वाधिकरणधर्माव-च्छिनस्यैवाभावस्य सभावादेतौ च तस्य सन्त्वादिति, एवं विष-यतादिसम्बन्धेन हितुतायामिष बोध्यम्॥ ११॥

ननु विक्रमान् धूमादित्यत तत्तदिक्रिलाविक्छित्रवक्षाभाव-वद्वत्तिलामावस्य धूमेऽसलादव्याप्तिरित्यत श्राह, साध्यामाव-श्वेति पूर्व्ववदिति । साध्यतावक्केदकाविक्छित्रव्यापकतावक्केदक-रूपाविक्छित्रप्रतियोगिताको व्याप्यवृत्तिश्वेत्यर्थः, तेन विक्रमान् धूमादित्यत्र विक्षिचटोभयाभावमादाय नाव्याप्तिः, न वा कपि-संयोगाभाववान् द्रव्यलादित्यादौ कपिसंयोगाभावाभावकपि- पकतत्तसाध्याभाववद्वतितात्वत्यापकप्रतियोगिताकः तत्तसाध्याभाववद्वत्तितात्वातिरिक्तेन समानाधिकर-णेन साध्याभाववद्वत्तित्वव्वत्तिना वा धर्मण अनव-

संयोगवदृहत्तित्वस्य सत्वाह्रव्यत्वादी ददं किपसंयोगि एतत्वादि-त्यत तु समानाधिकरणधन्मीवच्छित्रकपिसंयोगाभावस्याव्याप्य-हित्तिलेन व्यायहत्तिव्यधिकरणधर्माविच्छित्रसाध्याभावसजातीयस्य तादृशसाध्याभाववदृष्टत्तित्वाभावस्य व्यधिकरणधर्मावच्छित्रप्रति-योगिताकस्यैव सभावतो हेती सलेनात्यास्यभावात्. खव्यापकेति स्वं प्रतियोगिता तद्यापकं यत्साध्याभावदृवक्तितात्वं तस्य व्यापिका या प्रतियोगिता सा यस्य तादृशहत्तितालसमनियते-त्यर्थः, ननु विक्रमान् धूमादित्यादी धूमनिष्ठवृत्तित्वविशेषमात्न-वृत्तिक्पेण तादशवृत्तित्वसामान्याभावस्य धूमातिरिक्तमानवृत्ति-लादव्याप्ति: श्रत श्राह, तत्त्रलाध्याभावेति। तथाच तादृश-हित्तिविविशेषमात्रहत्ति यत् साध्याभाववद्वतितालातिरित्तं रूपं तदवच्छिनप्रतियोगिताकलात् इति न तस्य संग्रहः, समानाधि-करणेनेति। प्रतियोगितासमानाधिकरणेनेत्यर्थः सतो व्यधिकरणः धर्मावच्छित्रप्रतियोगिताकष्टित्तिलाभावस्य परिग्रहः। नतु साध्याः भावदृत्तत्तिलत्तत्रितियोगितासमानाधिकरण्लमपेच्य भाववद्वतित्ववत्तीत्वेव लघुतरम् इत्यत ग्राह्, साध्याभाववद्गत्ति-व्यवस्तिना विति। ग्रत्न च इतोऽपि लाघवात् साध्याभाववद्वस्ति-तालाविक्तिमाव एव श्रादरणीयः, जगदृष्टितालाविक्तित्रघटा-

किन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, तेन त्रालोकाद्यवृत्तित्वेन कृषेण यो विज्ञसामान्याभाववद्तित्वस्य यश्चेश्वन-त्वाद्यविक्चन्नवज्ञाभावाधिकरणीभूतमहानसवृत्तित्वादे-रभावः। तस्य धूमादौ स्वनिष्ठसाध्याभाववद्वृत्ति-त्वविरहस्य च हैत्वन्तरवृत्तेः स्वस्मिन्न सन्त्वेऽपि न चतिरित्याहः॥ १२॥

भावमादाय निर्व्वक्रिम्तितात्वाविच्छिनाभावचादाय विक्रमान् धूमादिलादौ तचणसमन्वय इति नव्याः । खव्यापकात्वस्य प्रयोजन-माह, त्रालोकायहत्तिलेनीत । त्रव च त्रालोकायहत्तिहत्त्यभाव-प्रतियोगिताया घटादिसाधारखादव्यापकमेव। विज्ञसामान्या-भाविति । तादृशहत्तितालव्यापकप्रतियोगितेत्वस्य व्यावृत्तिमाइ, यश्वेति। साध्यतावच्छेदकावच्छिन्वयापकतावच्छेदकरूपावच्छि-न्नप्रतियोगिताकल्लाभार्धम् इन्धनलादानुसरणम्, अत्र सहानस-इत्तिलनिष्ठाप्रतियोगिता तु जगद्इत्तिलस्य न व्यापिका इति भावः, ननु महानसव्वत्तित्वाभावस्य पर्व्वतीयधूमादी सत्त्वात् तादृश-इतुमात्रावृत्त्यभावाभावमाइ, खनिष्ठेति। खनिष्ठं धूमादिनिष्ठं यसाध्याभाववदृष्टत्तित्विमित्यर्थः, हेलन्तरमानोकादिकं स्वस्मिन् ध्यादी असच्वेऽपीति सप्तम्यन्तेनान्वितम्, ननु तथापि जगद्-इत्तिलेन रूपेण भूमनिष्ठजगदृष्ठत्तिलविशेषघटान्यतराभावस्थापि साध्याभाववद्द्वत्तितात्वातिरिक्त-समानाधिकर्ण-धर्मानविक्कत्न-प्रतियोगिताकलात्, तस्य च धूमादौ श्रमत्वादव्याप्तिरिति चेब

श्रन्ये तु हत्तिमद्हत्तयो यावन्तः साध्याभावसमु-दायाधिकरणहत्तित्वाभावास्तद्दत्वं तादृशहत्तित्वाभा-वश्च खव्यापकतादृशवृत्तितात्वव्यापकप्रतियोगिताको-बोध्यः, प्रयोजनञ्जोक्तप्रायं साध्याभाववद्वृत्तितात्व-

प्रक्षतप्रतियोगितानितिरिक्तव्योभूतं यसाध्याभाववद्वस्तितालं तदितिरिक्तेन समानाधिकरणधर्म्भणानविच्छिकप्रतियोगिताकलम् इत्यस्य विविच्चतत्वात्, भवित च घटसाधारण्याः प्रक्षतप्रतियोगितायाः प्रतिरिक्तव्ययेव ताद्यप्रवृत्तितालम् इति । अत्र च मित्र- लचणोक्तसाध्याभाववद्वृत्तितालव्यापकव्यासच्यव्यत्तिधर्मानविच्छ- क्षप्रतियोगिताकलविवचणे आलोकाद्यवृत्तिलाविच्छनाभावस्य यावन्यध्यपतितस्य अवारणम् इति तन्नोक्तम् । तत्र च यावत् पदाभावात् न सम्यगिति अत्र परत्र च आकाग्रहेतुकेऽतिव्याप्तिः वृत्तिमलविवचया द्रष्टापत्या वा समाधिया ॥ १२ ॥

अन्धे लिखादि । अत च हित्तमत्पदप्रयोजनं नेवलान्विविवेव बोध्यं, व्यतिरेकिणि तु ताहशकूटाधिकरणहित्तिलाभावस्य अहित्त-मात्रहित्तिलाभावात्, एवं तत्र हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हित्तमत्-हित्तिविवचणस्यापि प्रयोजनं बोध्यं कूटपदं सार्थकीकर्त्तुं तत्त-दिति विद्वाय समनियतप्रतियोगिताकलमेव अनुवद्ति, ताहशेति ।

उत्तप्रायमिति प्रतियोगिताव्यापकेत्यस्य व्याव्यत्तिसु पूर्व्व-वदेव बोध्या, तादृशवृत्तितात्वव्यापकप्रतियोगितेत्यस्यव्यावृत्तिसु न विज्ञमान् धूमादित्यादी महानसस्य कूटाधिकरणलाभावात्। व्यापकप्रतियोगिताकस्य च व्यधिकरणधर्माविक्छिन्ना-भावस्यैव वृत्तिमद्वृत्तित्वाद्याभिचारिख्यतिव्याप्तिरतः समुदायेति। साध्याभावश्व साध्यतावक्चेदकसम्बन्धेन बोध्यः, तेन समवायेन वक्नेः साध्यत्वे धूमे संयोगेन च तथात्वे वक्न्यवयवत्वे पर्व्यतवक्न्यवयवसंयोगे च पर्व्यतस्य वक्न्यवयवस्य च सम्बन्धदयाविक्छन्नवक्न्यभावदयानिध-

ध्मनिष्ठवृत्तित्वस्य तादृशकूटाधिकरणवृत्तितात्वाभावात् किन्तु इदं वाच्यं ज्ञेयलादित्यादी श्रतएवा ह, उक्तप्रायमिति। समुदाय-खेतीति निर्भूमहत्तित्वाभावस्य प्रतियोगिता न साध्याभाववदृत्ति-व्यापिका साध्याभाववद्वत्तितालस्य जगद्वत्तिलेऽपि सलात् येन निर्धूमहत्तिलाभावमादाय क्रूटपदादानेऽपि याव-त्पदेनैव व्यभिचारिवारणं भवेत्, तहाने तु निर्धूमहत्तित्वाभाव-प्रतियोगिताया एव तथाविधकूटाधिकरणद्वित्तात्वत्र्यापकत्व-नाभादिति ध्येयम्। तेनेत्यादि —धूम इति। पूर्व्वान्वयि तथात्वे वक्रे: साध्यत्वे श्रत्न चीभयोरिप धूमवदक्रावयवत्वयोः विरुद-लादाइ, पर्वतिति। संयोगस्य दिष्ठलात् वक्नेः समवायेन संयो-गेन वा साध्यतायां व्यभिचारित्वमिति भाव: सम्बन्धइयं संयोग: समवायस, तेन पर्व्वतस्य संयोगसम्बन्धाविच्छन्नाभावानिधिकर-णलं वक्रावयवस्य च समवायसस्यन्धाविक्षः नाभावानिधकरणलं च लभ्यते, तथाच तादृशाभावससुदायवस्तं क्रदादेरेव इत्यति-

करणलेऽपि नातिव्याप्तिः, तथा खव्यापकीभूतसाध्य-तावच्छेदकव्यापकप्रतियोगिताकोऽपि बोध्यः। तेन यद पृथिवीत्वाभावादौ साध्ये तत्तिहिपचावित्तित्वाद्यविच्छन्न-प्रतियोगिताकाभावकूटाधिकरणमप्रसिद्धं, तत्र सद्वेतौ

व्याप्तिसभावनापीत्यपेरर्थ: श्रव च साध्याभावमात्रविवचणे इदं गुणकर्माण्यमत्तावज्ञातिमत्त्वादित्यत्नातिव्याप्तिः गुणवृत्तिल-विशिष्टसत्ताभावादीनामपि कूटमध्यपतितत्वात्। श्रव तावदधि-करणे जात्यादी हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तित्वमप्रसिद्धमिति चेत् तथापि जातिमत्त्वप्रकारकप्रमाविषयत्वादि हेतु केऽतिव्याप्तिः एवं विक्रमान् धूमादित्यादावव्याप्तिः, तच तत्तत् क्रदावेत्तित्वाव-च्छित्राभावानामपि कुटमध्यनिविष्टलात्तावदिधकरणाप्रसिद्धेः। एवं साध्याभावस्य पूर्व्योत्तविवचायामपि संयोगसम्बन्धाविच्छन-प्रमेयसामान्याभावस्य क्रटमध्यनिविष्टलात्तदिधकर्णे रूपाडी हेत्तावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिलाप्रसिद्धिरित्यभिप्रेत्य साध्याभाव-पदमन्यया व्याचष्टे, तथेत्यादि स्वं प्रतियोगिता तद्वापकीभूतं यसाध्यतावच्छेदकं तद्वापिका या प्रतियोगितीत्यर्थः, स्वयापकी-भूतेत्यस्य व्याव्यतिमाह, यत्रेत्यादि। विक्रिमान् धूमादित्यत इदादिव्यत्तित्वाविक्यमाभावस्य संयोगसम्बन्धाविक्यनप्रतियोगि-ताकस्यान्यतापि उत्पत्तिकालावच्छेरेन सलात् ग्रभावसाध्यक-पर्यान्तानुधावनं, ननु यावतामैकाधिकरखं समावतीत्यादिवच्य-माणविवचापचे इयं व्यावृत्तिन घटत इत्यत श्राह, पृथिवी-

पृथिवीत्वादी साध्ये जातित्वाद्यविक्ति झाभावविति सामान्यादाववर्त्तमाने द्रव्यत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वादी च नाव्याप्तिरतिव्याप्तिर्व्वा, नाष्यभावत्वादिना अभा-वादी साध्ये तत्तत्साध्याभावक्त्रटाधिकरणाप्रसिड्या-ऽव्याप्तिरित्याहः तद्ग पृथिवीत्वद्रव्यत्वोभयवान् द्रव्य-

लादाविति। इयं पृथिवीद्रव्यत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वादित्यादा-वित्यर्थ:, न चात्रापि तत्तज्जलावृत्तित्वाविच्छत्राभावस्य तत्तज्ज-लादिमात्रवृत्तित्वात् कूटाधिकरणाप्रसिष्ठिः तस्य समवायसम्ब-न्धाविच्छ नाभावस्य सामान्यादाविप सत्वात् समवायसम्बेन द्रयाले हेत्कते हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन ताहशवृत्तित्वमप्रसिद्ध-मतः प्रमाविषयत्वपर्थन्तानुधावनं, सामान्यादाविप विशेषणता विशेषेण कस्यचित् प्रमाविषयलस्य वृत्ते: साध्यतावच्छेदक-व्यापकीभूतप्रतियोगिताकैत्यस्य व्याव्यक्तिमाइ, नापौति। अय-मभाववान् प्रमेयलादित्यादी घटलपटलाद्यभावाभावऋपस्य घटलपटलारेरेकाधिकरणाप्रसिंडिरतोऽव्याप्तिरित्यर्थः, यदािष यावतामैकाधिकरण्यं सम्भवति तावतां कूटे विवचित एवाप्र-सिडिप्रतीकारस्तथापि वच्चमाणरीत्या अव्याप्तिर्वीध्या। तदु-भयान्यतरेति । यत्नैव द्रव्यत्वाभावस्त्रचैव तदुभयान्यतराभावस्त्रथा च क्टमध्ये तस्यापि प्रविशात् तमादायाधिकरणं गुणादीव। नतु खञ्चापकसाध्यतावच्छेदकीत्यत्र खपय्यास्यधिकरणताकालं विव-

लादिखादौ तदुभयान्यतरत्वाविक्तः झाभाववित द्रव्य-लादेरइत्तेरितव्याप्तेः, अपिच द्रदं पृषिव्यन्यत्वविशिष्ट-द्रव्यत्ववत्द्रव्यत्वादिखादौ द्रव्यत्वत्वाविक्तः द्राभाव-क्रुटाधिकरणगुणाद्यवृत्तित्वस्य द्रव्यत्वे सत्वादितव्याप्तेः द्रव्यत्वत्वाविक्तिद्वप्रतियोगितायाः पृषिव्यन्यत्वविशिष्ट-द्रव्यत्वत्वसमव्याप्तत्वात्॥ १३॥

किञ्च रूपाभावसाध्यके संबेती साध्याभावसमु-दायनिविष्टसकलरूपव्यक्त्यधिकरणाप्रसिद्धिः। यावता-

चणीयं तथाचान्यतरत्वाविच्छत्राभावप्रतियोगितायाः प्रत्येक-परिसमाप्ताया अधिकरणे उभयतं न पर्थाप्तमिति क्टमध्ये तद-प्रवेश इत्यत आह, अपि चेति। अत्र च द्रव्यत्वनिष्ठाया अधि-करणे द्रव्यत्वे प्रथिव्यन्यद्रव्यत्वत्वं पर्थाप्तमिति॥ १३॥

नतु प्रतियोगितावच्छेदकावच्छित्तप्रतियोग्यधिकरणे यावति यसाध्यतावच्छेदकावच्छित्ताधिकरणत्वं तदेव विवच्चणीयम्, तथाच ताद्यप्रतियोगितावच्छेदकावच्छित्तद्वयत्वाधिकरणे पृथिव्यां न पृथीव्यन्यद्रव्यत्वतावच्छित्ताधिकरणत्वमित्यत ग्राह, किञ्चेति रूपामाविति। न च साध्यतावच्छेदकव्यापकीभूतप्रतियोगितित्यस्य व्यावित्तरसंलग्नेति वाच्यम् ग्रभाववान् श्रमिधेयादित्यत्र तथापि व्यधिकरणधन्मीवच्छिताभावसहिततादृशाभावरूपघटपटताधिक-रणे घटादी वृत्तरव्याप्तिः। नतु दृदं पृथिवीवृत्तिगुणश्चर्यं वाच्यता- मभावानामैकाधिकरण्यं तावतां समुदाये विविच्चतिऽपि द्रदं पृथिवीवृत्तिगुणशून्यं सत्तान्यपृथिवीसमवेतश्न्यं वा वायुत्वादूपवदन्यत्वाद्देखादी चातिप्रसङ्गः।

तव तादृशसाध्याभावस्तोमस्य नियमतो रूपादि-घटितत्वेन तद्दति हेतीरहत्तेः। वस्तुतो लिखिलाना-मेव रूपाणां तादृशाभावसहस्रसमानाधिकरणत्वात्

दिति सहेत्रेव जल्पिकालावच्छेदेन महाप्रलयावच्छेदेन च वायुसामान्ये ताद्वयाभावसत्वादित्यत श्राष्ठ, सत्तान्येति। ननु पृथिवीसमवेताभावस्य समवेताभावसमनियतत्या समवेतमाच-स्यैव तल्पतियोगित्वेन समवेतस्य च वायाविष सत्वेनातित्याप्तिर्न घटते इत्यत श्राष्ठ, सत्तेति, सत्तान्येति। वायुत्वस्य एतत्साध्यक-विरुद्धतया श्राष्ठ, रूपवदन्यत्वेति। एतस्य हेतोः साध्यसामा-नाधिकरस्यं गुणादावेव रूपादीति श्रयं भावः। वायोः पृथित्योः संयोगाधिकरणं दितयमेव यद्यपि, तथापि स्वसामानाधिकर-स्थापत्र रूपघटितकूटस्थाधिकरणं पृथित्येवेति।

ननु यथा पृथिवीसमवेताभावसमवेताभावयोः समनैयत्यं तथा सत्तान्यपृथिवीसमवेताभावद्रव्यमात्रसमवेताभावयोरपीति वायुहत्तिसमवेतक्ट्रस्यापि साध्याभावात्मकतया तदादाय पृथिव्यादितदायुरपि क्टाधिकरणमिति स दोषस्तदवस्य इत्यत श्राह, वस्तुत
इति । ताह्याभावो व्यधिकरणधर्माविस्वताभावः, तथाच ताह्या-

समानाधिकरण-—यावदभावाधिकरणाप्रसिहिर्दुर्वारै-विति। किञ्च हेतुतावक्केदकसम्बन्धेन या साध्या-भाववित हित्तस्तदभावी वक्तव्यः अन्यया धूमादाव-व्याप्तिः। साध्यतावक्केदकसम्बन्धेन साध्याभाववित कालादौ हित्तवन्माचस्यैव हत्तेर्व्यभिचारिण्यतिप्रसङ्गी वा। तथाच सत्त्वादि-साध्यक्त संयोगेन समवायेन हेतावव्याप्तिः। साध्याभाववित तेन सम्बन्धेन हत्तेर-प्रसिहिरिति।

भावसामानाधिकरण्यापनानि यावन्येव रूपाणि तावतामधिकरणं सुतरामप्रसिद्धं रूपाभाववान् वायुत्वात्, इत्यनैवाव्याप्तिरिति भावः। ननु सामानाधिकरण्यापनानां यावतामैकाधिकरण्यमिति न वाचं, किन्तु यस्मिन्नेवाधिकरणे यावन्तः सभावन्ति
ताद्यमेवाधिकरणं प्राह्मम् इत्यत ग्राह्म, किञ्चेति। केवित्तु
स्वसाध्याभावत्वावच्छिन्नानां यावताम् ऐकाधिकरण्यम् ग्रस्ति
च साध्याभावत्वावच्छिनस्य रूपस्य कूटमध्ये प्रवेश इति रूपसम्बन्तित्तृटाधिकरणं घटादिरेव तत्वाह्म, किञ्चेति ग्रन्यथित।
विक्रमान् धूमादित्यच साध्याभावक्रटाधिकरणे धूमावयवे धूमस्य
द्यत्तित्वादित्यर्थः। इदं पुनरिहावधेयं, यदि सम्बन्धत्वमेकं
नास्ति तदा साध्याभाववद्गत्तित्वाभावाः संयुक्तत्वाभावाः समवितत्वाभावा इत्यमेव यावन्तोऽभावाः धूमे न सन्तीत्यव्याप्ति-

साधनसमानाधिकरणलेन साध्याभावी विशेष-

वींध्याः, यदि च सम्बन्धलं पुनरेकं तदा ताद्दशवित्तिलाभावो व्यधिकरणधन्मीविच्छिनाभाव एव वक्तव्यः, तथाच व्यभिचारि-ण्यतिप्रसङ्ग इति, तथाचेति । हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिलं-विवचणे च इत्यर्थः।

साधनसमानाधिकरणलेनेत्यादि। श्रतं च विवद्यायां साध्यतावच्छेदकसमव्याप्तेत्यादिव्याद्वत्तिप्रयास एवालग्नस्तथा हि प्रथिवीलाभाववान् जललादित्यतं घटाद्वत्तित्वादिना योऽभावः स
साधनासमानाधिकरण एव। एवं प्रथिवीत्ववान् द्रव्यत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वादित्यादाविष जातित्वावच्छित्ताभावस्तथा, तथाच
साध्यतावच्छेदकव्यापकीभृतप्रतियोगिताकत्वाविवचणे उपदर्शिताभावादिसाध्यके प्रमेयादिसाध्यके च सदेतौ तत्तदभावत्वादिना श्रभावानां
तत्त्र्यमयाभावानाञ्च साधनसमानाधिकरणानां समुदायापत्रानामधिकरणाप्रसिद्धेः, गुणक्रमाण्यत्वविशिष्ठसच्वावान् ज्ञातिमच्वात्
दत्यतं तु सत्ताभावः साधनासमानाधिकरण एव दति न तस्य
क्रुटमध्यप्रवेशः।

न च तयापि साधनसमानाधिकरण-गुणव्वत्तित्वविशिष्टकर्म-वृत्तित्वविशिष्टसत्तात्वाविष्टिनाभावानामपि तथात्वात् जाति-मत्तप्रकारकप्रमाविषयत्वादित्यादिहेतौ विशिष्टसत्तादिसाध्यके-ऽतिव्याप्तिः, साध्यतावच्छेदकस्य प्रतियोगिताव्यापकत्वविवचणे- गौय द्रति चेहिशिष्यन्तां तथापि भृतत्वमूर्त्तत्वादो-राखतरत्वेनान्यरताभावे साध्ये स्पर्शवदन्यत्वादा-वितव्याप्तिस्तादृशसाध्याभावसमुदायवित पृथिव्यादौ तस्यावृत्ते: ॥ १४ ॥

किञ्च महाकालान्यत्वादिसाध्यके व्यभिचारिणि कालिकविशेषणताविशेषेणहेतावतिव्याप्तिः। तादृश-

ऽपि तहोषतादवस्थात् एतस्रव्धं परिचिन्स्यैवेतेनेत्यादि वच्चिति। एवं पृथिवीत्वद्रव्यत्वोभयवानित्यत्रापि साधनसामानाधिकरण्य-विग्रेषणेनैव वारणं बोध्यम्।

तथापीति। भूतत्वमूर्त्तेत्वान्यतराभाववान् स्पर्धवदन्यत्वा-दित्यादावित्यर्थः। तत्रापि भूतत्वमूर्त्तेत्व एव श्रन्यतराभावाभावास्ते तु प्रत्येकं गगनादी साधनसमानाधिकरणा एव तादृशकूटाधि-करणं वायुपर्थन्तमेव तद्वदृत्तित्वाभावः स्पर्धवदन्यत्वे स्फुट एवति॥ १४॥

नतु जूटतापत्रस्य साधनसमानाधिकरण्यं विविध्तं, तथाच भूतत्वमूर्त्ततं जूटाविष्ठतं सत् न साधनसामानाधिकरणमिति। नातिव्याप्तिरित्यत श्राह, किञ्चेति। श्रयं महाकानान्यो घटादि-त्यच साध्याभावकूटाधिकरणं महाकान एव कालिकसम्बन्धेन महाकान्द्वत्तित्वाभावः कान्विकसम्बन्धेन द्वत्तिमति वर्त्तते यः स व्यधिकरणधन्माविष्ठित्नाभाव एव इत्यतिव्याप्तिरित्यर्थः, एव- साध्याभावसमुदायवित महाकाले तेनैव सम्बन्धेनवृत्तिमन्मावस्थैव वृत्ते:। एतेन साध्यतावक्छेदकाविक्छन्न-

मेतद्रूपाभिनं गुणलात् ज्ञानादेखादी ताद्यसाध्याभावससुदाया-धिकरणे एतद्रूपभिने समवेतलाभावः एतद्रूपभिने विषयिलाभावो वा ताद्यसम्बन्धेन द्वत्तिमन्मातद्वत्तिर्यः स व्यधिकरणधर्माव-च्छित्राभाव एवेत्यतिव्याप्तिः। एवं एतत् पटाभिनं घटादित्यत्र संयोगेन हेतुतायामपि बोध्यम्।

श्रव केचित् सार्व्वभौममते सत्तायां गुणे न द्रव्यवसामा-नाधिकरण्यमितिन्यायेन हित्तावाभावः प्रायणोऽव्याप्यहत्तिरेव, तथाच प्रकतेऽिप कालिकसम्बन्धेन हितौ घटे कालोपाध्यवच्छेदेन महाकालहत्तिवाभावे समानाधिकरण्धभाविच्छन्नप्रतियोगि-ताके विद्यमानेऽिप हेल्थिकरणावच्छेदेन तस्याहत्तिलान्नाति-व्याप्तिः, लच्चणे तथैव विवच्चणादित्याद्यः।

परे तु साध्याभावकूटाधिकरणवृत्तित्वाभावा इत्यत तु वित्तित्वं देशिकविशेषणताविशेषणेव, तथाच तादृशवृत्तित्वाभावा-यावन्तो येषु देशिकविशेषणताविशेषकात्तिकेषु तानि यदूपाव-च्छितस्य व्यापकानि तत्त्विमित्यर्थः। तथाहि महाकालान्यो घटादिस्तत महाकालान्यत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वं तथा, न च कालिकसम्बन्धेन घटव्यापकं इत्यपि वदन्ति।

ननु साध्यतावच्छेदकसमव्याप्तप्रतियोगिताकालं साध्यताव-च्छोदकव्यापकप्रतियोगिताकालं वा विवचताम् उभययापि द्रदं व्यापकतावक्छेदकरूपावक्छिन्नप्रतियोगिताकव्याप्यवित्त-स्वसमानाधिकरण-यावदभावाधिकरण-वृत्तित्वाभावा यावन्तो वृत्तिमद्गृत्तयस्तदत्त्वं व्याप्तिः केवलान्व-यिनः संयोगाद्यभावस्याभावाः संयोगादयो न व्याप्य-वृत्तयः।

एवं साध्यस्य गुणसामान्यस्याभावो द्रव्यत्वाधि-करणे उत्पत्तिकालावच्छेदेन वर्त्तमानोऽपि न व्याप्य-

पृथिव्यन्यद्रव्यववत् द्रव्यवात् द्रव्यवातिव्याप्तिः। तत्र तद्रव्य-वित्तविशिष्टद्रव्यवाभावानां साधनसमानाधिकरणानां प्रति-योगिताव्यापकसाध्यतावच्छेदकव्यापकवस्य समव्याप्तवस्यापि सत्त्वात्तादृश्कूटाधिकरण्द्रव्यवृत्तित्वाभावस्य च द्रव्यत्वे सत्त्वादित-व्याप्तिरित्यतं त्राप्तं, तेनितिः। तथाच साधनसमानाधिकरणेत्यादि-विवच्चणे साध्यतावच्छेदकावच्छित्रव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छित्र-प्रतियोगिताकेत्येव विवचणीयम्, एतेनित्यस्य तु पूर्वीकातिव्याप्ति-द्रयेनित्यर्थः।

केवलान्वयिन इत्यादि इदं किपसंयोगासाववत् मेयत्वादि-त्यादौ साधनसमानाधिकरणसंयोगासकाभावमादाय कूटाधि-करणं द्रव्यमेव तद्दृत्तित्वाभावो मेयत्वे वाधित इत्यव्याप्तेर्व्याप्यवृत्ति-पदेन वारणमिति दैशिकाव्याप्यवृत्तिवारणमुक्ता कालिकाव्याप्य-वृत्तिवारणमाह, एवमिति । गुणवान् द्रव्यत्वात् इत्यादावित्यर्थः, वृत्तिः उत्तरूपानविक्तिन्नप्रतियोगिताकाः क्विच्छन्नप्रतियोगिताकाः क्विच्छन्नप्रतियोगिताकाः क्विच्छन्नप्रसिद्यादिकाः पुनरभावा न हेतुसमानाधि-करणाः। उत्तरसमुदायाधिकरणवृत्तित्व-तदभाववृत्ति-मत्त्वानि पूर्व्वोत्तरीत्या प्रत्येतव्यानि द्रत्यादिक-मपास्तस्॥ १५॥

त्रत्र च साधनसमानाधिकरणगुणसामान्याभावमादाय क्रटाधि-करण नित्यद्रव्यभिन्नभेव तद्वत्तित्वाभावस द्रव्यत्वे वाधित इत्य-व्याप्तिः सभावित्मईति दत्यर्थः, उत्तरूपेति । साध्यतावच्छेदकाव-च्छिन्नव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिनेत्यर्थः, क्वचिदिति । पृथिवी-लाभाववान् जललादित्यादावित्यर्थः, श्रप्रसिद्धीति । पृथिवीला-भाववान जनलादित्यव घटावृत्तिलादिना ये तादृशाभावास्तेषां क्रटाधिकरणाप्रसिबिरित्यर्थः, श्रादिपदादिदं जलं द्रव्यत्वप्रका-रकप्रमाविषयलादित्यादावतित्याप्तिपरिग्रहः, प्रवीकेति । हेत्-तावच्छेरकसम्बन्धेन इत्तिलं तदभावस इत्तितालसमनियतप्रति-योगिताकः, हत्तिमत्त्वमपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिता-व्यापकतादृगव्यत्तितालेत्यादिव्यावृत्तिस्तु, उपदर्शितालोकावृत्तित्वेन रूपेणाभावमादाय न घटते विज्ञसामान्याभावस्य साधनासमा नाधिकरणलात्, जगहृत्तिलस्य चालोकावृत्तिलादिति। किन्तु जगइत्तिलधूमलोभयाभावमादाय वोध्या, तदभावस्य तादृश-हित्तितालव्यापकप्रतियोगिताकलात्, श्रन्य च पूर्व्ववहोध्यम् ॥१५॥

तत्त्वचिन्तामणिः।

प्रतियोग्यवृत्तिश्च धन्मी न प्रतियोगितावच्छेदकः तिविशिष्टज्ञानस्याभावधीवृतुत्वात्।

श्रन्यथा निर्व्धिकल्पकादिप घटो नासौति प्रतीत्यापत्तेः। गविशशर्मुङ्गं नास्ति द्रति प्रतीतेरसिडिः शशर्मुङ्गं नास्तीति च शशे सृङ्गाभाव दृत्यर्थः।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणी व्यधिकरणधर्मावच्छिनाभावः समाप्तः।

दीधिति:।

ति शिष्टेति । विशेषणताव च्छेदक विशिष्ट ज्ञानस्य विशिष्टवेशिष्ट्यप्रत्यय हेतुत्वात् अभावप्रतीति चिट-त्वादिविशिष्टस्य घटादेः प्रतियोगित्वमवगाइमानो विशेषणस्यापि घटत्वादेस्तदवच्छेदक त्वमवगाइते ।

प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टन्नानं हि नाभावधीमात्रहेतु-रिति व्याचष्टे, विशेषणतेति। श्रतएव वच्चिति श्रभावप्रत्ययो हि विशिष्टवैशिष्टमय्यादां नातिश्रेत इति विशेषणस्यापि इति इदं पुनः प्रत्यचप्रतीतिमभिष्रत्य, शब्दादी तु तदवच्छेदकलं पुन-रन्ययोपपादितमेव न स्नातन्त्रेगणेति, श्रतएव वच्चमाणविकत्याः सङ्गच्छन्त इति भावः।

		_	
• Markandeya Purana, Fasc 5-7 @ /10/ each	\sim Rs		14
*Mīmāmsā Darçana, Fasc 10-19 @ /10/ each	•	6	4
Nyāyavārtīka, Fasc. 16 @ /10/ each · · · · · ·	•	3	12
*Ninukta, Vol IV fasc. 1-8 @ /10/ each		5	0
*Nitisara, Fasc 3-5 @ /10/ each	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	1	14
Nityācāi apaddhatih, Fasc -7 @ /10/ each	Olonob	4 6	6 14
Nityācārapi adīpah Vol I. Fasc 1-8, Vol. II, Fasc. 1-3 @ /1		0	10
Nyayabındutika, Fasc 1 @ /10/ each	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	G	10
*Nyāya Kusumānjalı Prakarana Vol. I, Fasc 2-6, Vol. II, F	asc.	5	0
13 @ /10/ each	•• •••	2	0
1 5 @ 0/	••	10	
*Pariçişta Parvan, Fasc 3-5 @ /10/ each	· ·	î	14
Prākuta-Paingalam, Fasc 1-7 @ /10/ each		4	6
Prithivirāj Rāsa. Pait II, Fasc 1-5 @ /10/ each	•••	$\hat{3}$	2
Ditto (English) Part II, Fasc 1 @ 1/		1	ō
Prākrta Lakṣaṇam Fasc 1 @ 1/8/ each		ī	8
Parāgara Smiti, Vol I, Fasc 1-8, Vol. II, Fasc 1-6, Vol II		_	Ü
Fasc 1-6 @ /10/ each	,	12	8
Parāgara, Institutes of (English) @ 1/- each		1	ŏ
Panksamukha Sutram		1	0
Prabandhacıntāmanı (English) Fasc. 1-3 @ 1/4/ each		3	12
Rasamavam, Fase 1-3		3	12
Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ /10/ each		1	4
Samaraieca Kaha Fasc. 1-3, @ /10/	. ,	1	14
Sāņkhya Sūtra Vrtti, Fasc 1-4 @ /10/ each		2	8
Ditto (English) Fasc 1-3 @ 1/- each		3	Ō
•Sankara Vijaya, Fasc 2-3 @ /10/ each		1	4
Six Buddhist Nyaya Tracts		0	10
Srāddha Kriyā Kaumudī, Fasc 1-6 @ /10/ each		3	12
Sragdharā Stotia (Sanskrit and Tibetan)	•	2	4.3
Sucruta Sainhitá, (Eng.) Fasc 1 @ 1/- each		1	0
Suddhikaumudī, Fasc I-4 @ /10/ each		2	8
Sundaranandam Kavyam		1	0
Suryya Siddhanta fasc 1	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	1	4
Syamka Sastra	•••	1	O
*Taittreya Biahmana, Fasc 11-25 @ /10/ each		9	6
, Pratisakhya, Fasc 1-3 @ /10/ each	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	1	4
*Taitterīya Sainhitā, Fasc 27-45 @ /10/ each	•••	11	14
Tāṇdya Biāhmaṇa, Fasc 10-19 @ /10/ each		6	14
Tantra Varteka (English) Fasc 1-8 @ 1/4/ each		10	U
Tattva Cintāmani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-10, Vol. III	l, Fasc 1-2,		
Vol IV, Fasc 1, Vol V, Fasc 1-5, Part IV, Vol II, Fasc. 1-12 @		24	15
Tattva Cintamanı Dıdhıtı Vıvrıtı, Fasc, 1, @ /10/each Dıtto Prakas, fasc, 1-2, @ /10/each	••	0	()
Tattyathadhagama Sutram Rose 1 2 6 (194)	•••	1	4
Tirthogintumoni togo I (a) /I()/ coch	***	1	14
Tribanda Mandanana Fasa 19 @ 444 1		0 1	10
Tul's: Satsa: Fasa 15 @ /10/ h	•••	3	14
*Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-2, 5 13 @ /10/ each	••	6	2 1#
Uvāsagadasāo, (Text and English) Fasc. 1-6 @ 1/- each	•••	6	()
Vallāla Carita, Fasc 1 @ /10/	•••	ő	10
Varşa Krıya Kaumudi, Fasc 1-6 @ /10/ each	••	š	12
"Vayu Purana, Vol. I, Fasc. 36. Vol. II. Fasc. 17. @ /10/ each	·	6	14
Vidhara Paruata, Fasc. 1-8 Vol. II Foga I @ /10/ acab	•••	5	10
Ditto Vol. 11. Fasc 2.4 @ 1/4/		3	12
vivadarathakara, Fasc 17 (g) /10/ each	,,,	4	0
Vrhat Svayambhū Purāna, Fasc. 1-6 @ /10/ each	•••	3	12
*Yoga Aphorisms of Patanjali. Fasc 3-5 @ /10/ each	•••	1	14
Yogasāstra of Hemchandra Vol. I. Fasc 1-3	•••	3	12
Tibetan Series.	,,,	•	
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.)		2	0
A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1-4 @ 1/- each	•••	$\tilde{4}$	0
Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1		î	ő
Pag-Sam Shi Tifi, Fasc. 1-4 @ 1/- cach		4	0
Rtogs brjod dpag hkhri S'ifi (Tib. & Sans, Avadāfia Kalpalatā) V	ol. I,	-	
Fasc. 18; Vol 11 Fasc. 17 @ 1/- each		15	0
Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol II, Fasc 1-3; Vol III, Fasc. 1.	6, @ 1/ each	14	Ü
Arabic and Persian Series.	/		•
'Alamgirnamah, with Index, (Text) Fasc. 1-13 @ /10/ each		8	9

f.)	
Aîn-l-Akbarî, Fasc 1-22 @ 1/8/ each	33 0
Ditto (English) Vol. I, Fasc. 17, Vol. II, Fasc. 15, Vol.	of III, 36 0
Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-8, Vol II, Fasc. 1-7 Vol 3 (
Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/	0 10
*Bādshāhnāmah, with Index, Fasc. 1-19 @ /10/ each	11 14
Conquest of Syria, Fasc 1-9 @ /10/ each	Rs. 5 10
Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2 @ 1/- each	2 0
Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library	
Asiatic Society of Bengal. Fasc 1-3 @ 1/each	3 0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1-21	
Fa rnang-1-Rashīdī, Fasc 1-14 @ 1/8/ each	21 0
Fight 11st-1-Tusi or, Tusy's list of Shy'ah Books, Fasc. 1-4 @ 1/- es	
Futūh-u <u>sh-Sh</u> ām of Wāqidī, Fasc 19 @ /10/ each Ditto of Āzādī, Fasc 14 @ /10/ each	$\begin{array}{cccccccccccccccccccccccccccccccccccc$
The state of the s	1 0
History of Gujarat Haft Asmān, History of the Persian Masnawi, Fasc. 1 @ /12/ each	0 10
Hisatory of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ each	= 0
Iqalnamah-i-Jahangiri, Fasc 13 @ /10/ each	• • • •
Islabah, with Supplement, 51 Fasc @ 1/- each	F1 0
Ma'ṣāɪr-i- Ālamgīrī, Fasc 16 @ /10/ each	3 12
Maa'āsır-ul-Umarā, Vol. I, Fasc 19, Vol. II, Fasc 19; Vol III	. 1-10 :
Index to Vol. I, Fasc 10-11; Index to Vol. II, Fasc 1	0-12:
Index to Vol. III, Fasc 11-12 @ /1/ each	35 0
Maghāzi of Wāqidī, Fasc. 1-5 @ /10/ each	3 2
Marhamu 'L Ilalı 'L-Mu'Dıla	1 0
Muntakhabu-t-Tawaikh, Fasc 1-15 @ /10/ each	9 6
Ditto (English) Vol. I, Fasc 1-7; Vol. II,	Fasc.
1-5 and 3 Indexes; Vol III, Fasc 1 @ 1/ each	16 0
Muntakhabu-l-Lubāb, Fasc 1-19 @ /10/ each	11 14
Ditto Part 3, Fasc 1	1 0
Nukhbatu-l-Fikr, Fasc. 1 @ /10/	0 10
Nızāmi's Khıradnāmah-ı-Iskandari, Fasc 1-2 @ /12/ each	1 8
Qawanınu 's-Sayyad of Khuda Yar Khan 'Abbası, edited in the original	ginal
Persian with English notes by Lieut Col D. C. Phillott	5 0
Rıyazıı-s-Salatin, Fasc 15 @ /10/ each	3 2
Ditto (English) Fasc. 15 @ 1/	5 0
Tadhkna-1-khushnavisan	1 0
Tabaquāt i-Nāṣuī, (English), Fasc 1-14 @ 1/- each	14 0
Ditto Index	$\frac{1}{4}$
Tailkh-i-Finūz Shāhi of Ziyāu-d-dīn Barni Fasc 1-7 @ /10/ each	4 6
Tārīkh-i-Fīrūzshāhi, of Shams-i-Siiāi Aif, Fasc 1-6 @ /10/ each Ten Ancient Arabic Poems, Fasc 1-2 @ 1/8/ each	3 12
Bush a Johanning (From Posse 1 @ 1/	3 0
Wis-o-Rāmin, Fasc. 1-5 @ /10/ each	9 6
Zafarnāmah, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol II, Fasc 1-8 @ /10/ each	10 10
2. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1.	10 10
ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.	
1. ASIATIC RESEARCHES. Vols. XIX and XX @ 10/ each .	20
2 Proceedings of the Asiatic Society from 1870 to 1904 @ /8/ pe	er No
3. Journal of the Assiatic Society for 1870 (8), 1871 (7), 1872	(8), 1873
(8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7),	1880 (8).
1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8).	1887 (7).
1898 (7), 1899 (10), 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1893 (1	1). 1894
(8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8), 1899 (8), 1900	(7). 1901
(7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Member	pers and
@ 2/ per No to Non-Members	
N B -The figures enclosed in brakets give the number of Nos in	$each\ Volume.$
4 Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date, (Nos. 1-4 of 1905	are out of
stock), @ 1-8 per No. to Members and Rs. 2 per No to Nor	ı-Members
5. Memoirs, 1905, to date Price varies from number to	number.
Discount of 25% to Members	
6. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784-18	
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal, 191	10, 8 0
8. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lept	
Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to @ 6/ each	18 0
9. Kacmiraçabdamıta, Parts I & II @ 1/8/ 10 Persian Translation of Haji Baba of Ispahan, by Haji	3 (
10 Persian Translation of Haji Baba of Ispahan, by Haji Ahmada-Kirmasi, and edited with notes by Major D. C. Phi	Duaiku
Assess - Allingon, and curred with motes by Major D. C. Phi	llott 10 0
Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 @ 1/ each	34 0
Nepalese Buddhist Sauskrit Interature, by Dr. R. L. Mitra	5 (
N.B.—All Cheques, Money Orders, &c. must be made payable	to the "Transurar
A sintia Conicte " only	viio ricasiidi,

BIBLIOTHECA INDICA .

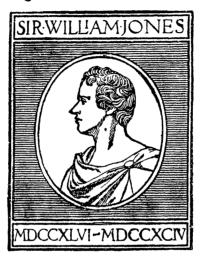
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

NEW SERIES, No 1311.

अनुमान-दौधिति-प्रसारिगी



ANUMANA DĪDHITI PRASĀRINI

BY

KRISHNA DAS SARVABHAUMA

WITH TATTVACINTAMANI AND DIDHITI

EDITED BY

PANDIT PRASANNA KUMAR TARKANIDHI

Professor, Sanskrit College.

EASCICULAS II.

Calcutta:

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHAKRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS.

No. 5, Nandakuman Chawdhury's 2nd Lane.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 1, PARK STREET

1911.

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CACUTTA, AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS. MR. BERNARD QUARITCH, 11, Grafton Street, New Bond Street, London, W., and Mr. Otto HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied .-- some

Ą

6

0

8

0

9 0

of the Fasciculi being out of stock. BIBLIOTHECA INDICA. Sanskrit Series Advaita Brahma Siddhi, Fasc. 2, 4 @ /10/ each ... 3 Advaitachinta Kaustubha, Fasc. 1-3 @ /10/ each 1 14 . . . *Agni Purāṇa, Fasc. 6-14 @ /10/ each ... Aitarēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. III. 5 10 Aitereva Lochana. Annu Bhāshya, Fasc. 2-5 @ /10/ each Aphorisms of Sāṇḍilya, (English) Fasc. 1 @ 1/- ... Aṣṭasāhasrikā Prajūāpāramitā, Fasc. 1-6 @ /10/ each *Atharvana Upanishad, Fasc. 4-5 @ /10/ each Atmatattaviveka, Fasc. I. @ /10/ each Açvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each ... -Anu Bhāshya, Fasc. 2-5 @ /10/ each ... 12 4 10 Avadāna Kalpalatā, (Sans. and Tibetan) Vol. 1, Fasc. 1-7; Vol. 11. Fasc. #Bālam Bhattī, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol. 2, Fasc. 1 @ /10/ each ... 1 Baudhāyana S'rauta Sutra, Fasc. 1-3 Vol. II, Fase 1-3 @ /10/ each ... 3 *Bhāmatī, Fasc. 4-8 @ /10/ each 6) 14 Bhātṭa Dīpikā Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. 2, Fasc. 1, @/10 each ... Baudhyostatrasangraha Brhaddövatā Fasc. 1-4 @ /10/ each Brhaddövatā Fasc. 1-4 @ /10/ each Brhaddharma Purūna Fasc 1-6 @ /10/ each Bodhiearyāvatāra of Çāntideva, Fasc. 1-5 @ /10/ each Cri Cantinatha Charita, Fasc. 1-3 Catadūṣanī, Fasc. 1-2 @ /10/ each Catalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 @ 2/ each Catanatha Brāhwana Vol I Fasc. 1-7 Vol II Fasc. 1-5 Vol 0 ... 12 47 7 14 7 ... 4 0 Qatapatha Brāhmaņa, Vol I, Fasc. 1-7, Vol II, Fasc. I-5, Vol. III, Fasc. 1-7 Vol. 5, Fasc. 1-4 @ /10/ each Ditto Vol. 6, Fasc. 1-3 @ 1/4/ each 6 14 3 2 Ditto Vol. VII, Fasc. 1-5 @ /10/ Qatasāhasrikā Prajfiāpāramitā Part, I. Fasc. 1-14 @ /10/ each ... 3 2 ... 8 12 Caturvarga Chintamani, Vol. II, Fasc. 1-25; Vol. III. Part I, Fasc. 1-18. Part II, Fasc. 1-10. Vol. IV. Fasc. 1-6 @ /10/ each 36 14 Ditto Vol. 4, Fasc. 7-8, @ 1/4/ each ... Ditto Vol. IV, Fasc. 8-9 @ /10/ ... Qlockavartika, (English) Fasc. 1-7 @ 1/4/ each ... - 2 8 ... Cranta Sütra of Āpastamba, Fasc. 1-7 @ 1/4/ each Ditto Çaukhāyana, Vol. I, Fasc. 1-7: Vol. 17 Vol. III, Fasc. 1-4: Vol. 4 ì 4 . . . 8 12 12 n Qrī Bhāshyam, rate 1-2 @ /10/ each Dāna Kriyā kaumudī, Fasc 1-2 @ /10/ each Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. I, Fasc. 1-7 @ /10/ each litto Āchārasārah Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each Gobhiliya Grihya Sutra, Vol. I. @ /10/ each Ditto Vol. II. Fasc. 1-2 @ 1/4/ each Ditto (Appendix) Gobhila Parisista Ditto Grihya Sangraha Haralata Karmaprādiph, Fasc. I Wāla Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each 14 . . . 6 ---3 . . . 3 2 . . . 0 10 ... Haralata Karmapfadiph, Fasc. I Kala Viveka, Fasc. 1–7 @ /10/ each Katantra, Fasc. 1–6 @ /12/ each ... 1 14 6 Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each Kāthā Sarit Sāgara, (English) Fasc. 1-14 @ 1/4/ each *Kūrma Purāṇa, Fasc. 3-9 @ /10/ each Lalita Vistara, (English) Fasc. 1-3 @ 1/- each ... 8 ... 17 8 6 ... 2 0 Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each Mahā-bhāsya-pradipōdyōta, Vol. 1, Fasc. 1-9; Vol. 11, Fasc. 1-12 Vol. 111, 14 Fasc. 1-10 @ /10/ each Ditto Vol. IV, fasc. 1 @ 1/4 Manutikā Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each ... 19 6 Manutikā Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each Mārkandēya Purāna, (English) Fasc. 1-9 @ 1/- each - 1 4 ... 1 ... 14

न तु खातलेशण घटो नास्तीखेव प्रतीतेस्तिहिं।भावप्रखतो यदि व्यधिकरणधर्मेण विशिष्टं प्रतियोगिनं
नावगाइते नावगाइत एव तदा तस्यापि प्रतियोगितावक्केदकत्वं अयावगाइते तिई भ्रम एव, न च ततोऽर्धसिंडिरिति भावः। यदि पुनरानुभविको लोकानां
स्वरसवाही घटत्वेन पटो नास्तीखाद्यनुभवस्तदा
ताह्याभावनिवारणं गौर्व्वाणगुरूणामप्यश्चामिति
मन्तव्यम्॥ १६॥

इति श्रोरञ्जनायग्रिरोमणिविरचितायां व्याप्तिवादचिन्तामणि-दीधिती व्यधिकरणधर्यावच्छित्राभावः समाप्तः।

नावगाहत एवेति। तथाच क व्यधिकरणधर्मस्यावच्छेदकलमितिभावः। न च तत इति। यद्यपि तदंगे भ्यमलेऽपि अवच्छेदकलमचुसमेव तथापि वैशिध्यनियतमवच्छेदकलमित्यभिपायः,
यदौति। प्रतियोगितावच्छेदकस्य स्वातन्वेग्रनभानमित्यर्थः।
कचित् पुस्तके घटलेन घटो नास्तौति पाठः, स तु समानाधिकरणधर्मावच्छित्राभावस्थल एव प्रतियोगितावच्छेकस्य स्वातन्वेगनावच्छेदकत्वावगाहनपरतया सङ्गमनीयः, पटो नास्तौति पाठसु
प्रक्ततपरतया अतिसुगम एव॥ १६॥

इत्यनुमानदीधितिष्रसारिखां व्याप्तिवादेव्यधिकरण-धर्मावच्छिनाभाव: समाप्त:।

अय पूर्व्वपत्तः।

तत्त्वचिन्ताणि:।

श्रव साध्यासामानाधिकरस्यानधिकरसत्वे सति साधिकरसत्वं व्याप्तिः केवलान्वयिनि साध्यासामा-

दीधिति:।

साध्येति। साध्यस्यासामानाधिकरण्यं येषु तेषामनिधकरण्यं तदभाववत्त्वमिति यावत्, तिस्मिन् सिति
साधिकरण्यं तदविक्छन्नाधिकरण्यताक्त्यं सिति
सप्तम्या चवक्छेदकत्वलाभात्, तचेहानूमनवृत्तित्वम्
एवच्च साध्यवदद्दत्तिसकलपदार्याभाववत्त्यं यद्दिकरण-

प्रसारिणी।

साध्येतीत्यादि । साध्यसामानाधिरखं यदि साध्यानिधकरणवृत्तित्वे तदा तदनिधकरणस्य गगनादेर्व्वारणाय साधिकरणपदे
दत्तेऽपि केवलान्वयिन्धप्रसिद्धिरग्रिमग्रन्थविरोधस्य यदि तदिधकरणानिधकरणत्वं तदा सत्यन्तेनैव गगनवारणे साधिकरणपदं
व्यथं, द्रव्यं सत्वादित्यादावित्याप्तिस्य, सत्त्वादौ द्रव्यत्वाधिकरणानिधकरणत्वाभावादिति यथाश्रुतेऽनुपपत्था व्याचष्टे साध्यस्त्रेत्यादि।
श्रनिधकरणत्विमत्यस्य श्रीधकरणत्वाभावात्मकत्या तत्र चाधिकरणत्वस्य वैयर्थादाइ, तदभाववत्विमित । श्रतापि मतुवर्थोऽविव-

नाधिकरण्यं निरिधकरणे चाकाणादी प्रसिद्धमिति चेत् न, साध्यासामानाधिकरण्यं हि न साध्यान-

ताया अनू ग्रनहित्ततत्त्विमिति तु फिलितार्थः। यथासित्त-विशेऽधिकरणत्वस्य न वैयर्ध्यं हितुतावक्छेदकसम्बन्ध-लाभाय वा तत्। येन येन सम्बन्धेन यो यः साध्य-वदहित्तिस्तेन तेन सम्बन्धेन तदभावो बोध्यः। एतेन साध्यवहृत्तित्वं यदि साध्यतावक्छेदकसम्बन्धेन विव-चितं तदा समवायेन साध्यतायां साध्यवदसमवेतस्य सार्व्यविकत्वात् सकलतक्कृन्याप्रसिद्धिः।

चित एव, ननु सित्सप्तस्याः अवच्छेदकाले लखेऽवच्छेदकाल-स्थानितिरिक्तष्टित्तालार्थकातया साध्यवद्वत्तिसकालपदार्थाभाववत्त्वं यदिधिकरणताया अनितिरिक्तष्टत्तीत्थर्थी वाच्यः। स च धूमवान् वद्गेरित्यादी धूमवद्वत्तिसकालपदार्थाभाववत्वस्य वङ्ग्रिधिकरणता-व्याप्यत्वेनातित्याप्ते इत्यत आहं, तचेति। इदमेव सङ्गमयिति एवच इत्यादिना, ननु ताद्यशाभाववत्वं यस्य व्यापकमित्येवास्तु अलमधिकरणपदेनेत्यत आहं, यथिति। तनु तथा अवैयर्थेऽपि अनितिप्रयोजनिमत्यत आहं, हित्तेति। तदिधिकरणपदं तथाच विक्रमान् धूमादित्यादी समवायसम्बन्धेन धूमसम्बन्धिनि तद-वयवे यावत् साध्यवद्वत्तिपदार्थसन्त्वेऽपि न चितः, एतन येन धिकरणाधिकरणत्वं साध्याधिकरणानधिकरणत्वं वा किवलान्वयिनि यत्किः चित्रसाध्याधिकरणानधिकरणे धूमे चाव्याप्तिः ॥ १॥

अय तदभावोऽपि तादृशेनैव सम्बन्धेन वाच्यः तदा जातिमान् भेयत्वादित्यादावित्याप्तिर्जातिमदसमवे-तानां समवायेनाभावस्य केवलान्वयित्वात्। अतएव न समवायेन संयोगेन वा दृदं न जातिमज्जातित्वा-दित्यादौ साध्यवत्समवेताद्यप्रसिद्धेश्व। नापि साधन-तावच्छेदकसम्बन्धेन दृद्भेतद्रूपभिन्नं गुणत्वादित्या-दावित्याप्तः। नापि विषयतया घटभिन्नं भेयत्वादि-

येनेत्यादिविवचणेन साध्यवदसमवितित सर्वच वाच्यवादीनां सत्वादित्यर्थः, ताद्यमेन साध्यवदव्यत्तित्वप्रयोजकसम्बन्धेन, जातिम-दिति। यत्यत् समवितं तज्जातिमत्येव समविति इत्यसमवितमेव जातिमदसमवितं, तथाच समवायेन तदभावः केवलान्वयौति भावः अतएव प्रक्षतातिव्याप्तेरेव न समवायेनेति पूर्व्वं साध्यतावच्छेदक-सम्बन्धत्वप्रकारेण उत्तं इदानौन्तु समवायत्वेनेति भेदः, संयोगिनेति, यत् यत् संयुत्तं तत्तज्जातिमदेव इति जादिमदसंयुत्तम् असंयुत्तमेव इति तदभावः पूर्व्ववत् केवलान्वयौत्यर्थः अतः साध्यवदसमवित-स्याभावः संयोगिन वत्तव्यः तदा जातिमदसमवेतस्य प्रमान्वादेः

त्यादावितव्याप्तेः सिवषयक्षमाचस्थैव घटिभद्वविषयक-त्वात् घटिनिर्व्धिकल्पकेऽपि घटत्वादिभानात्। नापि सम्बन्धमाचेण, द्रव्यं सत्वादित्यादावितव्याप्तेः वृत्तिम-न्माचस्थैव खक्षपसम्बन्धेन महाकाले वृत्तेः अवृत्तेर-भावस्य केवलान्वियत्वादिति प्रत्युक्तम्॥१॥

संयोगेन मेयलाधिकरणे सत्त्वान्नातित्याप्तिरिति मनसिक्कत्याह, इदं न जातिमदिति । साध्यवदिति जात्यभाववति जात्यादौ समवाया-प्रसिद्वेरित्यर्थः, त्रादिना संयुक्तपरिग्रहः । साधनतावच्छेदकेनेति साध्यवदहत्तिलमित्यचान्वितम् एवम् अपरचापि ।

दरमित्यादि, रूपिभनं गुणलादित्यत्र हितृतावच्छेदक्समवायसम्बन्धेन रूपिभन्नावृत्तीनां रूपलश्कलादीनां गुणलाधिकरणेऽपि सत्त्वान्नातित्याप्तिर्घटत द्वति एतदिति, तथाच यत् यत्
समवेतं तत्त्तदेतद्रूपिभन्ने समवेतमेव, अतएव घटादिकं विहाय
रूपपर्यम्तानुधावनिमिति, घटादिमाचवृत्तेसु तदीय रूपादेरैव
सुनभलात्। घटभिन्नमिति। अत्रतु विषयतासम्बन्धेन यत् यत्
सम्बद्धं तदवश्यं घटभिन्ने सम्बद्धमिति घटमात्रविषयकस्थाप्रसिद्धः, तथाच घटभिन्ने विषयतासम्बन्धेन यन्न वर्त्तते तन्नवर्त्तते
एव विषयतासम्बन्धेन, अतएव विषयतया तस्थाभावः सार्व्विक्ष
दर्श्वतित्र्याप्तिरितिभावः। नापौत्यादि द्रव्यं सत्वादित्यत्र द्रव्यलाधिकरणे महाकाले सम्बन्धमात्रेण यन वर्त्तते तन्न वर्त्तत एव

नापि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगि-साध्यसामानाधिकरण्यं पर्व्वतीयवक्केमेहानसीयधूम-समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् द्रव्यत्वादे-

विशेषणताविशेषण वा साध्यवदृष्टतित्वं वक्तव्यं सर्व्यचैव तत्तद्व्यक्तित्वेन तत्तद्वान्यत्वे तत्प्रकारक-प्रमाविषयकत्वे वा सुलभं, तेनैव सम्बन्धेन तदव-क्तिन्नसामान्याभावो वाच्य द्रति। केचित्त नञ्ब्यया-सेन चसाध्यानि साध्यविरोधिनि साध्यासमानाधि-

कुत्रापि तथाच तेन सब्बन्धेन तस्याभाव: सत्वाधिकरणे सुलभः एव इति भाव:॥१॥

ननु येन येन सम्बन्धेन साध्यवित न वर्त्तते तेन सम्बन्धेन तस्थामावः इत्यव तु यत्तदर्थयोरननुगमात्, साध्यवदहित्तपदार्थाः भावस्य सामान्यामावरूपत्वं न घटते, अतएव पूर्वं सकलेत्युक्तम् अत आह, विशेषणतिति। तत्तदािक्तित्वमिति स्वरूपभेदविशेष इत्यर्थः। ननु तत्तदािक्तिभिन्नभेदस्य सम्प्रदायमते तत्तदािक्तिमावः हित्तरूपाद्याक्तकत्या विशेषणताविशेषण श्रहित्तत्वमसम्भवतीत्यतः श्राह, तत्तदिति। श्रव तु श्रन्थान्यत्वं तत्तदािक्तमावहित्ररूपाद्याः सक्तमननुगमात्, नन्वेवमेव यत्र व्यभिचाराधिकरणं द्रव्यत्वादिकं तत्रान्यान्यत्वं नास्ति, तथाच पूर्व्वदोषतादवस्थम् इत्यतः श्राह्म, तत्तदिति।

रव्याष्यवृत्त्वव्याष्यतापत्तेश्व । न च प्रतियोगिविरो-धित्वं व्याष्यवृत्तित्वं वा श्रभाविवशेषणं देयं संयोगादी साध्ये सत्त्वादेरनैकान्तिकत्वाभावप्रसङ्गात् । निष्ट प्रति

करणानीति यावत् तानि सामानाधिकरण्यानिधकर-णानि यस्य तत्वम् । साध्यसामानाधिकरण्याभाव-व्यापकाभाव-प्रतियोगि-सामानाधिकरण्यसामान्यकत्व-मिति तु फलितार्थः, अन च साध्यसामानाधिक-रण्यं साध्यतावक्केंदकसम्बन्धेन साध्यवति हेतुताव-

तद्दातिमात्रष्टित्तरसाधारणः कञ्चन धर्मः। श्रत च विषयत्वस्य यो विशेषणताविशेषः द्रत्यभिग्रेत्य पचान्तरमित्यपि कियत्। तेनैवेति, विशेषणताविशेषेणैवेत्यर्थः। सामान्याभाव-प्रतियोगितावच्छेदकं पुनर्व्विशेषणताविशेषेणैव. साध्यवदृत्तित्व-मिति मित्राणां दितीयमतमाह, केचित्तित्यादि। श्रमाध्यानिति बहुवचनं व्यापकत्वमाविष्कत्तुंम्, श्रन्यया धूमवान् वङ्गेरित्यत्व कस्यचित् साध्यासामानाधिकरण्यस्य हेतुसामानाधिकरण्यानिध-करणतयातित्याप्तिः स्यादिति यावत्त्वस्य व्यापकत्वरूपतया स्याप्ते-हेतुनिष्ठतया च तथैवाह साध्येत्यादिपत्वितार्थं दत्यन्तेन। धूम-वान् वङ्गेरित्यत्र धूमव्याप्यविङ्गिनष्टसामानाधिकरण्यं तादृशाभाव-प्रतियोग्येवेति सामान्यपर्यन्तम्। न चात्र सामान्याभावो वक्तं प्रकाते व्युत्कृमेणाभिधानात् दति। श्रत्न च यथाश्रुते द्रव्यं सत्त्वात् योगिविरोधी संयोगादेरपरोऽत्यन्ताभावीऽस्ति, अधि-करणभेदेनाभावभेदाभावात्॥ २॥

च्छेदकसम्बन्धेन हतिः परञ्ज सामानाधिकरण्यं हितु-तावच्छेदकसम्बन्धेन हितुमित तेनैव सम्बन्धेन हितः, तेन समवायेन पृथिवीत्वादेः साध्यतायां व्यभिचा-रिणि कालिकसम्बन्धेन हेती द्रव्यत्वादेश्व समवायेन साध्यतायां समवायेन हेती सत्वगुणत्वादी नाति-प्रसङ्गः।

द्यात द्र्ञावाधिकरणे महाकाले व्रत्तिमन्मात्रस्यैवव्रत्तेः सम्बन्धसामान्येन द्र्ञालसामान्यानधिकरणमवृत्तिरेव। तच हेतुसामानाधिकरण्यानधिकरणमेवित्यत आह अत चेति। क्रमेणमम्बन्धविवचायाः फलमाइ तेनित्यादिहेतावित्यन्तेन, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनित्यस्य फलकथनम् अयमर्थः पृथिवीजगदाधारत्वात् इत्यत्र
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्ताकथने सम्बन्धसामान्येनैव
साध्यवान् लब्ध्यः। अत्र च कालोऽिय निविधते हेतुतावच्छेदककालिकसम्बन्धेन तदृत्तित्वाभावस्वव्यत्तावेव, तत्र च ताद्यप्रहेतुसामानाधिकरण्याद्यभावोऽस्थेविति। दत्ते च तस्मिन् समवायसम्बन्धेन पृथिवीत्वस्थाधिकरणं देधा जन्यम् अजन्यं च। तत्र
जन्यमात्रस्य कालोपाधित्वेऽिय प्रलयमात्रीयपदार्थस्य यावत्

न वा संयोगिन वङ्गादी साध्ये समवायेन तद्-व्यायस्य रूपविशेषादेः कालिकसम्बन्धेनाधिकरणी

पृथिवीत्वमात्रसमवाधिषु कालिकसम्बन्धेनावृक्तित्वेऽपि कालिक-सम्बन्धेन हेलिधिकरणे महाकाले तेनैव सम्बन्धेन वृक्तित्वेन च नातित्याप्तिः, श्रतएव पृथिवीत्वपर्यम्तानुधावनम् । प्रथमदले हेतु-तावच्छेदकसम्बन्धेनित्यस्य व्यावृक्तिमाह, द्रव्यत्वादेश्वेति । एतत्पदा-दाने द्रव्य सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वसमवाधिन महाकालेऽपि सम्बन्ध-सामान्धेनावक्तमानस्य तादृश्यसमानाधिकरण्याभाववन्त्वादित-व्याप्तिः । तहाने च द्रव्यत्वसमवाधिनि काले समवेतत्वाभाव-वति गुण्यत्वादौ सत्त्वसमवाधिगुणसमवेतत्वसन्त्वात् नातिव्याप्तिः । सन्ते हेतावन्यदादाय नच्चणगमनं गुण्यते तु स्वमादायाऽपि तत् इति, विक्षस्य गुण्यत्वस्थानन्तराभिधानिमिति ।

हेतु समानाधिकरणाभावित्यस्य सम्बन्धव्यावृक्तिमाह, न वित्यादि। स्रन्दलादेरिति वृक्तावित्यनेनान्वितं समवायेनेत्यपि तथैव। तथाचायं विक्रमान् एतद्रूपादित्यत्न विक्रसंयोगिन्यसम-वेतं कालपरिमाणं स्पन्दल्ख, तत्न दितीयदले प्रथमहेतुतावच्छे-दक्तसम्बन्धादाने तद्रूपस्याधिकरणं महाकालः स्पन्दश्चेति। तत् समवेतत्वं तदुभयोरेवित्यव्याप्तिप्रसिक्तः तद्दाने च समवायेन तद-धिकरणे पर्वेतादौ सुतरां तदभाव दति, यद्दा समवायेन वृक्ता-वित्युक्तरान्वितं वृक्तावित्यत्न च समवायेन पूर्व्ववहक्तिबेध्या, तथा चरमहेतुतावच्छेदकसम्बन्धादाने विक्रसंयोगिसमवेतत्वाभाव- कालपरिमाणस्यन्दत्वादेः समवायेन तद्धिकरणे घटादे: संयोगेन इत्ताविष चातिप्रसङ्गः । सम्बन्धविशे-षेण व्याप्यत्वलाभाय साधिकरणत्विमिखा इः तिच्चन्यम् ।

वती घटारे: समवायेन रूपविशेषाधिकरणे पर्व्वतादी संयोगेन वृत्तावव्याप्तिप्रसित्तः। तत्पददाने च समवायेन वृत्त्यभावो वर्त्तत एवेति भावः, न च स्पन्दावच्छिन्नकालस्यैव खण्डकाल-लात सम्दमातस्य कयं तदधिकरणलं इति वाचं सम्दाव-च्छित्रकालस्य कालावच्छित्रसम्दस्य चाधिकरण्तायां विनि-गमनाविरहेन तद्भयाधिकरणतायामेव विश्वामात्, व्यावर्त्तक-लेन चालन्तावस्रकलेन सन्दादेरेवाधिकरणलस्याङ्गीकर्तुमुचित-लाच । कालिसिडिस्त प्रमाणान्तरेणैविति भाव:, ननु तावतैव सर्व्व-सामञ्जस्ये स्वाधिकरणपटं व्यर्थमेव न च साधने सामानाधिक-रखन्नानस्य हेतुलनाभावें तदिति मित्रैरुक्तमेव सम्यगिति वाचं एवमपि बच्चे वैयर्थस्य दुर्निवारत्वात् इत्यभिप्रेत्याह्न, सम्बन्धविश-षेणेति, तिचन्यमिति इदमेतद्रूपभिन्नं गुणलादित्यादी विशे-षणताविशेषेण साध्यवति तद्रूपभिन्ने समवायेन यन वर्त्तते तन वर्त्तत पव कुतापि इत्यतियाप्तिरेव सम्बन्धान्तरेणापि घटभिनं ज्ञानात् इत्यतापि । त्रतेदं चिन्त्यं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्य-वित पूर्व्वोत्तरीत्या विशेषणताविशेषेण यन वर्त्तते तद्वेतुताव-च्छेदकसम्बन्धेन हेलधिकरणे विशेषणताविशेषेण न वर्त्तिष्यते इख्नौ तु नायं दोष इति।

ययाश्रतं ययासम्भवं विकल्पा दूषयति नेलादि।
ननु अप्रतियोगिपदेन प्रतियोगितानवक्केदकाविक्तः
वक्तव्यम् अत आह द्रव्यलादेगिति। प्रतियोगिविगेधित्वं तद्धिकरणादृत्तित्वं, व्यायदृत्तित्वं स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, अधिकरणेति। तथासत्यभाव एव न सिध्येदिति भावः। संयोगाद्यभावस्य
द्रव्ये प्रतियोगिसामानाधिकरण्यम्, अव्याप्यद्वत्तित्वञ्च
प्रतियोग्यधिकरणीभृतद्रव्यद्वत्तित्वं, स्वाधिकरणीभृतद्रव्यनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, गुणे च प्रतियोग्य-

ननु स्वविवचायां मूलोक्तरोषासङ्गतिरित्यत श्राह, यथा-श्रुतिमित। यथा सम्भविमिति यत्र विकल्पे यद्वटते तत्र तथे-त्यर्थः, तेन तदिधकरणानिधकरणतस्य केवलान्वियिनि प्रसिद्धाविष न चितः तथासतोति नानाधिकरणानां ताद्यग्रं नास्तौति बुद्धि-नियामकत्वकल्पनमपेच्य लाघवादेकताभावः कल्पाते श्रुधिकरण-भेदेनाभावभेदे तु श्रुधिकरणसमसंख्याभावकल्पनमिति श्रुति-रिक्तत्वकल्पनच्चेति महत्रौरवमेवेति भावः।

ननु प्रतियोगिसामानाधिकरण्यासामानाधिकरण्यादिविक्ड-धर्माध्यास एवाभावभेदको ऽस्तित्यत चाह, संयोगाद्यभाव-स्येति। प्रतियोगीति चन द्रव्यपदं स्वरूपकथनपरम्। यद्वा एतमते प्रतियोग्यधिकरण्यक्तित्वस्य व्याप्यवृत्तित्वाहुणेऽपि तस- नापि साधनविद्यास्योन्यासावाप्रतियोगिसाध्य-वत्कत्वं व्याप्तिः, मूले हृचः कपिसंयोगवाद्वेत्ववाधित-प्रतीतेः तदन्योन्याभावस्यापि तत्र सत्त्वात्। न चैवं भेदाभेदः चवच्छेदकभेदेन तत्सत्त्वास्यपगमात्। साध-नविद्यास्योन्यासावाप्रतियोगिसाध्यवद्यस्येतिषष्ठ्यर्थ--व्याप्यव्यापकसावानिक्षपणात् साध्यसाधनयोः व्याप्ति-

सामानाधिकरण्यं व्याप्यवृत्तित्वञ्च, प्रतियोग्यनधिकर-णीसृतगुणवृत्तित्वं, स्वाधिकरणीभृतगुणनिष्ठात्यन्ताभा-वाप्रतियोगित्वं, एतानि च न भेदकानि श्वविरोधात्, सामान्यतश्चाव्याप्यवृत्ती प्रतियोगिसमानाधिकरणे च न तथाव्यतिरेक इति भावः ॥ २॥

ननु साध्यवान् यस्थेति साध्यवति सम्बन्धोऽन्वेष्ठव्यः स चाधिकरणत्वं साध्यसामान्ययोरिप सामानाधि-

खेन तत्रापि तदापदोतिति तदारणाय द्रव्येति तथाच द्रव्याव-च्छेदेनैवेत्यर्थः, एवमग्रेऽपि द्रव्येति अव्याप्यवृत्तित्वस्य निक्तेः स्वाधिकरणेति अत्र गुणपदादाने स्वाधिकरणोभूतवृत्त्यन्ताभावा-प्रतियोगित्वस्य सामान्याभावक्षपत्या ताद्यप्रद्रव्यवृत्तिप्रक्तता-भावे सस्भव द्रति तत्पदसुक्तम्॥ २॥

स चैति खन्योत्याभाव गर्भलचण पचे, ऋत्यन्ताभावलचण्-

निरूप्यत्वात् विज्ञमत्पर्वतस्य धूमवन्महानसिनिष्ठान्यो-न्याभावप्रतियोगित्वाच्च, विशेषाभावकूटादेवाभावव्यव-हारोपपच्यो सामान्याभावे मानाभावात्॥ ३॥

करण्यमेव द्रयतो दूषणान्तरमाह साध्येति। साध्यत-साधनत्वे व्याप्तिप्रतियोगित्वाप्रतियोगित्वे यत्तद्वामेव व्याप्तिर्द्वितेक्तव्या द्रयत याह विद्वमदिति। ननु यत् समानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावक्केदकं यदू-पावक्किन्नं न भवति तदूपाविक्किन्नेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यर्थः। न च धूमसमा-नाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावक्केदकवित्रत्वाव-किन्नो विद्वः, धूमवान् विद्वमान्नेत्यप्रतीतेरत याह विशेषिति।

मिभिप्रत्याह, साध्येति। तत्र हि त्रप्रतियोगिना साध्येन समं सामानाधिकरण्यमेव सम्बन्ध दति ध्येयम्।

ननु साध्यतं सिंडिविषयतं साधनत्वच, सिंडि करणतं तत्कयं मृलोक्तात्मात्रय द्रत्यत ग्राह, साध्यत्यसाधनत्वे द्रति । विक्कता-विच्छित्रो विक्किरिति न च तत्तदक्केरेव विक्कित्वाविच्छित्रतया तस्य-चान्योभावप्रतियोगितावच्छेदकतयेदससङ्गतिमिति वाच्यम्। परम्परया यादृशधर्मस्यानवच्छेदकत्वं द्रति सिडान्तलच्चे वच-

नापि साधनसमानाधिकरणयावडमीनिक्षित-वैयधिकरण्यानधिकरणसाध्यसामानाधिकरण्यं साधन-समानाधिकरणस्य प्रमेयत्वादेः वैयधिकरण्याप्रसिद्धेः।

य एव प्रत्येकं विक्रमिक्षेदाः धूमसमानाधिकरणाः त एव चैकाधिकरणवृत्तित्वाविक्छिन्नाः विक्रमत्सामान्य-भेदवुिं जनयन्ति तत्प्रतियोगितावक्छेदकविक्रत्वाव-क्छिन्नोविक्करिति भवत्यव्याप्तिः ॥ ३॥

साधनिति वैयधिकरण्यं तदनधिकरणवृत्तित्वं तच केवलाद्गयिनः साधनस्थाप्रसिष्ठं त्रतिप्रसञ्जकञ्च,

मानरीत्या विवचणादिति भावः। परम्परया ताद्यधर्मात एव तथैव उपष्टभाकप्रतीतिमाइ, धूमवानिति। विशेषेतीत्य-नन्तरं तथाच पूरणीयम्॥ ३॥

प्रमियलादेरिति मूलमनुरुम्थान श्राह्न, वैयधिकरण्यमिति। पृथिवीत्यादि द्रव्यलानधिकरणाधिकरणलस्य पृथिवीले ऽसलात् इति भावः।

भूमवान् वक्नेरित्यत तु कदाचिदयोगोलकीयवक्नानिध-करणाधिकरणत्वं भूमे वक्तेत इति श्रखण्डहेतुत्वानुसरणम्। भर्मेपदन्तु मूलोक्तं खरूपकथनपरमेविति।

यद्यपौत्यादि। द्रव्यं प्रथिवीत्वादित्यन मात्रपदे दत्तेऽपि दूषणा-न्तरमाइ, तदनधिकरणेति। तत्साधनसमानाधिकरणं घटत्वादि, महानसादी समवायितया विक्विक्किमतोरख-न्तान्योन्याभावयोः सत्त्वात् धूमादावप्युक्तलचणा-भावाच । त्रयानीपाधिकः सम्बन्धो व्याप्तिः उपाधिश्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकः, व्यापकत्वन्तु तिक्विष्ठात्यन्तभावाप्रतियोगित्वं व्यभिचारे चावश्यम्-पाधिः, प्रतियोगित्वं न विरोधित्वम् ।

पृथिवी द्रव्यलादिखादी, श्रतः समानाधिकरणपदी-पादानं, धूमादेरपि न वङ्गादिसमानाधिकरण-द्रव्य-लाद्यनिधकरणवृत्तित्वम श्रतीयावदिति।

यद्यपि पृथिवीत्वादिसमानाधिकरणघटत्वपट-त्वाद्यनिधकरणवृत्तित्वं द्रव्यत्वादेस्तदनिधकरणमात-वृत्तित्वञ्च निखिलघटपटादिरूपाणां, तथापि ताद्दश-धर्मानिधकरणमाचवृत्तित्वानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदक-वन्त्वं बोध्यं, न हि पृथिवीत्वसमानाधिकरणस्तादृशः

निखिनेत्यादि, रूपवान् पृथिवीत्वादित्यत बोध्यं, रूपस्य प्रतिय-तिभिन्नत्वात्, ताहग्रेति, साधनसमानाधिकरणेत्यर्थः । नहीत्यादि पृथिवीत्वादिसमानाधिकरणधर्मस्य सर्व्वस्यैवाधिकरणे रूपं तत्र च रूपत्वस्यापि हत्तावतस्ताहग्रधर्मानिधकरणमात्रहत्तित्वावच्छे-दक्तत्वं तस्य व्याह्यतमिति । कश्चिदेको धस्मी यदनिधकरणमावहित्ततानवक्छेदकं रूपत्वादि, धूमत्वादिकन्तु वङ्ग्रादिसमानाधिकरणायो-गोलकत्वाद्यनिधकरणमाचवृत्तितावक्छेदकं, तदवक्छे-दक्तत्वञ्च तदनितिक्तवृत्तित्वं तच्च तक्कृन्यधर्मावृत्तित्वं, तेन मेयत्वसमानाधिकरणगुणत्वाद्यनिधकरण-माचवित्ततानिधकरणगगनादिवृत्तित्वेऽपि द्रव्यत्वस्य द्रव्यसाधकमेयत्वेनातिप्रसङ्गः वस्तुतस्तु तादृशधस्मीनिध-

नन्ववच्छेदकलमनितित्तहित्तलं तथाच द्रव्यवान् मेयलादित्यत द्रव्यवस्य मेयलममानाधिकरणगुणलाद्यनिधकरणमात्नहित्यत द्रव्यवस्य मेयलममानाधिकरणगुणलाद्यनिधकरणमात्नहित्यत द्रव्यवस्य मेयलममानाधिकरणगुणलाद्यनिधकरणे हित्तिलहित्यावच्छेदकलं न सम्भवित, ताद्यग्रहित्तिलानिधकरणे हित्तिलसामान्यामाववित गगनादी सलात् तथाचानवच्छेदकलमित्यितिव्याप्तिरतस्तिववित तचिति, तथाच तद्यग्रहित्तिलामाववित धम्मेंउहित्तिलमेव वक्तव्यं, गगनस्य तु धम्मेंलमेव नास्ति धम्मेंक्पाणि
यानि यानि द्रव्याणि तानि गुणलानिधकरणमात्रहत्तीन्येवित
भावः। एतदेव विग्रदयित, तेनित्यादि। ननु सत्ताद्रव्यलोभयवान् जातिमत्वादित्यादी उभयलस्य सत्ताहित्तितया सत्तायास्य
ताद्रग्रधम्मोनिधकरणमात्रहत्तिलग्र्व्यतया ताद्रग्रहत्तिलग्र्व्याहत्तिलक्ष्यमवच्छेदकलं व्याहतमेविति ग्रतिव्याप्तिरत ग्राह, वसुतस्लिति। स्मवच्छेदकलंनाभिमतं तथाचीभयलाविच्छन्नाधिकरणताया द्रव्यमानहत्तिलेन द्रव्यस्य च ताद्रग्रधम्मोनिधकर-

सहानवस्थाननियमलचणं गोत्वाख्वत्योरतथात्वात् अवान्योन्याभावप्रतियोगिन्यसत्वाच ॥ ४ ॥

करणमावर्शत्तस्वाविक्तन्नाधिकरणताकत्वं तदवक्केद-कत्वं वाच्यं तेन सत्ताद्रव्यत्वोभयवान् गुणान्यत्ववि-शिष्टसत्तावान् वा जातिमत्त्वादित्यादौ नातिप्रसङ्गः सत्तायाः गुणत्वाभाववन्मावर्षत्तित्वविरहेऽपि उभय-त्वाद्यविक्तन्नाधिकरणतायाः गुणत्वाभाववन्मावर्षत्ति-त्वात्। प्रमेयत्वादेरिति।

ननु व्यतिरेकित्वेन धर्मी विशेषणीय:, वस्तुतस्तु यावत्पदं तादृशस्य कस्यापि न वैयधिकरण्यावच्छे-दक्षमेतावन्मात्रस्फोरणाय, तथाच साधनसमानाधिक-

णलात्रातिव्याप्तिरिति। मात्रपदञ्च, द्रव्य पृथिवीत्वादित्यत्र पृथिवीत्वसमानाधिकरणघटलादेरनिधकरणवित्तिरेव द्रव्यललाविष्टित्र-द्रव्याधिकरणतेत्यतिव्याप्तिवारणाय, एतदेव स्पष्टति, तेनेत्यादि। नतु ताद्यवित्तताश्र्न्यधम्भैपर्याप्तकलमेव वक्तव्यं उभयलस्य सल-वृत्तिलेऽपि तदपर्याप्तलादिति नातिव्याप्तिरित्यतः स्थलान्तरमाह, गुणान्यलेति। श्रव च विशिष्टवृत्तिधम्भस्य विशिष्ये पर्याप्तल-स्वीकारात् इति ध्येयम्। प्रमेयलादेरितीति। एतद्दूषणरचणायैव तदनिधकरणाधिकरणलमुक्तमिति भावः।

विशेषणदानप्रयासादाइ, वसुतस्त्वित्यादि । तादृशस्येति साध-

रणधर्मानिक्षितवैयधिकारण्यावक्छेदकं यद्यत्ति द्वधर्मा-वता यावत्ताहणावक्छेदकत्वश्रन्यधर्मावता वा समं सामानाधिकारण्यमिति पर्य्यवसितं ज्ञतो दोषान्तरमाह महानसादाविति । तथाच तदनधिकरणत्वं तदभावा-धिकरणत्वं तद्विद्वत्वं वा द्वयमि दुष्टमित्यर्थः ।

एतेन तद्धिकरणाष्ट्रतित्वमच वैयधिकरण्यमिति

नसमानाधिकरणस्थेत्यर्थः । तथाचेत्यादि । वैयधिकरण्यावच्छेदक-स्येव यावत्वविवचणात् न प्रमेयत्वमादायाप्रसिष्ठः, वैयधिकरण्यस्य सम्बन्धभेदिभिन्नतया सामान्याभावासम्भवात् तदभावकूटमाविष्क-र्त्तुमाहः, यावदिति । निन्वदं सत्तावज्ञातिमत्त्वादित्यत्व सत्तात्वस्य गुणकर्मान्यत्वविश्रष्टसत्तात्वाभिन्नतया तस्य च ताद्यशावच्छेदक-त्वेनाव्याप्तिरित्यत् याहः, यावत्ताद्ययित । तथाच ताद्यशावच्छेदक-त्वस्य गुणकर्मान्यसत्तात्वपर्याप्ततया ग्रहसत्तात्वे तस्याभाव इति मृतसङ्गमनाय विकल्पयति, तथाचेत्यादि । साधनसमानाधिकरण्धमस्य साध्यस्य समवाय सम्बन्धण तदभाववित तिङ्कत्वे च पर्व्वतादौ तस्यवे संयोगेन हत्तित्वसत्वात्, साधनसमानाधिकरण्धम्माववद्गत्तिः तिङ्कत्वाद्वत्तित्वच्च वैयधिकरण्यं दृष्टमित्यर्थः, तथाच पूर्व्वाखरसेनेव ग्रस्थावतार इति भावः ।

नन्वसु मूलं विक्डं, तदिधिकरणानिधिकरणत्वरूपवैयिधिक-रखाविवचणादेव लचणं सुस्थमित्यत ग्राह, एतेनेति। महान- निरस्तं, समवायितया महानसवृत्तित्वं वक्की नास्ती-तिप्रतीतेर्वक्रगादेरिप तादृश्वैयधिकरण्याधिकरण्वा-त्मस्वस्थविशेषेण वैयधिकरण्यविवचायान्तु नोक्तदोष इति ध्येयम्।

उपाधिपदस्य साध्यसमयाप्तवचनतया त्रात्मा-श्रयप्रसङ्गादाः साध्यव्यापकेति । व्यापकत्वं व्याप्तिनि-रूपकत्वमात्माश्रयादिग्रस्तमत श्राः तद्दिष्टिति । यत्रो-पाधिरव्याष्यद्वत्तिनीनाव्यक्तिरेको वा तत्रापि व्याप्य-

सादावित्यादिदोषेणेत्यर्थः। एतदेव योजयति, समवायित-येत्यादि।

सम्बन्धविशेषेणिति। येन सम्बन्धेन धर्मस्य हैलिधिकरणहित्तत्वं तेन तदिधिकरणे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनाहित्तित्वविवद्याया-मित्यर्थः। यदा हैतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेलिधिकरणे विशेषण-ताविशेषेण यद्वर्तते विशेषणता विशेषेण तत्त्वदिधकरणे साध्य-तावच्छेदकसम्बन्धेनाहित्तित्विमिति।

समज्यासेत्यादि । व्याप्तिसामान्यनिरूपणमभिप्रेत्याकाश्वयो वोध्यः, श्रन्थया विक्वधूमव्याप्तिनिरूपणे तदप्रविशात् तदनापत्तेरिति एवमुत्तरत्नापि श्रतएव तचादिपदमपि । यथाश्वतलच्चणं रचितु-माइ, यत्नेति । द्रव्यं सत्नादित्यत्न संयोगस्य उपाधिलच्चणागमनं प्रकृति विरुद्धं न हि मथेदंस्वतप्रमुपाधिलच्चणं क्रियते किन्तु श्रनौ- वृत्तिरखण्डस सन्ततस्तद्विद्वात्वप्रकारकप्रमाविषयत्वा-भावादिरेवास्ति। यदि च तस्यापि विशेषणान्तरविशि-ष्टस्य दित्वाद्यविक्तित्रस्य वा तत्वाभावसम्भवस्तदा साध्य-समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवक्केदकीभूत-साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावक्केदक-धर्मवक्त्वं दलद्वयार्थौ बोध्यः।

पाधिकलरूपव्याप्तिघटकतयेति येन तस्याव्याप्तिराशक्षेत्रत इति कदा-चित्तत्त्वचणे प्रतियोगिव्यधिकरणपदप्रचेपमभिप्रेत्याइ, नानेति। श्राखण्डः सर्व्यसाध्यवद्वत्तिरेकः तथाच साध्यवदन्तरनिष्ठाभावप्रति-योगित्वं तस्य नास्तीति । सर्वेत्र एकजातीयसम्बन्धमभिप्रेत्याइ, श्रान्तत इति, तद्ददिति । साध्यवदित्यर्थः ।

नमु साध्यवत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वमेव तथाविधं वर्त्तते इत्यलं,
ताद्यमाभावप्रयन्तानुधावनेन इति चेन्न, सम्प्रदायमते विषयतायाः
स्वरूपसम्बन्धात्मिकायाः प्रतिव्यक्तिभिन्नाया ऐक्याभावात् । अभावीयविश्विषणताविशेषित्रिष्टच्या तदित्यपि कश्चित् । नमु विशेषणान्तरस्य विशेष्यापेच्या अन्यत्वमते विशेष्यस्य न तदभावप्रतियोगित्वमित्यत आह, दिलाद्यवच्छिन्नस्य चेति । यदिकारस्य
कृप्ताभावस्यैव दिलावच्छिन्नाभाववादिनमभिष्रेत्य, तदेत्यादि
स्रत्नाप्यनवच्छेदकालं याद्यप्रकारतया ताद्यप्रकारतयैव तथावच्छेदकालं ग्राह्यं तेन सदेतौ श्रद्धस्यानवच्छेदकस्यापि किञ्चिद्वित्तः

श्रनवस्थां निरिसतुमाइ प्रतियोगित्वमिति सहिति। एकदेशकालावक्छेदेनेति पूरणीयं तेन नाव्याप्यवृत्तेर-भावस्य प्रागभावादेश्व प्रतियोगितायामव्याप्तिः।

यवान्योऽन्येति। यव समवायादिसम्बन्धाविक्तिन्त्रपतियोगिताकाभाववित महानसादौ संयोगादिना वद्मादेवृत्तेः। येन सम्बन्धेनाभावस्तदित तेनावृत्तिर्व-त्रत्या, द्रव्यञ्च तेन सम्बन्धेनासम्बद्धत्वोत्तौ नायं दोषः। यन्योन्याभावस्य तादात्मासम्बन्धाविक्तन्नप्रतियोगिता-कतया तदित तेन सम्बन्धेन प्रतियोगिनो यधिकरणे-ऽसम्बद्धत्वात् परन्तु समवायेन सत्ताया यभावस्य प्रतियोगितामव्याप्तिः तदित समवायेन वत्तेरप्रसिद्धेः ता-दृश समझन्धस्याधिकरणावृत्तितत्कत्वमित्यभिधाने च

विविश्यतयाऽवच्छेदकालेऽपि न चितिः, श्रनवस्थामिति प्रतियोगि-लस्य सहानवस्थानियमलचणतया तस्य च नियमान्तरप्रविष्ट-तया श्रनवस्थेत्यर्थः। क्रमेण पुरणीयस्य व्यावृत्तिमाह, तेने-त्यादि।

वत्तव्येति तत्सम्बन्धाविक्तित्राभावविति तेन सम्बन्धेनावित्तः
प्रतियोगिनो वत्तव्या इति भावः । तथापि तादात्मासम्बन्धाविक्तःवान्धोन्याभावविति तादात्मेग्रन हत्तेरप्रसिद्धेः श्रवृत्तित्वमप्रसिद्धम

किन्तु यथाधिकरणाभावयोः खरूपविश्रेषः सम्बन्धः तथा प्रतियोगित्वमनुयोगित्वमपि, अभावविरहात्मत्वं वेति चेत् यत्किञ्चित्साध्यव्यापकसाधनाव्यापकधर्भ-निषेधो न धूमादौ प्रक्ततसाध्यव्यापकसाधनाव्यापक-धर्मस्य सिडासिडिभ्यां न निषेडुं शक्यः यावत्साध्य-व्यापके प्रमेयत्वादौ साधनाव्यापकत्वं यावत्साधना-

व्यधिकरणसम्बन्धाविक्तिन्नाभावप्रतियोगितायामव्याप्तिः सिज्ञान्तलचणवच्यमाणरीत्या च खग्डशः प्रसिज्ञा तत्परिहारोऽपि द्रति ध्येयम्॥४॥

द्यात याह, इयच्चित । तथाचाहित्तित्वमित्यत्नामम्बद्धति । तहतीति-द्यायुद्वारः । एतदेव स्पष्टयित, यन्योन्याभावस्थेति । तहतीति-समवायसम्बन्धाविच्छन्नसत्ताभाववित इत्यर्थः । तच्छव्देन ताह्या-भावोत्तेः, तच जात्यादिरूपमेवेति तत्समवेतत्वस्याप्रसिद्धिः । ताह्यितिप्रतियोगितावच्छेदनसम्बन्धेन प्रतियोगिसम्बन्धियदिष-करणं तद्वत्तितत्वत्वसित्यर्थः, तच्छव्देन ताह्याभाव उत्तः । व्यधिकरणेति । संयोगसम्बन्धाविच्छन्नजात्यभावस्य संयोगसम्बन्धा-विच्छन्नजात्यधिकरणावृत्तित्वे प्रास्त्रे संयोगसम्बन्धाविच्छन्नजात्य-धिकरणत्वमेवाप्रसिद्धमिति । सिद्धान्तत्वचणेति । सर्व्येषु संयोगिषु जातिप्रतियोगिकत्व-तदभावाधिकरणात्र्योगिकत्व-सामान्योभया-भाव इति रौतर्वच्यमानतयेत्यर्थः ॥ ॥ व्यापके च घटत्वारों साध्यव्यापकतं निषिध्यत द्रित चेद्र व्यधिकरणत्वात्, यावत्साधनाव्यापकमव्यापकं तत्साध्यस्य, यावत्साध्यव्यापकं व्यापकं वा यस्य तत्त्वं तिहिति चेद्र सीपाधिरिप तथात्वात्॥ ५॥

श्रभाविवरहात्मत्विमिति। न चान्योन्याभावप्रति-योगितावच्छेदक्योरप्रसत्त्यातिप्रसत्ती च प्रक्रतीप-योगितामाचस्य लच्चणत्वे तु लच्चणिऽत्यन्ताभावपद-वैयर्थ्यम्। सर्व्वव नित्यस्य नित्यसाधारणह्रपस्य वोपाधि-

अप्रसितः अन्योन्याभावप्रतियोगिण तस्यान्योन्याभावाभावान्य क्षात्रावात् । अतिप्रसित्सस्त्रस्वावच्छेदके तस्य तदाक्षकत्वादिति । प्रक्षति । व्यापकत्वोपयोगिप्रतियोगितामात्रस्थेल्य । मात्रपदेनान्योन्याभावप्रतियोगिता प्रतिचिप्ताः तथाचेदं पर्यवसन्नं तद्ददृत्तिको योऽत्यन्ताभावस्तदभावरूपत्वं यस्त्रतियोगित्वं तदमान्यो यत्र तद्द्रापकमित्यर्थः । वैयर्थमिति । भूमवति वर्त्तते योऽन्योन्याभाव आद्रंश्वनस्य तदभावाभावरूपत्वमाद्रंश्वनस्य नास्त्रोति अन्योन्याभाववारकात्यन्ताभावपदं निर्थकमिति । न चात्यन्तपदस्यव वैयर्थे अभावपदपर्थम्तं किमर्थमिति वाच्यं तद्दिष्ठाप्रतियोगित्व-मित्यस्य निर्वतस्य सामञ्जस्यादिति । नन्यवं धूमव्यापकत्वमाद्रंश्वन्यनादावसम्भविधूमविष्ठस्य प्रागभावादेरभावरूपत्वादाद्रस्थन-स्थेत्यत्र आह, सर्व्ववेति । अत्रायोगोन्यकान्यत्वादेरेवोपाधित्वं आर्द्रं-

सक्भवात्तक्षेदप्रतियोगितावारणाय संसर्गाभावपरतया तस्य सार्थकत्वात् द्रति वाच्यम् । विरहपदस्य तज्-

न्धनादेरनुपाधिलन्तु संयोगानुपाधिलवद्याप्तिनचणे न दोषकर-मिति, ननु तद्द्राप्यार्ट्रेन्धनादीनामुपाधित्वव्यवचारस्तान्त्रिकानां अभिप्रेत इत्यत आह, नित्यसाधारणेति, तथाचार्द्रेश्वनादेरपि श्रयोगोलकान्यलायन्यान्यलेनैवोपाधिता न चार्द्रेश्वनलमेव प्राग-भावप्रतियोगितानवच्छेदकमिति तेनैव रूपेणानुपाधित्वसम्भवे किमेतावस्रितवसेनेति वाचं तादृशप्रागभावप्रतियोगितालेनानु-गतीक्षतप्रतियोगितानतिरिक्षवृत्तित्वेन तेषां विवादग्रस्तत्वात्रिः त्यसाधार् ख्विवचणे त्वविवादादिति इतर्याभेदप्रतियोगितासाधा-रणनिरूपणे। निवदमसङ्गतं त्राद्रेश्वनादीनां दर्भितनित्य-साधारण्रूपादिसलेन भेदप्रतियोगिलेऽपि त्रयोगोलकावृत्तिलादि-रूपेण उपाधित्वस्य दुर्वारतादिति। तदवच्छित्रभेदस्य धृमवत्यसमा-वात्, धूमवित्रष्ठाभावसामान्यप्रतियोगितानवच्छेदकलं विज्ञम-विष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकालं च तत्राचुसमिति क प्रक्तत-व्याप्तिलचणे दोष:, येन तदर्थमत्यन्ताभावपदं सार्थकामिति चेन्न, एतस्य रूपान्तरेणापि उपाधिलयवस्थापनतात्पर्यवालात् पर्व्वतो विज्ञमान् धूमवदवयवधूमवदन्यतरत्वादित्यत्र धूमवित धूमवदव-यवाहित्तिभेदस्य सुलभलाचेति श्रव गोलभेदिभिन्नलं साध्यं, भैयलं हितुः तत्र यावन्त उपाधयः सन्भवन्ति तावतां भेदो गोलभेदे वर्त्तते स चाभावमानाधिकरणकलेन तत्सक्पतया साध्यविष्ठभेदप्रति-

स्नानप्रतिबश्वकद्मानिववयार्थकत्वात्। प्रतिवधाति हि तादात्मेत्रन प्रतियोगित्तानसन्योग्याभाववुद्धं प्रति-बश्चकत्वद्वात्र एककालावच्छेदेन एकचावर्त्तमाणत्वम् स्रभावपदस्य स्वाभावपरत्वात्। वस्तुतस्त्वेकसम्बश्चाव-च्छिद्वायास्तत्यमानाधिकरणाभायप्रतियोगिताया सन-

योगिलं सर्वेषासुपाधीनासिति, श्रत्यक्तपदं श्रत्यक्ताभावलिन-रूपकप्रतियोगितालाभायेति नथाः। समानप्रकारकमेव श्राने प्रतिवन्धकिमात्यभिप्रत्याह, विरहित्यादि। प्राचीनमते प्रतियोगि-तावच्छेकविधिष्टप्रतियोगिज्ञानस्य प्रतिवन्धकलेऽपि समानप्रकार-कलवादिनो मते तादालेगन प्रतियोगिज्ञानमेव प्रतिवन्धक-मिति भावः।

प्रतियोगिज्ञानिसिति। तादाक्ये प्रनित्यर्थः। ननु प्रतिवन्धकः व कारणीभूताभावप्रतियोगित्वं तचाक्षात्रयादिग्रस्तं इत्यत ग्राह, प्रतिवन्धकत्वचिति। घटज्ञानतदभावज्ञानयोरेक त्रावर्णमानत्वभस-भवग्रस्तिमत्यत ग्राह, एककालावच्छे देनेति। एककालावच्छे दे-नेत्याद्यपि तथैव इत्यत ग्राह, एकत्रावर्णमानत्विमिति।

ननु घटाभावज्ञानेन ससं यस्याङ्गुरस्य ज्ञानमेककालावच्छे हे-नैकत्रास्मिन न जातं तनाङ्गुरे घटाभावप्रतियोगित्वापित्तरेवं घटलेऽपि तदापित्तः, घटान्योन्याभावधीविरोधिधीविषयत्वा-दित्यत श्राह, श्रभावपदस्थेति। तथाच स्वाभावज्ञानप्रतिवन्धकज्ञान-विषयत्विमिति चच्चणार्थः। वच्चमाणास्वरसादाह, वस्तुतस्थिति। वक्छेदकमि भवखेव सम्बन्धान्तराविक्कित्रायाः तस्या अवक्छेदकम्। अतो यत्सम्बन्धाविक्कित्रायाः साध्य-समानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया अनवक्छेदकं तत्-सम्बन्धाविक्कित्राया एव साधनसमानाधिकरणाभाव-प्रतियोगिताया अवक्छेदकं तदाच्यम्।

तथाच संसर्गाभावत्वमनुपादेयमेव वाशब्दोऽचाख-रससूचनाय, स च व्यधिकरणसम्बन्धेन सर्व्वस्य प्रति-योगिनसादृशभमे मानाभावात्। स्वाभावसम्बन्धित्वस्य स्वाभावन्नानविषयत्वस्य वा लघोः सर्व्वत समावित्वात्,

तमेवोद्वाटयित, सम्बन्धेत्यादि । विक्रमान् धूमादित्यादी द्रव्यतस्य समवायसम्बन्धेन प्रतियोगितानवच्छेदकीभूतस्यापि धूमवित्रष्ठ-संयोगसम्बन्धाविच्छिनताद्यप्रतियोगितावच्छेदकत्वमित्याद्युनेयम्, यसम्बन्धेनेत्यादि, तथाच धूमाधिकरणीयसमवायसम्बन्धाविच्छ-न्नाभावप्रतियोगित्वं तत्र नास्तीतिभावः । तदिति उपाधित्व-मित्यर्थः ।

तथाचिति इत्यमन्योन्याभावमादाय नातिप्रसङ्गन्योऽपि स चेति श्रस्तरस इत्यर्थः । व्यधिकरणेति । तेन सम्बन्धेन प्रति-योगिनो भ्रमाभावेन ज्ञानस्याभावज्ञानप्रतिवन्धकतया तादृश-प्रतियोगित्वं तत्राव्याप्तं इति भावः । स्वाभावज्ञानप्रतिवन्धकज्ञान-विषयत्वम् इत्यत्र गौरवमाविष्कुर्व्वताह, स्वाभावेत्यादि । सम्बन्धि- स्वाभावित्यादी षष्ठार्यप्रतियोगितायाः प्रविशात् । तव स्वरूपसम्बन्धस्य शरणीकरणीयतया तस्यैवावश्यकत्वेन तथात्वीचित्याच अभावत्वप्रतिबन्धकत्वयोः प्रतियोगि-ताघटितत्वात् तथाविधव्यवद्वारगोचरस्यापि विना प्रतियोगितां निर्व्वतुमशक्यत्वाच । यत्साध्यस्य यत्स-मानाधिकरणसाध्यस्य ॥ ५ ॥

लमपेच्य नाघवादाह, स्वाभावज्ञानेति । उभयत्र प्रतियोगिनिष्ठलं श्रासाद्यितं विशेषानुसरणं, लाघविमति पूर्व्वलच्चेण एतद्भया-प्रवेशात् न वैयर्थिमिति हृदयं, खाभावकालं पुनरितोऽपि लघुतर-मिति ध्येयम्। नन्वेतदेवासु प्रतियोगित्वमित्यत एतदपि दृष-यति, स्वाभावे चादि । तत्र षष्ठार्ये तथात्वी चित्यात् । ननु सम्बन्ध-मर्यादया प्रविष्टायाः प्रतियोगितायाः प्रवेशे इदं स्यच्णमविकड-मेव इत्यत श्राह्न, श्रभावलेति । खप्रतियोगिकपदार्थलमभावलमिति प्रतियोगिलस्य प्रकारतयैव प्रवेशे श्रात्मात्रय इति भाव:। ननु द्रव्यादिषट्कभिन्नत्वम् श्रभावतं विलच्चणप्रतीत्वनुरोधेन श्रखण्डो-पाधिर्वा तत्, इत्यतः प्रतिबन्धकलानुसरणम्। ननु तादृश-व्यवहारविषयलमेव तदक्तव्यमित्यत भाह, तथाविधेति। अभाव-लादिप्रकारकेलार्थः। यसाध्यस्ति त्रत्न मूले तुलाधिकरणतायां व्याप्ते हें तुनिष्ठलम् असम्भवि दत्यतो वैयधिकरणः प्रदर्भयति, यत्-समानाधिकरणीति ॥ ५ ॥

तयाहि साधनस्य वक्केरव्यापकं यावदार्द्वेश्वनं तत्रखेक्सम्यापकं साध्यधूमस्य, दितीये साध्यधूमस्य व्यापकमार्द्वेश्वनं तत् व्यापकं महानसीयवक्केः। नापि साध्यं यावदव्यभिचारि तदव्यभिचारित्वमनीपाधि-कत्वं साध्याव्यभिचारित्वस्थैव गमकत्वसस्थवात् तच दूषितम्॥ ६॥

तथाहीत्यादि। यत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रति-योगितावच्छेदकं यावत्साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-प्रतियोगितावच्छेदकम्। साध्यसमानाधिकरणात्यन्ता-भावप्रतियोगितानवच्छेदकं यावत् यत्समानाधिकर-णात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकं तत्त्विमत्यर्थे तु नोक्तदोष द्रति ध्येयम्। प्रतियोगितयोश्चेकसम्बन्धाव-च्छिन्नत्वं विश्रेषणताविशेषाविच्छन्नत्वं वा वक्तव्यम्। तेन प्रतियोगितावच्छेदकमावस्थेव यत्किञ्चित्सम्बन्धा-

तया ही त्या दीति । धूमवान् वक्के रित्यच ता द्यप्रतियोगिता-वच्छे दक्षस्य गोललस्य साध्यसमाना धिकरणात्यन्तभावप्रतियो-गितावच्छे दक्षलित्यतो यावदिति । एवम् उत्तरहापि वाच्यलल-मादाय बोध्यम् । नोक्कदोष इति मूलोक्कदोष इत्यर्थः ।

एकसम्बन्धाविष्ण्यत्रवस्य अननुगमात् आह, विशेषणतेति।

विक्तिन्नसाध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-प्रतियोगिताव-क्केंद्रकालेऽपि एकसम्बन्धाविक्वन्नसाध्यसमानाधिकर-णात्यनाभावप्रतियोगितानवक्केदकस्य सम्बन्धान्तरा-विक्तिवसाधनसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावक्हेद-कालेऽपि च न चति:। व्यभिचारिणि तु यत्राधि-करणे व्यभिचारी विशेषणताविशेषाविकादतविष्ठा-भावप्रतियोगितावच्छेदनं साध्यवच्चप्रकारकप्रमाविषय-विश्रेषणताविशेषाविष्यं वसाध्यसमानाधि-करणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकमिति नातिप्रसङ्गः। वात्तो हेतुसमानाधिकरणान्धोन्याभावप्रतियोगिता-वक्छेदकं यावद्यबन्धाविक्वन्नसमानाधिकरणान्द्योन्द्या-भावप्रतियोगितावक्केटकं तहसीविक्वनसामानाधि-

प्रतियोगितावच्छेदकमात्रस्थेति श्रत्न मात्रपदं क्रत्सार्थकं, तथाच हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं सुतरामेव तथित भावः। प्रतियोगितावच्छेदकलेऽपि इति पर्थन्तं प्रयम-लचणस्य यथोक्तविवचाव्यतिरेकेनातिव्याप्तिप्रदर्भकं, द्वितीयस्य तुन। व्यतिरेकेनाव्याप्तिं प्रदर्भयति, एकसम्बन्धेत्यादि। श्रन्यत् सुगमम्।

सम्बन्धविशेषस्य प्रवेशे गीरवादान्त, वस्तुत इति। यद्वभाव-

नापि कारक्षें न सम्बन्धे व्याप्तिः एकव्यक्तिके तदभावात्। नानाव्यक्तिकेऽपि सक्तलधूमसम्बन्धस्य प्रत्येकवज्ञावभावात्। ज्ञतएव न कारक्षें न साध्येन सम्बन्धे व्याप्तिः विषमव्याप्ते तदभावाच्च ॥ ७॥

करख्यम् । साध्यसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियो-गितानवच्छेदकं यावत् खसमानाधिकरणान्यान्याभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकं तत्त्वं वा व्याप्तिरिति ध्येयम् । साध्यमिति यावतां तेषामित्यर्थः । दूषितं केवलान्व-यिन्यव्याप्ताा, सा च यथोक्तलच्चणेऽपि गौरवं परमति-रिच्यते द्रति ॥ ६ ॥

कारक्षें। साधनस्य साध्यस्य साध्याययस्य साध्य-

च्छित्रेति साध्यतावच्छेदकाविच्छित्रेत्यर्थः, तेन सद्वेतौ हेतुसमाना-धिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकानां महानसयक्त्या-दौनां तत्साध्यसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदक-त्वेऽपि न चतिः। एवम् उत्तरतापि बोध्यम्। तुःच्याधिकरणत्वभ्यमं निराकर्त्तुमाह, यावतामिति। दूषितमिति मूलस्य हेतुं पुरयति, क्षेवलेति। ननु साध्याव्यभिचारित्वस्य तत्त्वे क्षेवलान्वयिन्यव्याप्तिरेव दोष इति, यथोक्तमेव सम्यक् इत्यत श्राह्न, सा चेति॥ ६॥

. मूलोक्तदोषान् योजयितुं मूलन्यूनतासुई र्तुच लीलावत्युक्त-

समानाधिकरणस्य साधनाश्रयस्य साधनसमानाधि-करस्य वा श्राद्ये क्रत्स्नसाधनसामानाधिकरण्यं साध्ये क्रत्स्नेषु साधनेषु साध्यसामानाधिकरण्यं वार्षः।

प्रथमे एकेति नानेति च व्याप्तेश्वाहितृ हत्तित्वम्।
पृथिवी पृथिवीत्वव्यापकजातेरित्यादावितव्याप्तिश्च अतएव नेतर:।

अर्थाभिधानपूर्व्वकं दितीयं निरस्यति, अत-

मूलोत्तलचण विकल्पयिति, कार्त्स्वरिमत्यादिना। साध्या-ययस्य दत्यादिदयञ्च पुनक्तातोद्वरणाय सकलधूमस्येत्यादिग्रय-दर्भनात् व्याप्ते: साध्यनिष्ठत्वमाविस्कर्त्तुं प्रथममेव विकल्पयित, याद्य इति।

खातन्त्रेगण दूषणमाइ, व्याप्तेरित । पृथिवीत्यादिषृथिवीत्वव्यापकानां गन्धादीनां यावतामधिकरणम् एकं न सम्भवीति
जातिपर्थ्यन्तम् श्रवापि जातित्वेन व्यापकानां यावज्ञातीनाम्
श्रिकरणं तथिति तत्त्वेन व्यापकत्वं बोध्यं, न च तथापि तेन
तेन व्यापकत्वं निरुच्य साधारणं व्यापकत्वमेव हितुरस्तु, एकसम्बस्थेन हितुत्वलाभाय तत्पदोपादानात् । श्रत्यवित । एकव्यितिसाध्यकाव्याप्तेः पृथिवीत्वादावित्याप्तेश्वेत्यर्थः । नानित्यादेव्यप्तिश्रेत्यादेश्व दोषस्य श्रिमान् कल्पेऽसभावात्, इतरः प्रथमकल्पीयदितीयः, ननु विकल्पक्रमादेव साध्येनित्यादिम् लोक्तं तत् सार्थक-

एवेति । अतएव एकव्यक्तिसाध्यकाव्याप्तिरेव, विषमव्याप्ते समव्याप्तिरिया साधने
सक्ति समव्याप्तिरिया साधने
सक्ति समव्याप्तिरिया साधने
सक्ति साध्यसम्बन्धस्थाभावात्, भावाच शब्दवान् द्रव्यत्वादित्यादौ । त्वतीये साध्याश्रययावद्दृत्तित्वं चतुर्थे
साध्यसमानाधिकरणयावत्सामानाधिकरण्यमर्थः । तच
च यथासस्भवमेकसात्व द्वत्तिसाध्यके वद्भादौ साध्ये
धूमादावव्याप्तिरितव्याप्तिश्च सत्त्वादौ ॥ ७॥

यित, त्रश्रीभिधानिति। एकव्यक्तिकसाध्यकाव्याप्तेरेव द्रत्येवकारेण नाना इत्यादिव्यवच्छेदः। विषमव्याप्ते इति। त्रयोगोलकीयविक्रमामानाधिकरण्यस्य धूमे त्रभावात् इत्यर्थः। समव्याप्तेऽिष
दूषणमाविस्कर्त्तुं न्यूनतां परिइरति, समव्याप्तेऽिष चेति। एकाधिकरणीयनानाव्यक्तिसाध्यकसमव्याप्तहेती यावलाध्यसामानाधिकरण्यस्य च हेती सत्त्वात् त्राह, संख्यापरिमाणादावित्यादि।
भावाचिति। सकलसाध्यसम्बन्धस्थत्यनेनान्वितम्। द्यतीयचतुर्थयोः
स्वोक्तयोर्दूषणं स्वयमेव पूर्यित, द्यतीय इति। यथामन्भवमिति। एकमात्रहत्तिसाध्यक्ते, साध्यसामानाधिकरण्यवज्ञलप्रसिद्धा चतुर्थदूषणासम्भवः, बद्ध्यादी तूमयोरेवाप्रसिद्धः। न
च साध्यात्र्यययावदृत्तित्वं यद्धमाविष्ठिः सस्यस्यति वाच्यम्। यावद्रव्येषु
गुणवत्यस्य सत्त्वात्, यावदित्यंग्रे सार्थकमेव, चतुर्थे प्रत्येकपददानादेव नाव्याप्तिरित्यत त्राह, सत्त्वादाविति॥०॥

न च यावत्साधनात्रयात्रितसाध्यसम्बन्धः साधनात्रये महानसादौ सक्त प्रत्येकं वक्करात्रितत्वाभावात्। नापि साधनसमानाधिकरण्यावहक्षसमानाधिकरणसाध्यसामानाधिकरण्यं यावहक्षसामानाधिकरण्यं हि यावहक्षाधिकरणाधिकरण्यं तद्याप्रसिष्ठं
साधनसमानाधिकरणसक्तकमहानसत्वाद्यधिकरणाप्रतीतेः। नापि स्वाभाविकः सम्बन्धो व्याप्तिः स्वभावजन्यत्वे तदात्रितत्वादीवा व्याप्तप्रतिव्याप्तेः॥ ८॥

श्रधेपरिष्कारपूर्व्वकं पञ्चमं निरस्यति, न चेति। एकमावहित्तसाधने चाव्याप्तिश्च तथैव षष्ठं निरस्यति, नापीति। तादृशानां सर्व्वषां महानसत्वादीनां प्रस्थेक-निरूपितान्यपि सामानाधिकरण्यानि न कुचापिवक्की। श्रथ यहकीविक्वन्नसामानाधिकरण्यत्वेन साधनसामा-नाधिकरण्यव्यापकत्वं तहकाविकीट्सामानाधिकरण्यं

कात्स्वीन सम्बन्ध इत्यस्य नचणस्य यावसाधनात्रयात्रिते । स्र्यन्ति स्त्र्वादि सूनि स्विनसार्धे कत्वात् प्राइ, स्र्येपरिष्कारिति । स्र्ये-परिष्कारपूर्वे किस्ति । स्यूनतापरिष्ठाराय स्वयं विविच्चितापि दूषयित, ताहि सित । यहस्मीविच्छि नेति । साध्यतावच्छेदकाविच्छ- स्त्रेयर्थः, तेन गुणकसाष्ट्यस्वावान् जातिसस्वात् इत्यादौ गुणत्व-

नायिवनाभावः केवलान्वयिन्यभावात्। अय सम्बन्धमाचं व्याप्तः, व्यभिचारिसम्बन्धस्यापि केन-चित् सहव्याप्तित्वात्, धूमादिव्याप्तिस्तु विशिष्येव निर्वेक्तव्येति, तद्म लिङ्गपरामर्शविषयव्याप्तिस्वरूप-निरूपणप्रसावे लच्चणाभिधानस्यार्थान्तरत्वात्। न च सम्बन्धमावं तथा तद्वोधादनुमित्यनुत्पत्तेः।

विविचितिमिति चेत् दूतोऽपि लघुतया साधनव्यापक-तावच्छेदकरूपाविच्छद्वसामानाधिकरण्यमेव व्याप्ति-रिति सिडान्तियायते॥ ८॥

श्रविनेति। साध्यं विना साध्याभाववति यो भावो हत्तिस्तदिरहः, साध्यं विना श्रभावः साध्याः भावव्यापकौभूताभावप्रतियोगित्वमिति वा।

निष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यस्य हेतुसामानाधिकरण्याच्यापकलेऽपि न चति:, साध्याभाववदृत्तिलविरहस्य पूर्व्वीकाव्यभिचारिलेना-भिन्नतया नञ्पञ्चेषेण श्रन्यं व्याचष्टे ॥८॥

साध्यं विनेति । विनेति सप्तम्यन्तमव्ययम् । सप्तम्या चावच्छे-दक्तत्वं तच्चानितिरिक्तव्यत्तित्वं, तयाच साध्याभावो यदभावानित-रिक्तवित्तिरिति लभ्यते, अविनेत्यस्य नञा पुनस्तस्याभावः प्रत्याय्यते इदमेव प्रदर्भयति, साध्याभावित्यादि । नापि व्याप्तपदप्रवित्तिनिमत्तिमदं सम्बन्धज्ञाने-ऽपि व्याप्तिपदाप्रयोगात्। क्षेत्रलान्ययिनि क्षेत्रलान्ययि-धर्मसम्बन्धो व्यतिरेकिणि साध्यवदन्यावृत्तित्वं व्याप्तिः एतयोरनुमितिविशेषजनकत्वं चनुमितिमाते पचधर्म-तैव प्रयोजिका। न चातिप्रसङ्गः विशेषसामग्रीसहि-

श्रयित। सख्यक्षः सामानाधिकरण्यं व्यभिचारि-सम्बन्धस्य केनचित्किश्चिट्रणाविक्छिने धूमादेरिष द्रव्य-त्वादिना बिद्धव्यापकत्वात्। तद्योधादिति। न च व्यभिचाराग्रहसहक्षतस्तद्योधस्तया व्यभिचारतद्यातिरे-क्योः श्रनुपस्थिताविष समानाधिकरणधर्मवत्ताज्ञान-माचादन्मित्यनुत्पादस्य सर्व्योन्भवसिद्धत्वात् हैत्व-न्तरे तनैव च क्षणान्तरेण व्यभिचारग्रहे हेतुतावक्छे-

केनिविदिति। मूलस्य व्याख्यानं किञ्चिद्र्पेति, तथाच किञ्चिद्र्पाविच्छिनेन साध्येन सहाव्यभिचारिसम्बन्धस्य व्याप्तित्वादित्यर्थः। एतदेव द्रव्यति, धूमादेरिति। अन्वयव्यभिचारस्य कस्यचित् प्रति-वस्यक्तेनाप्युपपत्तेर्व्यतिरेकव्यमिचारमाह, तत्रैविति। ननु प्रकत-हितुतावच्छेदकप्रकारेण व्यभिचारायहो वक्तव्य इत्यत आह, हिल-न्तरेऽपोति। विक्रमान् धूमादित्यादौ आलोके व्यभिचारयहेऽपि अनुमितिरित्यर्थः। ननु तद्वेतुव्यभिचारयहाभावो वक्तव्य इत्यत आह,

ताया एव सामान्यसामग्राः कार्य्यजनकत्वनियमा-दिति केचित्, तदिष न, साध्यवदन्याद्वत्तित्वस्य धूमे-ऽसत्त्वात् विद्वमत्पर्व्यतान्यस्मिन् धूमसत्त्वात्। न च सक्तलसाध्यवदन्याद्वत्तित्वं विद्वमतां प्रत्येकं तथात्वात्, सर्व्यव लच्चणे साध्यत्वसाधनत्वतदिभमतत्वानां व्याप्ति-निक्षप्यत्वेनात्माश्रयः, साध्यत्वं हि न सिडिकक्षेत्वं

दकाग्रहेऽप्यनुमिख्यादाच, विवदन्ते च सामानाधि-करण्यज्ञानस्यैव हेतुतायां, व्यभिचारज्ञानाभावकारण-त्वमपेच्य कारणीभृतसामानाधिकरण्यज्ञाने लाघवेना-व्यभिचारस्य विषयतयावच्छेदकत्वमुचितं, न च व्यभि-चारसंशयेऽनुमित्यनुत्पादादव्यभिचारनिश्चयत्वेन कार-णत्वोक्ती गौरवं, व्यभिचारज्ञानस्य हि भमत्वनिश्चय-दशायामेवाविरोधितया भमत्वेनानिश्चीयमानस्य विरो-

हेतुतावच्छेदकेति। अयं वक्त्राभाववदद्वित्तमान् इत्यादावित्यर्धः, विवदन्ते चेति। व्यापकलवादिप्रस्तयः अव्यभिचारग्रहस्यैव हेतुलं मन्यमाना इति शिषः। नन् प्रक्षतहेतुतावच्छेदकेन यत्र न व्यभि-चारग्रहः प्रसिद्धो भवति तत्र तदभावः कारणम्, अन्यत्र सामाना-धिकरण्यज्ञानमात्रमित्यतो दोषान्तरमाह, व्यभिचारेति। उचित-मिति। व्यभिचारज्ञानाभावस्य कारणतायां स्वतन्त्रज्ञानप्रवेशा- सिषाधियषाविषयत्वं वा महानसीयवक्की तदभावात्। न च सामान्यतो व्याप्तावगमीऽस्त्येव परस्य, कथ-मन्यया दूषणीनासाधकतां साधयेदिति वाच्यं स्वार्या-नुमानोपयोगिव्याप्तिस्वरूपनिरूपणं विना कथायाम-प्रविशादिति॥ ८॥ दति गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणी अनुमान-खण्डे व्याप्तिवादे पूर्व्यपच: समाप्तः।

धित्वं वाच्यम् श्रव्यभिचारिनश्चयस्य च भमत्वशङ्काया-मध्यनुमित्यजनकत्या भमत्वेनाग्रद्धमाणस्यैव, हितुत्व-मिति तवैवगौरवात् नानाविधव्यभिचारज्ञानाभावानां

बाघवेन सामानाधिकरखान एव विषयतया व्यभिचारीऽवच्छे-दक इति भावः। न वित्यादि, श्रस्माकन्तु व्यभिचारचानाभाव-त्वेनेव कारणत्विमिति हृदयम्। व्यभिचारचानस्थेत्यादि श्रयमा-श्रयः, भवतामव्यभिचारवद्विशेष्यकव्यभिचारप्रकारकत्वं व्यभिचार-ज्ञानस्य भ्रमत्वम्, एकधिमीणि च तदभावाप्रकारकतादृशप्रकार-कत्वं तद्रमवत्वस्य निषयत्वं तदिवषयीभूतव्यभिचारच्ञानाभावत्वेन हेतुत्विमिति श्रमत्वनिश्चयविषयनिश्चययोभेहातारमस्यमिति।

तवैविति। ननु तज्ज्ञानमात्रष्टक्तिनानाधर्माप्रकारक एवा-प्रमाख्यग्रहः समावित, तस्य च तावज्ज्ञानानास्कन्दितलमेव नियतपूर्व्वतित्वेन कृष्तानामि हेतुत्वमपेच्य वच्य-माणैकविधाव्यक्षिचारज्ञानस्यैव हेतुत्वं युक्तमिखप्यान्तः। सामानाधिकरण्यविशिष्टपचधर्मत्वं तु पचे साध्यग्रहं विना दुर्ग्रहमिति केवलान्वयित्वस्याग्रहे सामानाधि-करण्यमावग्रहादनुमित्यनुत्यत्तेस्तद्गृहोऽपि वाच्यः, तच हित्तमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादिकमन्योन्याभावप्रति-योगितानवक्षेदकत्वं वा, तथाच सर्व्वसाधारण्याय लाघवात्साधनवतस्तदृत्तित्वस्य वा हत्तेरन्योन्याभावस्य

वत्तव्यम्, इत्यच्च तत्तद्वातिविश्वान्तते क लाघवम्। एवं यत्र विषयविशेषे व्यभिचारश्वमत्विनिण्य एव न जातस्त्रत्व तस्य हेतुता-एत्तिरित्यतो दोषान्तरमाह्न, नानाविधेति। श्राह्नरिति। श्रस्वरसः तयाच याद्यशाव्यभिचारज्ञानस्य कारणत्वं ताद्वश्रव्यभिचारज्ञाना-भावस्य हेतुत्वं व्यक्तव्यम्। ननु श्रव्यभिचारग्रहस्य प्रयोजनं पचे साध्याविच्छेदः, तच सामानाधिकरण्यस्य विशेषणत्वपरत्यैव भविष्यतीत्याश्येन तद्द्वयति, सामानाधिकरण्येति। ये तु केवला-न्वयमुमितौ श्रव्यभिचारस्यलाभिषिक्तं केवलान्वयित्वमिति वदन्ति, तन्मतापेच्यापि स्वमते लाघवं प्रकटयति, केवलान्वयित्वस्यति। वच्यमाणार्थेकवृत्तिमत्वचिटतापेच्या लाघवादाह्न, श्रन्योन्या-भावेति। साधनवत इति वृत्तेविशेषण्यं, तदृत्तित्वस्य साधनवदृत्ति-स्वस्य, इदन्त्वन्योन्याभावविशेषण्यत्या तथाच वृत्तिमदत्यन्ताभाव वा विशेषणत्वमुचितिभिति सिद्धान्तरहस्यं, शेषं केवला-त्वियखग्डने वच्चामः ॥ ६॥

द्गित रघुनायशिरोमणिप्रणीतायामनुमानदीधितौ व्याप्तिवादे पूर्व्यपत्तः समाप्तः।

द्रत्यत्र साधनवद्वत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वमेवोभयसाधारण-मसु एवं साधनवदृत्तित्वस्थान्योन्याभावविश्रेषणतायां साधनवदृत्य-न्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वमप्युभयसाधारणमिति । श्रेष-मिति। दतोऽपि लाधवेन साध्यवदन्याव्यत्तित्वादिज्ञानमेवानुमिति कारणम् द्रत्यादिकमिति॥ ८॥

द्रित महामहोपाध्यायक्षण्यदाससार्व्वभौमप्रणीतायां श्रनुमानदीधितिप्रसारिष्यां व्याप्तिवादे पूर्व्वपत्तः: समाप्त: ।

अय सिंहान्तलच्चणम्।

तत्त्वचिन्ताणि:।

श्रवीच्यते। प्रतियोग्यसमानाधिकरण्यत्समाना-धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छितं यत्र भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।

अय सिम्धान्तलचणम्।

दीधिति:।

प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति। प्रतियोग्यसमानाधि-करणयदूपविशिष्टसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि-तानवच्छेदको यो धर्मास्तद्दमीविच्छन्नेन येन केनापि समं सामानाधिकरण्यं तदूपविशिष्टस्य तद्दमीविच्छ-

श्रय सिदान्तलचणम्।

प्रसारिणी।

तद्वमाविच्छित्रेति । ददं पृथिवीव्यत्तित्वविधिष्टद्रव्यत्ववत् गन्ध-वत्तात् दत्यत्र ताद्यप्रतियोगितानवच्छेदकविधिष्टद्रव्यत्वतात्रय-सामानाधिकरण्यं गुणावच्छेदेनापि दत्यवच्छित्रपर्थेन्तं तदुप-हितार्थेकम् ।

विज्ञमान् धूमादित्यत द्रव्यलेन रूपेण धूमादेर्व्याप्यल-वारणाय श्राह, तदूपविशिष्टस्येति। तत्रैव तत्तदिज्ञलाविष्ट-त्रले व्यापकलवारणाय श्राह, तद्वभाविष्ठितेति। व्याप्तेः सामा- म्नयावनिक्षिपता व्याप्तिरित्यर्थः दग्डारी साध्ये पर-म्परासम्बद्धं दग्डलादिकमेव साध्यतावच्छेदकमतो नाव्याप्तिः। दृत्यच्च द्रदं द्रव्यं गुणकार्स्मान्यत्वे सित सच्चादित्यादी सच्चाद्यधिकरणगुणादिनिष्ठात्यन्ताभा-वप्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यत्वादेर्नाव्याप्तिः, साधनस्य

न्यरूपतालाभाय यावदिति। ननु दण्डिमान् दण्डिसंयो-गात् इत्यत्न, तत्तद्गास्य साध्यतावच्छेदकस्य, तादृशप्रतियोगि-तानवच्छेदकालं दुर्घटं चालनीन्यायेन तत्तद्दावच्छित्राभावस्य दण्डान्तराधिकरणवित्तिलादिलात आह, दण्डादाविति। पर-म्परित । ननु दण्डलस्य तादृगप्रतियोगितानवच्छेदकले श्रनुमिते-व्यापकतावच्छेदकप्रकारकलियमात् साध्यांग्रे दण्डलवान् द्रत्या-कारापत्तिः नीलपट इतिवत्। न च दण्डप्रकारकत्वनियामक-सत्तात् दण्डीत्येवाकार इति वाचं, तथाप्यांशिकलस्य (१) तस्य दुर्जारलापत्तेरिति चेन्न परम्परासम्बद्धमित्यत्रापि हि परम्परा-सम्बन्धो वसुविशेषणं, न त्वनुमिती, तादृशपरम्परायाः सम्बन्धत्वं, तयैवानुभवात, अन्यया दर्ष्डेतरवत्यपि स्थले दर्ष्डेतराभावसत्तात दण्डी नास्ति इति बुद्धगापत्तेः, तथाच तावत् प्रकारता परम्परयैव दण्डलस्य तयावच्छेदकलं वाचं तदिहापि समानमिति। न च दण्डस्य तत्तदण्डलेनावच्छेदकलमिति वाचं, विशेषलचणोक्त-प्रगल्भमतेऽतिप्रसङ्गादिति अतएवाच, परस्परासम्बद्धमिति। न तु

⁽१) एकस्या अनुमितेर्रण्डलक्ष्मान् दिग्डमानित्युभयाकारकत्वस्रेत्रर्थः।

विशिष्टसत्त्वादेर्पुणादावहत्तेः, सामानाधिकरण्ययत्तीनां भेदेऽपि निरूपकतावच्छेदकस्याधिकरणतावच्छेदकस्य चैक्याद्याप्तिरेक्यं वस्तुतस्तु धूमत्वादिविशिष्टय्यापकविद्व-सामानाधिकरण्यस्य रासभादिसाधारणत्वाद्रमत्वादि-

संयोगसम्बन्धेनित, पलवलीन तथैव कत्यनादिति, एवं दण्डि साध्यकव्यभिचारिष्यपि बोध्यः। केचित्तु साध्यादिभेदेन व्याप्तिभेदादनावच्छेदकतानवच्छेदकमेव वक्तव्यं, तथाच ताहण्रक्षपाविच्छिन्नावच्छेदकमेव प्रकतानुमितौ भासत इति श्राष्ठः। यद्रूपविणिष्टस्य फलमाइ,
इस्यच्चेति। साधनस्य इत्यादि, यद्यपि, विण्रिष्टसत्त्वमपि सत्त्वमेव तच्च
गुणवत्त्येव, तथापि गुणे न विण्रिष्टसत्ता किन्तु द्रव्ये इति प्रतीत्या
तस्यैवाधिकरणत्वकत्त्पनमिति भावः। ऐक्यमिति, एकैव हि सा
व्याप्तिः, सर्व्वधूमसाधारणी इत्यादिग्रस्यत्तु भद्धा योजनीयः इति
रासभादीति, न च तद्रूपविणिष्टस्येत्यादिविवच्चणादेव रासभेऽपि
तसान्वे न चितिरिति वाच्यं, विज्ञिनिक्षित्रसूमव्याप्तेरनितित्त्वचत्तेरेव निर्वत्तव्यत्वादिति, श्रन्यथा सामानाधिकरण्यमात्रस्यैव विज्ञधूमव्याप्तिरित्यस्यापि सुवचलादिति, तद्दतीति सामानाधिकरण्यवतीत्यर्थः।

श्रीत्मन् कल्पे धूमलस्थावच्छेदकलमुपहितानुपहितभेदेन समर्थनीयमिति न च धूमलस्थ व्याप्तिरूपले व्याप्यधूमवानित्यस्य ताद्यभूमलवह्मवानित्याकारापत्तिः, प्रत्यचे इष्टलादेव, शाब्दे तु सामानाधिकरख्यप्र्यवसन्नस्थैव व्याप्तिपदार्थलात्। मित तादृशसमानाधिकरण्यं तद्दति धूमलादिकं वा व्याप्तिः, श्राद्या भिन्ना, दितीया त्वभिन्नेविति ध्येयम्॥१०॥

श्रयं किपसंयोगी एतदृच्चत्वादित्यादिसंग्रहायासमा-नाधिकरणान्तम्। यत्तु द्वदं संयोगिद्रव्यत्वादित्यवा-व्याप्तिबारणाय तत्, संयोगस्य शाखाद्यवच्छेदेन वृत्ते-वृच्चत्वावच्छेदेन तत्सासान्याभाववृत्ताविविरोधात्, तच

न च हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेती तादृशसामानाधिकरण्य-मित्युकाविव विनिगमनाविरहः, तथाच हेतुनिष्ठसामानाधिकरण्य-मित्येव वाच्यम्, इदं द्रव्यं पृथिवीद्यत्तित्वविशिष्टसत्तादित्यच जनावच्छितद्रव्यत्विक्षिपतसत्त्वासामानाधिकरण्यसाणि अकत-हेतुव्याप्तित्वापत्तेः। श्रथेष्टगपत्तिः, तिहे रासभनिष्ठसामाना-धिकरण्यमेव किमिति वाधितम्। इत्यच्च प्रागुपदिशिततहम्भी-विच्छित्रेनेत्यचावच्छित्रत्वं वैशिष्ट्यभेव, उपदिशितव्यादृत्तेरनेनैव सिद्यत्वादिति। श्रभित्रैवेति तथाच यन्यसम्भुखतयैव गितः इति भावः॥१०॥

प्रगल्भीयं दर्भवति, यित्ति। तत् श्रममानाधिकरणान्तम्। तत्र चेति, तथाच संयोगलाविष्णत्राभावो न योग्य इति भावः।(१) बन्वयं महारजनसंयोगी एतलादित्यत्र महारजनसंयोगाभावस्य योग्यलात्; तिस्मन् महारजनसंयोगो नास्तीति बुढेर्दुर्वारला-

⁽१) योग्यभात्मप्रतियोगिकत्यसैशभावयोग्यत्ययोजकत्वात्।

चातीन्द्रियस्य संयोगस्य सत्त्वात्परितः प्रतियोग्युपलञ्चे-दीषाद्या वृत्ते न संयोग द्यादिनाध्यत्तमिति तन्न, द्रव्ये संयोगसामान्याभावे मानाभावात्। न च यो यदीय-याविद्याषाभाववान्, सतत्सामान्याभाववानिति व्याप्ति-र्यावत्संयोगाभावा एव मानं, यत्तदर्थयोरननुगमात्, एकावक्केंद्रेन याविद्याष्ट्रीषाभाववत्त्वस्थोपाधित्वाच । एतेन अयं संयोगसामान्याभाववान् संयोगयाविद्यशेषाभाव-वत्त्वादिति निरस्तं, व्यर्थविश्रेषणत्वादप्रयोजनत्वाज्ञि-गुंगात्वादेशपाधित्वाच । न च प्रतियोग्यनवच्छेदक-तयैव वृत्तवादेरभावावक्छेदकत्वं, गुगाद्यनवक्छेदकप्रमे-यतादेस्तदभावावच्छेदकत्वप्रसङ्गात्। यथा च घटपृर्ञ्ज-वर्त्तित्वस्य प्रतिदग्छं, विज्ञिसामानाधिकरग्यस्य वा

दिखत याह, परितः प्रतियोग्युपलक्षेरिति। प्राचीनमते यत्तदर्थ-योरनुगमादाह, एकावच्छेदेनिति। एतेन दिश्वितोपाधिना। व्यर्थेति, श्रभाववत्त्वादित्यस्वैव सम्यक्त्वादित्यर्थः। द्रव्यमानस्वैव पचत्वा-दन्यत्व च साध्यसत्त्वादिति। ननु तयैव वक्तव्यमित्यत श्राह, श्रप्रयोजकत्वादिति। सम्प्रदायमत श्राह, निर्भुणत्वादेरिति। ननु प्रमियत्वस्य गुणावच्छेदकत्वेऽपि न चितः, प्रमियत्वावच्छेदेन गुणो नास्तीति बुहेरसत्वादित्यत श्राह यथाचेति, प्रतिदण्ड-मिति भिन्नत्वेनान्वितम्। श्रत्न कथित् श्राकाशादिसंयोगो व्याप्य- प्रतिधूमं भिन्नत्वेऽपि, दग्डत्वं धूमत्वं वा तत्सामान्यस्या-वच्छेदकं, तथैव संयोगसामान्यस्यावच्छेदकं द्रव्यत्वादि-कमित्यस्यापि सुवचत्वाचेति सम्प्रदायविदः ॥ ११॥

नवीनाः पुनक्तपत्तिकालावक्छेदेन घटादी गुणस्य, प्रलयावक्छेदेनगगनादी संयोगस्य,सामान्याभावो वर्त्तते, तथा धूमवत्यपि विरहो दह्दनस्य, द्रह पर्व्वते नितस्वे हुताशनो न शिखरे द्रति प्रतीतेः, संयोगेन द्रव्यस्याप्य-व्याप्यवृत्तित्वात्, वृत्तीरव्याप्यवृत्तित्वे वृत्तिमतो व्याप्य-वृत्तिरिति न तक्षामान्याभावो वृत्तादी। न च संयोगमावस्था-व्याप्यवृत्तित्वस्य सुवचलादिति॥ ११॥

(१) गुणस्थेति सामान्याभाव दत्यचान्वितम्। वृत्ते हुताशन-संयोगस्य शिखरावच्छेरेनाभावे, तेन सम्बन्धेन हुताशनस्य शिख-रावच्छेरेन श्रभावः, सिध्यति।

ननु इहपर्ञ्जते नितम्बे हुताशनो न शिखरे दित प्रतीते हुँता-श्रानस्य शिखरानवच्छेयं नितम्बावच्छेयञ्च यत्पर्ञ्जते वर्त्तमानलं, तदत्तया हुताशन एव विषय द्रित हुताशनाभावो न पर्ञ्जते सिध्यतीत्यत श्राह, हत्तेरव्याप्यहत्तिले दित "हत्तेः" तदीय-सम्बन्धस्य "हत्तिमतः" सम्बन्धप्रतियोगिनस्तस्य, श्रमभावितला-

⁽१) ष्टचाकाश्यंशोगस्यापि काकाशे, ष्टचावच्छे देन भासमानत्वेनाव्याप्यष्टित्त-त्यमिति भावः।

हत्तित्वस्थात्यन्तमसम्भावितत्वाच । एवं प्रतियोगिमतो-रिप कालदेशयोर्देशकालभेदावच्छेदेन तदभावः, तथाच

दिति एकावच्छेदेनैव तदीय-सम्बन्धाभावस्य तदभावनियततया इताशनाव्याप्यवृत्तिलस्यापरिचार्य्येलादिति भावः।

संयोगस्य विज्ञप्रतियोगिकलेनात्र्याप्यवृत्तिलेऽपि संयोगल-सामान्यरूपेणःतदभावसत्त्वेमानाभानाभावात शुबसंयोगेन वर्क्नरपि स्वाधिकरणे नाभाव इति तेन सम्बन्धेनावज्ञिसाध्यकेऽव्याप्तिः कयम। सम्भवति इत्यत श्राह, प्रतियोगिमतोरपोति "देशभेदः" देशविशेषः तन्त्वादिः तदवच्छेदेन काले घटाभावे सति, समयपचके घटसाध्यकेऽव्याप्तः, कालभेदोऽपि प्रतियोग्यनिधकरणकाल एव, तयाच देशहत्तितायां सएवावच्छेदक: स्थात् इति, कपाले घटस्य नामकालावच्छेदेन म्रभावसत्त्वात्। तत्र तत्साध्यका-व्याप्तिवारणाय च त्रसमानाधिकरणान्तम्। घटवत्यपि काले इदानीं तन्तुषु न घट इति प्रतीतिवत् घटवत्यपि कपाले घटनाश-दशायां इदानी भिच्नपाले न घट इति प्रतीते:, न च तन्तुषु यो घटाभावस्तदवच्छेदकतयैतलालमवगाइते इत्यादिरीत्यावक्तव्य-मिति साम्प्रतं, तन्तुषु घटाभावस्य व्याप्यहत्तितया एतत्कालस्य तदवच्छेदकलावगाइने प्रतीतेर्भमलापत्तेः। तत्त्तसाध्यकेति गुखवत् संयोगवडा द्रव्यलात्, पर्व्वतो विक्रमान् धूमात्, समयो घटवान्, कपालं घटवत्, एतत्त्वादित्यादावित्यर्थः । नोपादेयञ्चिति साधिकरणहत्त्यभावाप्रतियोगिलमेव सर्व्वयाव्याप्यवृत्ति लिमिति

तत्तत्साध्यकाव्याप्तिवारणाय तत्। नोपादेयश्च सर्व्यथैव व्याप्यवृत्तिसाध्यके साध्यसाधनभेदेन व्याप्तिभेदादिति वदन्ति॥ १२॥

प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यञ्च प्रतियोगितावच्छे-दकावच्छिद्रा सामानाधिकरण्यं तेन अयं गुण-

स्वाधिकरणहित्तितायां सम्बन्धावच्छे यत्वानिवेशात् तादृशसाध्यकं नियपचकच्चानादिकमेव तथाचायमाकाच्चानादित्यादावेव नोपादेयं सत्तावान् जातेरित्यादौतूपादेयमेव, तत्र समवायेन सत्ताया यधिकरणे महाकाले कालिकविशेषणतया यभावसत्वात्, दत्यावेदयितुं सर्व्ययेविति । यभावे हेत्वधिकरणहित्तत्वस्य साध्यतावच्छेदक्षसम्बन्धेन स्वप्रतियोगिमत्ताबुद्धे:प्रतिबन्धकतावच्छेदकीभूतप्रकारताचटकसम्बन्धेन विशेषितत्वे तु, व्याप्यहित्तसाध्यके, सर्व्ययेव
प्रयात् ज्ञतापि लच्चणे न निवेश्यमित्यर्थः, अव्याप्यहित्तसाध्यकेतु
कपिसंयोगाभाववान् नित्यगुणत्वादित्यादी क्वचिदेव नोपादेयं प्रयोजनाभावादिति भावः ॥१२॥

गुणककाष्यविधिष्टसत्तस्य सत्तानितिरिकतया ताद्यसा-ध्याभावस्य गुणे प्रतियोगिसमानाधिकरणतयातिव्याप्तेराह, प्रति-योगिसामानाधिकरण्यञ्चेति विधिष्टसत्त्वस्य व्याप्यद्वत्तित्वेन भूत-त्वमूर्त्तत्वोभयेतिसाध्यान्तरमनुस्मृतं त्रात्मान्यद्वत्तिविधिषगुणवत्त्वरू-पभूतत्वस्य, त्रपक्षीत्रयपरिमाणवत्त्वरूपमूर्त्तत्वस्यापि स्वाधिकरणे उत्पत्तिकालाद्यवच्छेदेनाभावसत्त्वाद्याप्यद्वस्त्वेव तदुभयमिति। कमीन्यविविश्वष्यस्तावान् जातेः भूतत्वमूर्त्तवोभय-वान् मूर्त्तवादित्यादौ नातित्याप्तिः। न चोभयत्व-मेकविशिष्टापरत्वं विशिष्टच्च केवलादन्यदिति तद-भावो मनिस सङ्जत एव प्रतियोगित्यधिकरण द्रति वाच्यम्, उभयत्वं हि न विशिष्टत्वादनतिरिक्तं न वा तदविक्चन्नाभावस्तदविक्चन्नाभावात् वैशिष्ट्यविरहेऽपि घटत्व-पटत्वयोग्नभयत्वस्योभयत्वेन तदभावस्य च प्रत्य-

सार्वभीममतसिडमेकविश्रष्टापरत्नमेव चेत् उभयत्वं तदानातिव्याप्तिरित्यतिरिक्तमेव तद्वावस्थापयित, नचेति। सङ्चत इति
प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नत्वानिवेशेऽपीत्यर्थः, विश्रिष्टस्य केवलमूर्त्तत्वादितिकात्वादिति भावः। वैश्रिष्ट्यविरहेऽपि सामानाधिकरस्यक्पवैशिष्ट्यशून्यत्वेऽपीत्यर्थः, तथाचैकत प्रतीतिसिडमितरिक्तं यदुभयत्वं, तदवगाहितयेव श्रत्नोभयमित्याकारकसर्व्वप्रतीतेः
प्रमात्वोपपत्तेरिति भावः। तथाच एकविश्रिष्टापरत्वावगाहित्वे
लाघवमिकिच्चित्रसिति। लच्चतयातित्याप्तेः परिहारं प्रतिषेधित
न च तचेति हेतुमत्तावच्छेदेन साध्यतावच्छेदकाविच्छन्नाधिकरण्तस्यैव सद्वेतुत्वप्रयोजकतया मूर्त्तत्वरूपं यत्निचिन्नसाध्यसत्त्वमकिच्चित्रसमित प्रतिभाति। श्रवच्यत्वनियतं व्यभिचारं ग्राह्यिति
नात्रोभयमिति श्रत्न मूर्त्तत्वाश्रये मनसि इत्यर्थः।

नतु खप्रतियोग्यसामानाधिकरण्याभावादेव साध्यभेदमादाय

चिसि इत्वात्। न च तत व्याप्तिरे वोभयत्वाधिकरणस्य मृत्तेत्वस्य मनिस सत्त्वादिति वाच्यं, तथात्वेऽप्युभय-त्वेन रूपेण तत्नासत्त्वात्, नात्नोभयमितिप्रतीतेर्दुर्व्वार-त्वात्। अव्यन्तपदञ्चाव्यन्ताभावत्वनिरूपकप्रतियोग्य-सामानाधिकरणस्य, अव्यन्ताभावत्वनिरूपकप्रतियोग्य-तायाञ्च लाभाय, अव्यथा सर्व्वस्यैवाभावस्य स्वसमाना-धिकरणाभावान्तरभिन्नत्वात्त्रद्वेस्य स्वस्वरूपानितिरिक्त-त्या प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यस्यैव दुर्ल्वभत्वापत्तेः। सर्व्वेषामेवाभावानां हेतुसमानाधिकरणाव्यन्ताभाव-

नासभव द्रख्यन्तपदं व्यर्थमित्यत चाह, श्रत्यन्तपदचेति। हेतुस-मानाधिकरणगवाद्यभावनिष्ठस्य श्रभावान्तरभेदस्य श्रनवस्थाभयेन स्वाधिकरणगवाद्यभावात्मकत्वेन कत्यनीयतया घटाद्यभावरूपतग्र-तियोगिसामानाधिकरप्येनासभवः स्थादितिभावः, श्रत्यन्ताभाव-त्वनिरूपकप्रतियोग्यसमानाधिकरप्यनिवेशे,च गवाद्यभावस्य प्रति-योगी घटाद्यभावो न तिन्नष्ठात्यन्ताभावत्वनिरूपक इति तहुरदासः। श्रत्यन्ताभावत्वनिरूपकस्य हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगित्वस्था-निवेशे दोषमाह, सर्व्वेषामिति। गोत्याभाववान् श्रष्वत्वादित्याद्य-भावसाध्यके द्रत्यादि। सम्प्रदाय द्रत्यस्यस्यचनाय, तद्वीजन्तु, श्रत्यन्ताभावत्वनिरूपकत्वनिवेशेऽपि श्रभावमात्रस्यैव पूर्व्वच्णव्वत्ति-त्वविश्विद्याविष्ठिनस्यस्यस्यात्यन्ताभावरूपप्रतियोगिनासामानाधि- विनिक्षपकप्रतियोग्यसमानाधिकरणाभावान्तरातमकस्य स्वभेदस्य प्रतियोगित्वादभावसाध्यकाप्तेश्चेति सम्प्रदाय-विदः॥ १३॥

श्रय यदा गोत्वं तदा गौरित्यवातिव्याप्तिः प्रल-यस्य गोध्वंसवत्वेन गवात्यन्ताभावानधिकरणत्वात् । संसगीभावमावोक्ताविष यदा स्पन्दस्तदा द्वागुकं, यदा श्रदृष्टं तदा जन्यं ज्ञानं, दुःखं वा, यदा तस्या दृष्टं तदा तदीयं ज्ञानिमत्यादावितव्याप्तिः, द्वागुकत्वादेर्द्वागुका-

करखादभावसाध्यकात्याप्तेस्तादवस्थात्, याद्यप्रतियोगितावच्छे-दकावच्छित्रानधिकरणत्वं हेतुमतः ताद्यप्रतियोगिताया वक्तव्य-त्वाद्वप्रभेगवात्यन्तपदमिति॥ १३॥

श्रत्यन्ताभावस्य त्रितयप्रतियोगिकत्वमतमनुस्रत्याः , श्रय यदा गोत्वभिति । कालो गोमान् गोत्वादित्यादावित्यर्थः ।

मित्रमतं निराकर्त्तुमाह, संसर्गाभावमात्रोत्तावपीति । लचण-घटकात्यन्तभावपदेनेत्यादि, यदास्यन्द इति । तथाच द्वरणकवान् स्यन्दात्, जन्यज्ञानवान् दुःखवान् वा श्रदृष्टात्, तदीयज्ञानवान् तदीयादृष्टात्, दत्यादावित्यर्थः । खण्डप्रलयेऽपि स्यन्दस्य श्रदृष्टस्य च सत्त्वेन तदानीं जन्यज्ञानादेः साध्यस्यासत्वात् व्यभिचारित्व-मिति, सर्गान्तरीयद्वरणुकप्रागभावसत्त्वेन द्वरणुकसामान्यस्य ध्वंस-विरहादिति भावः । दिश्न्यखग्डप्रलयादिनिष्ठध्वंसप्रागमावप्रतियोगितान-वक्केदक्वतात्, न हि तयो: सामान्याभावत्ववादिमते-ऽपि, एकविशेषप्रागभावविशेषान्तरध्वंसवस्यपि समये, सामान्याविक्कि झध्वंसप्रागभावयोः सस्भव इति चेज्ञ, प्रतियोगिमत इव ध्वंसादिमतोऽपि कालस्यात्यन्ता-भाववक्तेऽविरोधात्, अन्यया अत्यन्ताभावस्य काल-मावाहित्तत्वप्रसङ्गात्। इयांस्तु विशेषो यदेकस्य देश-

ननु महाप्रलयपूर्विटतीयचणे चरमदाणुकनाशानुगुणसन्स्य सत्तेन तदानीमेव दाणुकलाविच्छत्नस्य ध्वंसलात् ताह्यध्वंसरूप-संसर्गाभावमादायैवातिव्याप्तिनिराकरणं स्यादित्यत उक्तं यदाहष्ट-मिति, नित्यज्ञानस्य साध्यान्तर्गतले संदेतुल्यमाग्रङ्गतेक्तं जन्यमिति ज्ञानविशेषणम्। नित्यसुखसाचाल्कार एव मोच दित वादिनोभदृस्य मतमनुस्त्याह, दु:खम्बेति। कार्यमाचं प्रत्यहष्टस्य हेतुलेन यदि महाप्रलयपूर्व्यचणेऽपि यहष्टसलमपेचितं तदानीं दु:खलाविक्षत्र-ध्वंससलात्रातिप्रसङ्गः, तदाप्याह, यदा तस्याहष्टमिति। तथाच सु-स्वंससलानिऽपि तत्पुरुषीयाहष्टसत्तेन तदीयच्चानासलेन च व्यभिचाः रिलात्, तदानीच जायदवस्थोत्यद्यमानज्ञानव्यक्तीनां प्रागभावस-न्वात्, तदीयच्चानसामान्यसंसर्गाभावस्यासम्यव द्वित भावः।

भन्यथित्यादि । श्रन्यया, तदीयध्वंसादिमतः कालस्य तदत्यन्ता-भावानभ्युपगमे,कालमात्रस्थेति कस्यचित् कालस्य तत्तत्यागभावस्य भेदाविक्त तथात्वमपरस्य तु स्वरूपाविक्त मिति देशे कालस्येव कालेऽपि देशस्याप्यवक्तेदकत्वात्, तक्कृत्ये च काले तदभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वात्। न च संसगीभावविशेषोऽत्यन्ताभावः, संसगीभाववत्वञ्च संस-

कस्यचिच तत्ता बंसस्य सत्वेन इति भावः। यत् एकस्येति प्रतियोगि-मत: कालस्य,देशभेद: प्रतियोगिनोऽनधिकरणदेश:,तदवच्छेदेन तथा-लम्, त्रालानाववत्त्विमिति परेणान्वयः । त्रपरस्थेति । ध्वंसादिमतः कालस्य, स्वरूपाविच्छन्नमिति निरविच्छन्नमित्यर्थः। ननु गवाद्य-भावस्य सृष्टिकाले प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेन क्रुतो लचणघटक-तिखत ग्राह,तच्छ् खे चेति। तथाच गवादिशू खप्रलयाववच्छेदेन प्रति-योगिगवादिसामानाधिकरखाभाववैशिष्ठां गवाद्यभावस्य सुलभ-मिति यिलि चिडेल धिकरणे प्रतियोगिव्यधिकरणलस्यैव लच्चणघट-कतया च नातिव्याप्तिरिति भावः, संसर्गीभावविशेष इति । सदात-नलविशिष्टसंसगीभाव इत्यर्थः। संसगीरोपेति। प्रतियोगितावच्छे-दक्तसंसर्गेन यः प्रतियोगिनः "त्रारोपः" देशोऽयं यदि संयोगिन घट-वान् स्यात्तदा घटवत्तयोपलभ्येतेत्येवं प्रसङ्ग इत्यर्थः । प्रागभावध्वं-सयोरिप उत्तरकाललपूर्वकाललक्षी खप्रतियोगितावच्छेदक-सम्बन्धी कल्पनीयी, संसगीभावप्रत्यचसामान्यं प्रति स्वप्रतियोगि-तावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यारोपलेनैकरूपेण हेतुतायां लाघ-वादिति, तादृशारोपजन्यप्रतीतिविषयाभावत्वरूपसंसर्गाभावलच्च एं, तयोगीव्याप्रसिति भावः।

गारीपजन्यप्रतीतिविषयाभावत्वरूपं, जन्यताघटकिनय-मघिटतिमिति वाच्यम्। तद्दन्यावृत्तित्वरूपिनयमस्य तच घटकत्वात्, एवं नियमान्तरस्यात प्रवेशेऽपि न चितिरित्यादुः। वच्यते च नियमाघिटितमेव संसर्गा-भावादिलचणम्, अनुपदमेव च विवेचिय्यते संसर्गा-भावत्वप्रवेशे प्रयोजनिवरहोऽव्याप्तिश्च॥ १४॥

⁽१) चक्रकत्वञ्च खन्नानामेच्य ज्ञानामेच्य ज्ञानामेच्य ज्ञानकत्वरूपम्।

यय ज्ञानवान् द्रव्यत्वात्, विशेषगुणवान् मनी-ऽन्यद्रव्यत्वात्, जातिमान् भावत्वादित्यादी समवायेन ज्ञानादेः साध्यतायामतिव्याप्तिः, साध्यश्रन्यानामपि हितुमतां विषयत्वविशेषणत्वेकार्यसमवायैः' साध्यवन्वा-दिति चेन्मैवं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रति-योगिनो यदधिकरणं, सम्बन्धि वा तहृत्तित्वाभावस्थी-कात्वात्, भवति चैवमन्योन्याभावोऽपि प्रतियोग्यसमा-नाधिकरणः, तद्विविष्टस्य च हित्वधिकरणहत्तित्वं वाच्यं

श्रयेत्यादि। विशेषपदं व्यभिचारित्वरचायै; मनमः कालोपाधिताविद्द्युपाधिताया श्रिपि श्रभावात्, तत्रैव प्रतियोगिव्यधिकरएत्वस्य सन्धवानातिव्याप्तिरिति मनोन्यपदं, तयाच काले कालिकविशेषणतया, दिशि च दिकृतिद्येषणतया, प्रतियोगिनो विशेषगुणस्य सत्वात् साध्याभावस्य न लच्चणघटकतेति। दिकालयोरीखरानितरेकादाह, जातिमानिति। मैषमिति। तादाकोन
चित्रमतः साध्यत्वे द्वत्यनियामकेन तेन प्रतियोगिनो श्रधिकरणत्वाप्रसिद्धा श्रसामानाधिकरण्यमपि श्रसिद्धमिति उत्तं तसम्बन्धि
वेति, एवमिति। सम्बन्धित्वनिवेशे इत्यर्थः। तदिश्रष्टस्येति प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यवैशिष्ट्यावच्छेदेन हेत्वधिकरणे वर्त्तमानत्वमित्यधः, तेन किपसंयोगाभावस्य गुणे प्रतियोग्यसामानाधिकरखेऽपि तमादाय नाव्याप्तिरिति भावः।

तेन नाव्याप्यवृत्तिसाध्यकासंग्रहः, तद्दवृत्तिभिन्नत्वन्तु नार्थः, श्रव्याप्यवृत्तिसाध्यकव्यभिचारिख्यतिप्रसङ्गात्।

यत्र सामानाधिकरण्यवतो न तदभाववन्तं, प्रती-तरन्ययैवोपपादितत्वादित्यस्वरसात् प्रतियोगिवैयधि-करण्येत्यादिविशेषणं वच्यति तच्च हित्वधिकरणे वोध्यं, प्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभावेति पुन-रभावान्तार्थनिष्कर्षः ॥ १५॥

सामानाधिकरखादेर्व्यायवृक्तित्वाभिप्रायेणाइ, सामानाधिकरखवत इति । प्रतीतिरिति गुणे संयोगाभावे न संयोगसामानाधिकरखमिति प्रत्ययस्थेत्यर्थः, प्रन्यथिति । संयोगाभाविनष्ठसंयोगसामानाधिकरखस्य गुणे प्रवच्छेदकत्वाभावावगाहित्वेनोपपादितत्वादित्यर्थः । तथाच संयोगीसत्वादित्यादी संयोगाभावस्य द्रत्ये
प्रतियोगिसमानाधिकरणस्य धर्तुमशक्यत्वात् प्रभावान्तरमादायातिव्याप्तिरिति भावः, वच्चतीति । विशेषव्याप्तौ उपाध्याय इति
श्रेषः । तचेति । प्रतियोगिवैयधिकरख्यमपीत्यर्थः । ननु चिन्तामणौ प्रतियोगिवैयधिकरख्यावच्छेदकाविच्छन्नत्वं चेद्रेत्यधिकरणे
प्रतियोगिसामानाधिकरख्यावच्छेदकाविच्छन्नत्वं तदा सामानाधिकरखस्य व्याप्यवृक्तित्वेन प्रवच्छेदकाविच्छन्नत्वं तदा सामानाधिकरखस्य व्याप्यवृक्तित्वेन प्रवच्छेदकाविच्छन्नत्वं तदा सामानाधिकरखस्य व्याप्यवृक्तित्वेन प्रवच्छेदकावाप्रसिद्धा तदनवच्छेदकाविच्छन्नत्वमप्यप्रसिद्धमिति तक्तात्पर्थार्थमाञ्च, प्रतियोग्यनधिकरणीभृतिति ॥ १५ ॥

नन् प्रतियोगितावक्छेदकाविक्वनस्य यस्य कस्य-चित्तत्सामान्यस्य प्रतियोगितावक्छेदक्ययिकञ्चिदविक्छ-न्नस्य वा अनिधकरणत्वमृक्तम् आद्ये अव्याप्यवृत्तिसाध्य-काव्याप्तिः, एकप्रतियोग्यधिकरणस्यापि तद्याक्यन्तरा-निधकरणत्वात् । दितीये, संयोगसामान्याभाववान् द्रव्यत्वाभाववान् वा सत्त्वादित्यादावितव्याप्तिः, सा-ध्याभाववतो द्रव्यस्य तत्प्रतियोगिसंयोगविशेषाभावव-च्वात्, नित्यत्वादिविशिष्टद्रव्यत्वाभावात्मकस्य विशिष्ट-गिनोऽधिकरणत्वाच्च, स्वाभावाभावात्मकस्य विशिष्ट-

यस्य कस्विदिति अनिधकरणत्विस्ययेणान्वयः। श्राये प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छित्रस्य यस्य कस्विदिति कल्पे द्रत्यर्थः। दितीये प्रतियोगितावच्छेदकाविच्छित्रसामान्यस्थानिधकरणत्वच- टितकल्पे द्रत्यर्थः। संयोगाभावस्य केवलान्वियत्वमनुसृत्यसाध्यान्त- स्ताह, द्रव्यत्वाभाववान् द्रति। संयोगाभावसाध्यक्षेऽतिव्याप्तिं योज- यित, साध्याभाववत द्रति। साध्याभावानां संयोगव्यक्तीनां स्रसा- भावाभावक्षपतया सामान्याभावविद्येषाभावानामपि तत्प्रति- योगित्वादिति भावः। श्रभावाभावस्येव प्रतियोगित्विमिति सिद्या- न्तानुसारी द्रव्यत्वाभावसाध्यक्षेऽतिव्याप्तिं योजयित, नित्यत्वादिवि- प्रिष्टेति। साध्याभावस्य द्रव्यत्वस्य विधिष्टद्रव्यत्वाभावोऽपि तत्प्रति- तत्सामान्याभाववत् नित्यत्वादिविधिष्टद्रव्यत्वाभावोऽपि तत्प्रति-

स्यापि द्रव्यत्वस्य द्रव्यत्वानितिरेकात् । हतीये किपसं-योगाभाववान् त्रात्मत्वादित्यादावव्याप्तिः,साध्याभावानां किपसंयोगानां गुणानामधिकरणस्यात्मनस्तव्यतियो-गितावक्केदकगुणसामान्याभावत्वाविक्कद्वानिधकरण-

योगीत जन्ये द्रव्ये नित्यत्वविधिष्टद्रव्यताभावक्षपप्रतियोगिना, नित्ये च जन्यत्वविधिष्टद्रव्यताभावाक्षतप्रतियोगिना, समानाधि-करण्य द्रव्यत्वक्षपसाध्याभावस्य धर्त्तुमयोग्यत्वादितव्याप्तिरिति भावः। हतीये इति प्रतियोगितावच्छेदकीभृतयत्विश्विद्रभाविच्छत्रस्थानधिकरण्वविवचणे इत्यर्थः। गुणानामित्यभेदाभिधानं गुणसामान्याभावे कपिसंयोगरूपसाध्याभावस्य प्रतियोगित्वव्यक्ती-करणाय, तथाच साध्याभावस्य कपिसंयोगस्य, कपिसंयोगाभा वत्वमिव गुणसामान्याभावत्वमिप प्रतियोगितावच्छेदकीभृतो धर्मः, तदवच्छिन्नानधिकरण्वस्थाक्षत्वक्षपहेतुमतिसत्वेन स्वप्र-तियोगितावच्छेदक्यविश्वद्याभावस्थिकरण्हेत्वधिकरण्-हित्तकपिसंयोगरूपाभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव संयोगाभावत्व-मित्यव्याप्तिरिति भावः। प्राचां संयोगसामान्याभावस्य द्रव्येऽसित्वात्, कपौति।

मैविमिति यत्रितियोगितित्यनिभिधाय याद्दशित्यभिधानं एकैक-धर्माविच्छित्रप्रतियोगित्वानुगमनाभाय, तेन हित्वधिकरणे श्रभावीय-यदाब्रमाविच्छित्रप्रतियोगितावच्छेदकाविच्छित्रानिधकरणत्वं, तत्तब्रमी-भेदकूटो लभ्यते, श्रन्यथा यत्रतियोगितत्यभिधाने स्वावच्छेदक संसर्गा- त्वात्। मैवं यादृशप्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नानिधक-रणत्वं चेतुमतः तदनवच्छेदकत्वस्योक्तत्वात्॥ १६॥

श्रव च ग्राह्यसामानाधिकरण्ये हेतोर्याहशः सम्बन्धः प्रविष्टस्तेन सम्बन्धेन यो हेतुमान्, तव वर्त्त-मानत्वमभावस्य, साध्यस्य च यादृशः सम्बन्धः प्रविष्ट-स्तत्सम्बन्धाविक्तद्रायाश्च प्रतियोगिताया श्रनवक्तेदकत्वं बोध्यं, तेन धूमसमवायिनिष्ठाभावस्य संयोगाविक्तिन-प्रतियोगितायाः, धूमसंयोगिनिष्ठाभावस्य च समवाया-

विच्छित्रस्रावच्छेदक्षधन्माविच्छन्निक्षपक्ताकाधिकरण्लसम्बन्धा-विच्छित्रस्र्विनष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगिताकभेदवच्चसम्बन्धेन हेल-धिकरण्डन्तयो या या ग्रभावीयप्रतियोगिताः प्रत्येकं तत्तदवच्छे-दक्तभेदक्र्यवन्त्व साध्यतावच्छेदके वाच्यमिति स्रक्ष्पसम्बन्धा-स्रक्तप्रतियोगितासमसंस्थकभेदक्र्यनिवेश्वक्तं गौरवं स्थादिति मन्तव्यम्॥१६॥

हितुसमानाधिकरणे त्याच हिलिधिकरणलं विशिनष्टि, याह्य-सामानाधिकरण्ये इति परामर्शेन याह्यं, पचतावच्छेदकधम्में ण यत् सामानाधिकरण्यं हितोस्तचेत्यर्थः । प्रतियोगिलच्च विशिनष्टि-साध्यस्येति धनुमित्या याह्यं साध्यस्य पचतावच्छेदकधर्मोण यसामानाधिकरण्यं तचेत्यर्थः, तयाच येन सम्बन्धेन पचहत्तित्वं हितोः परामर्थेन ग्रह्यते तेन सम्बन्धेन हितोरधिकरणे वर्त्तमाना- विक्ति द्वप्रतियोगितायाः, अवक्केरकालेऽपिविक्कित्वस्य न चितः। यदा साध्यतावक्केरकासम्बन्धेन प्रतियोग्य-सम्बन्धित्वं हितुमतो वक्तव्यं, तथाच सम्बन्धभेदेन प्रति-योगिता न विशेषणीयां, एवं स्थिते सामानाधिकार-खादौ सम्बन्धित्वं निवेशनीयं न त्वधिकारणत्वं, तथाच धिक्षणोऽपि व्याप्यत्वं व्यापकत्वच्च निर्व्वहित । तथाहि तादातस्येन सम्बन्धेन धूमवतः सम्बन्धिनि महानसे वर्त्तमानो योऽन्योन्याभावस्तस्य तादाक्यसम्बन्धाविक्क-

भावस्य, येन सम्बन्धेन च साध्यमनुयीयते तत्सम्बन्धाविच्छित्रायाप्रति-योगिताया, अनवच्छेदकालं वाच्यमिति। एतलाल्पे, प्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाविच्छत्रलं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन च प्रतियोग्यधिकरणलमिति दिधा निवेशे गौरवम्, एवं धनी चै-चलादिल्यादिव्रत्यनियामकस्वामिलादिसम्बन्धेन साध्यतायां तत्स-म्बन्धाविच्छत्रप्रतियोगिलाप्रसिद्याऽत्याप्तिश्चेत्यतः प्रतियोग्यसम्ब-न्धिलमेव साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनाह्, यद्देति। एवं स्थिते दति, प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यमित्यत्र प्रतियोग्यधिकरणलमनिविध्य स्वप्रतियोगिसम्बन्धिलनिवेशे द्रत्यर्थः। सामानाधिकरण्यादाविति, हेतौ यत् साध्यसामानाधिकरण्यघटकवृत्तिलम्, एवमभावे च यत् हेतुसामानाधिकरण्यं तद्घटकं यत् हेलिधिकरणलं तत्र तत्नेल्यर्थः। धर्मिणोऽपि तादालासम्बन्धेन धूमादिमतोऽपि व्याप्यलं, वङ्गादि- द्वाया प्रतियोगिता तदनवक्छेदकविद्वमत्वाविक्षित्वस्य विद्वमतस्तादात्स्येन सम्बन्धिनि महानसे धूमवत-स्तादात्मेरन सम्बन्धित्वम्। एवं धिर्मिणो धर्मा-व्याप्यत्वव्यापकत्वे वोध्ये अतएव जलादीनां पृथिवीत्वा-भावव्याप्यत्वं तत्र तत्नोत्तं सङ्गक्कते।

यथाच याहशेन सम्बन्धेन हेतीर्व्याप्यता गृहीता, ताहशेन सम्बन्धेन तस्य पचरित्तत्वज्ञाने याहशेन सम्बन्धेन च साध्यस्य व्यापकत्वमनगतं, ताहशेनेव साध्यपचयोर्विशिष्टानुमितिः, तेन न धूमावयवे संयो-गेन न वा समवायेन पर्व्वते विद्विधीः। तथैवावगतव्या-

व्याप्यत्यम् । सुतरां घूमादिव्यापकतञ्च वक्त्रादिमतस्तादालोगन् । निर्व्वहतीति, सम्बन्धितानिवेशे च तादालोगन् साध्यस्य हेतोष अधिकरणत्ववृत्तित्वासिद्धाः न तिम्नव्योह इति भावः। धिम्भेणो धम्भेन्व्याप्यत्यस्य सिहान्तसिहतं दर्शयति, अत्रपविति। तादालोगन् धिम्भेणो धम्भेव्याप्यत्वादेवेत्यर्थः व्यापकताघटकस्वरूपसम्बन्धेन पृथिव्यां पृथिवीत्वाभावरूपव्यापकनिवस्या व्याप्यताघटकतादालगसम्बन्धेन व्याप्यज्ञताद्यभावरूपव्यापकनिवस्या व्याप्यताघटकतादालगसम्बन्धेन व्याप्यज्ञताद्यभावरूपव्यादिग्रस्य तदुपन्यासोऽपि सङ्गच्छते इत्यावेदियतुम् अन्वियदृष्टान्तदर्भनपूर्वकं परिहर्गति। यथाचेति,तादालोगनिति। अन्यथा समवायेन जलादीनां पृथिवीत्वाभावव्याप्यत्वपरत्वे समवायेनैव जलाद्यभावः सिध्येत इति भावः।

पकताघटकसम्बन्धेन व्यापकस्याभावग्रई गृहीतव्याप्य-ताघटकसम्बन्धेन व्यापस्याभावः सिध्यतीति, कथमन्यथा समवायेन विज्ञविरहिणि महानसे, संयोगेन वा विज्ञ-विरहिणि खावयवे धूमः समवायेन न निवर्त्तते निवर्त्तते च संयोगेन विज्ञविरिहिणि स्वावयवे संयोगेनिति नियम उपपदाते,तथाच तादात्यसम्बन्धेन जलादीनां व्याप्यल-ग्रहाद्यापकनिवृत्त्या तादारम्येनैव तेषामभावः सिध्यति स एव चान्योन्याभावः। दूर्लमेव च तादातम्येन वृत्त-शिंशपयोर्व्याप्ति निश्चय दूति सङ्गच्छते, अतएव गोलला-ययहदशायां यच सास्नादिः सा गौरिति तादारम्येन गोर्व्यापकलगृष्टे साम्नादिना तादात्मेत्रन गौः, तादात्मेत्रन गोर्ळातिरेकाच सास्नादिव्यतिरेकः सिध्यति, एवच्च संयो-गेन गगनादेरिप द्रव्यत्वव्याप्यत्वं, वृत्त्यनियामकसंयोग-

ननु एतावतापि जलस्य तादाक्षायस्यस्थेनाभावः सिद्धो न तदन्यो-न्याभावः इत्यत श्राहः, स एविति । तादाक्षेत्रन जलाद्यभाव एव जलाद्यन्योन्याभाव इति प्रक्ततम् । धिर्मंणो व्याप्यव्यापकत्वोभय-सिद्धिप्रयोजनमाहः, इत्यमेव चेति । श्रयं हृद्धः सिंग्यपायाः इत्यत्न इ-त्यर्थः । धिर्मंणो व्यापकत्वे संवादमाहः, श्रतएविति । गोत्वत्वं गवि-तराहृत्तित्वं तस्यानुपस्थितिदशायां ईयं गौः साम्नायाः इत्यनुमितेन गोत्वविधयकत्वसुपपद्यते श्रिष तु गोविधयकत्वमेव, तेन साध्य- मानस्याभावप्रतियोगितावक्छेदकसम्बन्धरूपते साध्य-तावक्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यसम्बन्धित्वाभिधाने वा पृथिवीत्वादिव्यापकत्वमपि,तदभाववतोऽपि पृथिव्यादेः संयोगेन तत्सम्बन्धित्वात्, सिंडिरपि तस्य तथैव नतु वृत्तिनियामकसम्बन्धेन तेनासम्बन्धित्वादव्यापकत्वाच व्यक्तीभविष्यति चैतदुपरिष्टात्॥ १०॥

नन्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यात्मककालमावहित्तधर्मस्य विभेषणताविभेषेणाव्याप्यहत्ति।, किमपि व्यापकं न

वदन्यावृत्तिलक्षपत्र्याप्तिज्ञानस्य हेतुलेऽपि न निस्तार (१) इति भावः। ननु गोः साध्यलेऽपि सान्नासमानाधिकरणान्योन्याभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकलस्य धिक्मैतावच्छेदकतया गोललस्थोप-स्थितिरावध्यको इत्यत ग्राह, त्रादौति। ग्रादिपदात् पचधक्मै-तापरिग्रहः, तथाच गोललाद्यनुपस्थितौ इत्यस्य गवेतरावृत्तिल-क्पव्याप्तिविधिष्टस्य पचवृत्तिललाद्यनुपस्थितौ इत्यर्थः तादाक्मेरन गोविधियकलमावध्यकमित्याभयः॥१७॥

महाकाते कालिकसम्बन्धेनाभावमात्रस्थैव स्वप्रतियोगिसमा-नाधिकरणतया निरुक्तप्रतियोग्यसमानाधिकरख्यचिटतव्यापकला-

⁽१) ताड्यानुमितेर्न गोत्वसाध्यकतयोपपत्तिरित्यर्थः। ऋनुमितेर्थापकताव-च्छेदकरूपाविच्छिद्धविषेयताकत्वनियमादेव च तादात्मेत्रन धर्मियो गोर्थापकत्व-भावस्यकमिति भावः।

स्यात्। स्वावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिनोऽसम्बन्धिनि काले वर्त्तमानस्याभावस्य प्रतियोगितायां तत्सम्बन्धा-विच्छन्नत्वस्य तेन सम्बन्धेन यद्यतियोगिसम्बन्धितद-न्यत्वस्य च कालेऽसम्भवात्। न च तादृशसम्बन्धेन

प्रसिद्धा ख्यापक्साध्यसामानाधिकरखरूपं व्याप्यत्वमपि सा-धनस्यासिद्यमित्याग्रङ्कते, नन्बष्टद्रव्यातिरिक्तेति पृथिव्याद्यष्टद्रव्या-तिरिक्तेत्वर्थः । ऋष्टद्रचेति वसुस्थित्यभिप्रायेण गगनादेः कालत्व-विरहारेव तद्गेरा न निवेग्याः, तथाच पृथिव्यादिचतुर्द्रव्यातिरिक्ते-त्येव पर्य्यवसितम्। तथाच कालो घटवान् महाकाललादित्यादौ त्रव्याप्यव्यक्तिघटादिकं किमपि, कालिकविशेषणताविशेषेण ताद्द-शवमीस्य महाकाललस्य व्यापकं न स्यादित्यर्थः। खण्डकाल-वृत्तिधर्मस्याधिकरणे, भिन्नकालीनवस्तुनोऽभावस्य स्वप्रतियोग्य-समानाधिकरणस्य प्रसिद्धा नाव्यापकलमतोऽष्टद्रव्यातिरिक्तेति. तादृशमहाकालवृत्तिसत्ताद्रव्यवादेरिय व्यापकलं नानुपपन्नमिति मावपटं तथाच महाकाललमेव तादृश्धमा:। व्याप्यवृत्तिवाच्य-लाटौ प्रतियोगिवैयधिकरखघटितव्यापकलाभावस्य दृष्टलाद-व्याप्यवृत्तीति प्रतियोगितायां साध्यताघटकसम्बन्धावच्छेयत्वमभि-प्रेत्य श्रापादनमुबिखित, स्वावच्छेदनीति । साध्यताघटनसम्बन्धेनैव प्रतियोग्यसम्बन्धिल न तु प्रतियोगितायां तत्सम्बन्धाविच्छत्रलमित्य-भिष्रेत्यात्त, तेन सम्बन्धेनेति । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनेत्यर्थः ।

न च कालिकविशेषणतया तादृश्यभंभव्यापकत्वाप्रसिद्धा-

हेत्वधिकरणीभृतयत्किञ्चिद्यात्त्यश्चित्रप्रतियोगितावच्छे-दक्वविशिष्टप्रतियोगिसामान्यकत्वमेन वक्तव्यं तथाचा-वृत्तिगगनाद्यभावद्यारिकेव तित्सिंडिः। सत्ताद्यधिकरण-कमीदौ समवायेन ज्ञानसामान्यस्य संयोगसामान्यस्य चावत्तेनीतिप्रसङ्गः, भूतत्वमूर्त्तत्वोभयत्वविशिष्टगुण-

तदभावक्रपाद्याप्रसिद्धिः ताद्यप्रधम्मनिक्षिताव्याप्यवृत्तिगतप्रति-योगिव्यधिकरणलघटितव्यापकलसामान्ये, कालिकविश्रेषणतास-क्वन्यावच्छेद्यलाभावस्थैव निक्तप्रतियोगिवैयधिकरण्यघटितलेना-पाद्यलादिति।

सार्ळभौमोत्तमाग्रङ्गा निषेधति, न चेति । वाचमित्यग्रेऽन्वयः । ताद्दशेति साध्यताघटकसम्बन्धेन किञ्चिडेलिधकरणनिरूपितं
यहृत्तिलं तच्छ्न्यस्वप्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टप्रतियोगिसामान्यकहेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकधमैवस्वमैवात्र
व्यापकलिमित्याग्रयः । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनित्यस्य प्रयोजनमाह ।
सत्ताद्यधिकरणेति । तेन ज्ञानवान् संयोगवान् वा सत्त्वादित्यादौ
विषयतया ज्ञानसामान्यस्य समवायेन एकार्धसमवायेन च संयोगसामान्यस्य सर्वेच हेलिधकरणे वर्त्तमानलेऽपि नातिव्याप्तिरिति ।
नतु यिकञ्चित्विधकरणावृत्तिस्वप्रतियोगिसामान्यकाभावेत्येव
क्यं नोत्तमित्यत ग्राह, भूतलमूर्त्तलोभयेति । हेलिधकरणे मनिस
भूतलमूर्त्तलोभयाभावस्य स्वप्रतियोगिनो मूर्त्तलस्य वृत्तिलेऽपि
ताद्दशोभयल्यस्पस्वप्रतियोगितावच्छेदकविभिष्टस्थावित्तलामाति

कर्मान्यविविश्वष्टसत्ताविविश्वष्टसत्तादिकन्तु न मनोगुणादिवृत्ति, संयोगसामान्यन्तु न किञ्चिद्द्व्यावृत्तीति
वाच्यं विश्वष्टस्यानितिरिक्तत्वात्। समवायेन जातेः
साध्यत्वे भेयत्वादावितव्याप्तिः, जातिमिन्नष्ठतादृशाभावप्रतियोगिताया जातित्वेनानवच्छेदात्, जातिग्रन्थे च
तादृशसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेः। संयोगादिसाध्यकगुणकर्मान्यत्वादौ चातिव्याप्तिः, श्रद्रव्ये चेतुमिति तादृशसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेः,द्रव्ये च संयोगादेरिष वृत्तेः॥१८॥

व्याप्तिरिति। संयोगी द्रव्यतादित्यनाव्याप्तिवारणक्ष्यं सामान्यपद-प्रयोजनमाह, संयोगसामान्यन्त्विति। सामान्यपदानुत्ती च घटा-नुयोगिकत्वविशिष्टसंयोगस्य संयोगसामान्याभावप्रतियोगिन: द्रव्य-त्वाधिकरणे पटे श्रवृत्तित्वेनाव्याप्तिरिति भाव:।

विशिष्टस्येति। गुणे गुणकामान्यत्वविशिष्टसत्तेति प्रतीतेः वेशिष्ट्या-वर्च्छदेनाधेयत्वस्यापि श्रुडसत्तात्वाविच्छन्नाधेयतातः स्रभिन्नत्वादि-त्यथः, तथाच ताद्दश्यविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ स्वप्रतियोगिता-वच्छदेकविशिष्टसत्तात्वविशिष्टसत्तामामान्यस्य गुणवृत्तित्वेन साध्या-भावस्य लच्चणाघटकतयातित्याप्तेरिति भावः। विशिष्टस्यातिरिक्तत्व-नयेऽपि दोषमाइ, समवायेनेति। साध्यताघटकसम्बन्धेनैव यत्वि-चिडवेत्धिकरणावृत्तित्वं वाचं, तथाच व्यभिचारनिक्षपक्कजात्यादि-निक्षितसमवायावच्छित्ववृत्तित्वाप्रसिद्धेरितव्याप्तेरिति भावः ॥१८॥ भैवं, साध्यतावक्चेदकसम्बन्धसामान्ये निष्तत्तप्रति-योगिप्रतियोगिकत्वहित्वधिकरणीभृतयत्किच्चिद्वात्त्वन्-योगिकत्वसामान्योभयाभावस्य विविच्चतत्वात् । धूम-संयोगे वङ्गाधिकरणायोगोलकानुयोगित्वस्य चैतान्य-त्वविशिष्टेतहण्डसंयोगे एतद्दण्डाधिकरणचैत्रानुयोगि-कत्वस्य गुणकस्मान्यत्वविशिष्टसत्तासमवाये च जात्यधि-करणगुणानुयोगिकत्वस्य विरहाद्वातिप्रसङ्गः । स्वरूप-

खण्डयः प्रसिद्धा गगणायभावमादायात्राप्तिमुद्दर्भुमाह, मैव
भिति। संयोगलेन संयोगमात्रस्येव साध्यताघटकलेन भूतलायनुयोगिकसंयोगिविभ्रेषे खप्रतियोगिप्रतियोगिकलघिटततादृशोभयाभावसत्त्वेन, तादृश्वद्धामावमादाय वद्ध्यादिसाध्यकाव्याप्तिपरिहाराय
सामान्ये दति। सामान्यपदस्य व्यापकलतात्पर्यकतया, साध्यताघटकसंसगलव्यापकतादृशोभयसामान्याभावकाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं यदूणं तदूपावच्छित्रसामानाधिकरण्यमिति समुदितार्थः,
तथाच साध्यताघटकसम्बन्धसामान्यान्तर्गतधूमाधिकरणायनुयीगिकसंयोग एव तादृशोभयाभावविरहात् नाव्याप्तिरित।
तादृश्यतियोगिप्रतियोगिकलविभिष्टहेलधिकरणानुयोगिकलाभावोक्तो, गगनप्रतियोगिकलविभिष्टमहाकालानुयोगिकलाप्रसिद्धा
मगनाभावस्थापि अतथालेनाव्याप्तेस्तादवस्थ्यमित्यत उभयाभाव
छक्तः। यिकचिदित्यस्य प्रस्तमाह, धूमसंयोग दति। ननु "जन्यानां

सम्बन्धेन गगनादेर्रंतिमच्चे तु निस्तंप्रतियोग्यनिध-करणहेतुमित्रष्ठाभावप्रतियोगितासामान्ये यह्मम्बन्धा-विक्वित्रत्वयद्वमाविक्वित्रत्वोभयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्वमाविक्वित्रस्य व्यापकत्वं वोध्यम्। समवाय-सम्बन्धेन मेयसामान्याभावस्य सामान्यादी सच्चा-न्मेयत्वादेरप्यभावप्रतियोगितावक्केदकत्वं सुलभम्। यतएव समवायस्थैकत्वेन द्रव्यत्वादिप्रतियोगिकत्व-

जनकः कालो जगतामात्रयो मतः।" दत्यादिस्मरणात् महाकाले जगदाधारत्वप्रवादिस्वये गगनाद्यात्रयत्वमावश्यकं दति तदनुयोगि-किविशेषणतायां निरुक्तोभयाभावासस्विमत्यत श्राहः, गगनादेदिति निरुक्तेति । स्वप्रतियोगितावच्छेदकाविच्छित्रानिधकरणहेतुतावःच्छेदकविशिष्टाधिकरणव्यत्यभावीयप्रतियोगितासामान्ये द्रत्यर्थः। धूमवान् वज्लेदित्यादौ तादृश्घटाद्यभावप्रतियोगितायां धूमत्वा-वच्छेद्यत्वयोरभावसस्वात्, संयोगेन धूमस्य व्यापक-त्वापत्तित्वतः सामान्ये दति, तथाच सामान्यान्तर्गतधूमत्वाविच्छ-न्वप्रतियोगितायां यदवच्छेद्यत्वयदवच्छेद्यत्वोभयाभावः तेन तद्वभ्याविच्छनस्य व्यापकत्वस्य व्यापकत्वस्य व्यापकत्वस्य व्यापकत्वस्य स्वापन्तं ध्रमस्यस्यपदयोग्तपाद्यानेतित वाचं। समवायिनः संयोगिन साध्यतायां घटत्वादिहिताव-व्याप्तेः, साधनसमानाधिकरणस्य समवायेन संयोगिसामान्याभावी-

गुणाद्यन्योगित्वोभयसच्वेऽपि द्रव्यं जातेरित्यादी विज्ञधूमोभयवान् वज्लेरित्यादी संयोगस्य दित्वाव-च्छिन्नप्रतियोगिकत्वविरहेऽपि च नातिव्याप्तिरित्यपि वदन्ति॥ १८॥

प्रतियोगित्वादिश्व खरूपसम्बन्धविशेषो न सम्बन्ध्यत्वे निविष्ट: सामानाधिकराखेऽपि सम्बन्धः संयोग-

यप्रतियोगितायासुभयोः सन्तात्। तिनविशे च, ताद्यप्रतियोगितायां धमंविधया समवायावच्छेयालस्य सम्बन्धविधया च संयोगावच्छित्रलस्याभावादेव नाव्याप्तिरिति दिक्। ननु साध्यीयसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धसामान्ये, याद्यप्रतियोगिप्रतियोगिकलघितताद्याभाव द्रत्युक्तौ पूर्व्वनिरुक्तेः परिष्कारेण पटाद्यभावमादायैवोक्ताव्याप्तिनिराससभवे कल्यान्तरानुसरणं सन्दर्भविरुद्धमत ग्राह, ग्रतप्वेति।
समवायस्यैकलेनेति। लाघवमनुसन्धाय नित्यैकसमवायाङ्गीकर्त्तृनये
दत्यादि। समवायस्य नित्यलानङ्गीकर्त्तृनयेऽपि दोषमाह, विद्वधूमोभयेति। सम्बन्धमात्रस्यैव एकप्रतियोगिकलमपरानुयोगिकलं
नत्भयप्रतियोगिकलं कुत्रापि प्रसिद्धं, प्रकारिलादेरिप तम्पते
संसर्गलं नेष्टमिति, साध्याभावस्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकदिलावच्छेयलाप्रसिद्धेयव धर्तुमयक्यलादितव्याप्तिरिति भावः॥ १८॥

ननु प्रतियोगिलादिप्रविधे आत्माश्रय इत्यत आह, प्रतियोगि-लादिगिति। आदिपदादिधकरणलादिपरिग्रहः। ननु प्रतियोगि-लस्य प्रतियोगिललेनैव लच्चणे प्रविधात् विना सम्बन्धलं तत्रविधो त्वादिनैव निविशते दर्शितञ्च नियमाघिटतमि सम्बस्वतम्। श्रभावत्वञ्चेदमिष्ठं नास्तौदमिदं न भवतौतिप्रतौतिनियामकोऽभावाभावसाधारणः खरूपसम्बन्धविशेषः, श्रतो नाभावसाध्यकव्यभिचारिण्यतिप्रसङः।
तदिष वा नोपादेयं प्रयोजनिवरहात् विषयतातत्त्वादिवत् प्रतियोगितातत्वाधिकरणत्वतत्त्वसम्बन्धत्वतत्वादयोऽप्यतिरिक्ता एव पदाधी दृश्वेकदेशिनः॥ २०॥
दृति श्रनुमानदिधितौ सिडान्तलचणं समाप्तम्।

विषष इत्यत श्राह, दिशितश्चित । विशेषविशेषणान्यविशिष्टधीविषयलक्षिमत्यर्थः । ननु वद्घामाववान् मेयलादित्यत्न सप्तमपदार्थस्कष्णभावाप्रतियोगिलादित्याप्तिरित्यत श्राह, श्रभावलश्चेति । युक्तश्चेतत्, घटाभावी नास्तीतिप्रतीतेः प्रमालानुरोधेनाभावान्तरकत्यनाप्रयासामावादिति, ददिमह नास्तीतिप्रतीतिनियामकभावसाधारणाभावलस्य प्रवेशे तादाक्षेत्रन सम्बन्धेन
साध्यतायां व्यभिचारिष्यतिव्याप्तिः ताद्यप्रतीतिनियामकाभावप्रतियोगिताया श्रन्थोन्याभावप्रतियोगितानाक्षकलेन ताद्यप्रभावप्रतियोगितायासभयाभावसलादत श्राह, ददिमदं न भवतीति ।
इदिमेव समर्थयित, श्रत इति । ननु याद्यप्रतियोगितावाक्षकेदकाविष्ण्यत्रानिधकरणान्यलं हितुमतस्ताद्यप्रप्रतियोगितायासुक्तो-

अथावक्छेदकलनिम्तिः।

नन्ववच्छेदकलिमिह न खरूपसम्बन्धिविशेषः सन्ध-वित च लघी धर्मो गुरी तदभावात्, प्रमियधूमलकम्बु-ग्रीवादिमत्तव्राणग्राच्चगुणत्वादेरतथात्वेन तेन रूपेण साध्यतायां व्यभिचारिण्यतिप्रसङ्गात् नाप्यनतिरिक्त-वृत्तित्वं प्रतियोगितायाः खरूपसम्बन्धात्मिकायाः प्रति-

भावाभावविवचणादेव सामञ्जस्येऽभावपदं व्यर्थभित्यत श्राह, तदपि विति। एकदेशिन इति। तथाच सुतरां नात्माश्रय-इति भावः॥ २०॥

द्रति महामहोपाध्यायक्षण्दाससार्व्वभौमप्रणीतायां श्रनुमानदीधितिप्रसारिखां सिडान्त-लच्चणं समाप्तम् ।

श्रयावच्छेदकलनिक्ति:।

प्रसारिणी।

नतु धूमलमेव प्रमेयधूमलं विशिष्टस्यानितिरिक्तलात् तचाव-च्छेदकमेवित्यत श्राह, कम्बुगीवादिमलमिति । नतु कम्बुगीवादि-मत्त्वमपि न लघुवच्छेदकान्तरिनयतं तस्य सौवर्णघटहत्तितया घटल्जात्यतिरिक्तहत्तिलादित्यत श्राह, प्राणगाश्चोति । गन्धसमनै- व्यित्तिभिद्गत्वेन धूमत्वादेरिप तदितिरिक्तवित्वात्। न च तथाविधयिति चिदेकाभावप्रतियोगितासामान्यग्र-न्यावृत्तित्वं तत् चत्रण्वातिरिक्तसामान्याभावस्याभावे धूमत्वादेरप्यनवच्छेदकत्वापातादग्रे तत्साधनमपि साधु-सङ्गच्छत द्रति वाच्यम्। विङ्गघटवृत्तित्वतार्णातार्णद्दन-वृत्तिदित्वाद्यविद्यद्वप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितान-तिरिक्तवृत्तिविङ्गत्वादावितप्रसङ्गात्। एतेनान्यूनवृत्तित्व-विश्वितमपि परास्तम्, चत्रपव नानाप्रतियोगिवच्येक-

यत्यार्थं गुणलेति । तथाविधेति । हेतुसमानाधिकरणप्रतियोगिव्य-करणेत्यर्थः, यत्निश्चिदेकेति विद्ममान् धूमादित्यत्र धूमसमा-नाधिकरणतत्त्वद्मग्रभावप्रतियोगितानितिरिक्तव्यथेव विद्मिति तद्दारणाय यत्निश्चिदेकेति । न चानुपदमेवोक्तेन तदपि वित्यनेन विरोधः, प्रतियोगितानुगमार्थमेव तदा तस्योचितत्वादिति । विद्मवटवित्तिदित्वाविष्टित्रप्रतियोगितायान्यूनवृत्त्यथेव विद्मलिमित्। तार्णेति । स्रतिप्रसङ्गात् स्रवच्छेदकत्वलच्चणातिप्रसङ्गात्, एतेन तार्णोताणीभयवृत्तिदित्वाविच्छन्नाभावेन । एकेति । सामान्या-भावस्य नानाप्रतियोगिताकत्यनमपेच्य लाघवादेकेव प्रतियोगिता कर्यते, तथाचैकप्रतियोगितानितिरिक्तवृत्तित्वमेव वक्तव्यमित्य-भावो न निवेशनीय द्रति ये वर्णयन्ति तेऽप्युपदिर्यत-तार्णोताणीवृत्तिदित्वाविच्छन्नाभावेन निरस्ताः, ननु प्रमेयधूमत्वा- प्रतियोगिताङ्गीकारेऽपि न निस्तारः। लघुरूपसमनियतगुरुक्षेण साध्यतायां तद्वेतावव्याप्तिः तादृशतद्विक्दनवाप्रसिद्धेरिति चेन्न, प्रतियोगितावक्केदकानितिरिक्तवित्तवस्य विविच्चतत्वात्। स्वसमानवृत्तिकञ्चावक्केदक्तं गाद्यं तत्त्वञ्च स्वपर्ध्याप्तप्रधिकरणपर्ध्याप्तिवृत्तिकत्वं,
यावक्वादिकन्तु न तथा, पर्ध्याप्तिश्चायमेको घट दमो
दाविति प्रतीतिसाचिकः स्वरूपसम्बस्वविश्रेषः एवं
वित्वादिकमपि न दित्वादिसमानवृत्तिकमिति दित्वा-

दीनामनवच्छेदकलेऽपि तदवच्छित्रलाप्रसिवेरेव प्रतियोगितापचक उमयाभावचिटतव्याप्तिनचण्य नातिव्याप्तिरित्यत श्राष्ट्र,
लाष्ठकपित। सं पारिभाषिकमवच्छेदकम्। ननु तर्णाताणीभयवित्तिदित्वं विद्वलसमनियतमेवेत्यत श्राष्ट्र, तत्त्वच्चेति। तथाच
विद्वलपर्व्याय्यधिकरणपर्व्याप्तत्वं न दिलस्येति न विद्वलमवच्छेदक्तमिति। न तथा, न विद्वलाधिकरणैकपर्व्याप्तम्। श्रयमेक
दति। दृष्टान्तार्थं, ननु विद्वल्यमेभयवान् धूमादित्यत्व रासभमादायताद्यतित्वमेव स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्ववत् व्यासच्यवित्ततथा दिलाधिकरणपर्व्याप्तिकच्चेत्यत श्राष्ट्र, तिल्वादिकमिति (१)।

⁽१) खद्दत्तिव्यासञ्चद्दत्तित्वतदभाववत्त्वान्यन्तररूपवत्त्वभेव खसमानद्दत्तिकत्व-भिति तित्वमिष द्वित्तसमानद्दत्तिकं स्यादित्यागङ्क्योत्तं द्वित्वाधिकरणेति । तथाच स्वपर्याध्यस्योगितावच्छेदकरूपावच्छिन्नास्योगिताकपर्याप्तिकरूपं स्वसमानद्दत्तिकं दित्वस्य न तित्वमिति भावः।

दिना साध्यतायां नात्याप्तिः। घटकञ्चावक्छेदकत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेषः एवञ्च यहक्षाविक्वित्रेत्वत्व यह-क्षान्यूनहत्तिधक्षांविक्वित्रेति वक्तव्यं तेनोक्ताव्याप्ति-निरासः॥ २१॥

वस्तुतस्त तदविक्वन्नप्रतियोगिताकाभाववदसम्बड-

ननु प्रतियोगिताधिक्षिकोभयाभावविवक्षायां धूमसमानाधिकर-णाभावप्रतियोगितायां विक्रिलानितिरित्तहित्तितदिक्कित्वाविक्छिन्नल-साध्यतावक्छेदकसम्बन्धाविक्छिन्नलोभयसत्त्वादव्याप्तिरित्यत ग्राह, एवचेति। तथाच साध्यतावक्छेदकान्यूनहित्तिधक्षाविक्छिन्नलाभाव-सत्त्वादुभयाभावोऽक्तत एवेति। उक्ताव्याप्तिः। प्रमेयविक्झमान् धूमा-दित्यवाव्याप्तिः। प्रमेयविक्झलाविक्छन्नलस्थाप्रसिद्धेरिति॥ २१॥

वस्त्रमाणं सत्तावान् जातिरित्यादी दोषमाकल्पग्राह, वस्तृत इति। तदवच्छिन्नेति। यत्, प्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतुसमानाधिकरणात्रन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकालं खक्षपसम्बन्धक्षं, तद्दवच्छिन्नाभाववित यहिणिष्टनामान्यमसम्बद्धं, तत् पारि-भाजिकमवच्छेदकामित्यर्थः, भवति हि विक्रिनामानाधिकरणात्रन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं धूमलं तद्विच्छिन्नाभावविति प्रमेयधूमल्यस्य पारि-भाषिकमवच्छेदकल्यस्याहतमेव। ननु धूमसामानाधिकरणात्र-न्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं महानसीयविक्रिलं तदविच्छन्नाभावन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं महानसीयविक्रिलं तदविच्छन्नाभावन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं महानसीयविक्रिलं तदविच्छन्नाभावन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं महानसीयविक्रिलं तदविच्छन्नाभावन्ति विक्रिलविग्रिष्टं यिक्तिच्चरस्वद्यमेविति विक्रिलच्यापि तदान्विति विक्रिलविग्रिष्टं यिक्तिच्चरस्वद्यमेवित विक्रिलच्यापि तदान्विति विक्रिलविग्रिष्टं यिक्तिच्चरस्वद्यमेवित विक्रिलच्यापि तदान्वित्र

स्वविशिष्टसामान्यक्तत्वम् । स्वविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठाभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकतत्कत्वं वा तदनतिरिक्तवृत्तित्वं

पत्रमित्यत त्राह, सामान्येति। स्वविशिष्टस्यानुयोगिकालात् साः मान्याभावो न घटत इति हृदयम्। तादात्मेरन विक्रमिति साध्ये खरूपसम्बन्धरूपप्रतियोगितावच्छेदकमहानसीयविद्धलं तदविच्छ-नाभाववति तादास्रान इत्तरप्रसिद्धेस्तदहत्तिलक्ष्पपारिभाषिका-वच्छेदकाप्रसिद्धी तद्भिन्नलं साध्यतावच्छेदकस्याप्रसिद्धमित्यव्याप्ति-रतोऽसम्बद्धेति। तथाच तादास्मेगन सम्बद्धलं प्रसिद्धमिति तद-सम्बद्धलक्षावच्छेदकलप्रसिद्धी तद्भित्रलं साध्यतावच्छेदकस्या-चतिमिति ध्येयम्। यत तदवच्छित्रमित्यत येन सम्बन्धेन यव-च्छित्रप्रतियोगितायाः खरूपसम्बन्धरूपमवच्छेदकलं तेनैव साध्य-तावच्छेदकसम्बन्धेन वा तदवच्छिनप्रतियोगित्वं बोध्यं, तेन संयो-गेन धूमे साध्ये व्यभिचारिणि संयोगेन अवच्छितप्रतियोगितायाः सक्पसम्बन्धक्पावच्छेदकीभृत-धृमत्वाविच्छन्न-ममवायसम्बन्धाव-च्छित्राभाववति महानसादौ धूमलविशिष्टस्य सम्बद्धलेऽपि न चति:। ग्रसम्बद्धत्वमपि तेनैव, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन वा. तेन ज्ञानवान् द्रव्यत्वादित्यत्र तादृशप्रतियोगितावच्छेदकीभूततदव-च्छित्राभाववति घटादौ विषयतासस्यन्धेन ज्ञानस्य सम्बद्धलेऽपि न चिति:। ननु जातिमास्येयलादित्यत्न मेयलसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं यज्जातिलं तदवच्छिन्नाभाववति जात्यादी साध्यतावच्छेदकीभूतसमवायसम्बन्धेन सम्बद्धतस्था-

वत्तव्यम्, अतएव सत्तावान् जातेरित्यादी जातिमद्विष्ठा-भावप्रतियोगितावच्छेदकागुणान्यत्वविशिष्टसत्तात्वतुल्य-

जातिलस्य पारिभाषिकमवच्छेदकलं व्याइतिमत्यत श्राइ, खविशिष्टेति। स्वं पारिभाषिकमवच्छेदकम्। सस्बन्धी-त्यवापि तादाक्षेत्रनावच्छेदकलसंग्रहाय सम्बन्धानुधावनं तललं स्रक्षपसम्बद्धक्षपावच्छेदककलमित्यर्थः। भवति हि जातिलविशि-ष्ट्रसम्बन्धिनिवर्त्तन्ते ये येऽभावास्त्रव्यतियोगितानवच्छेदकं ताद्ट्य-जातिलमिति जातिलस्य न पारिभाषिकावच्छेदकल्डानिः। श्रव प्रतियोगित्वं सम्बन्धित्वं च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन स्वयमेव वक्तव्यम्, तेन धूभत्वविशिष्टसम्बन्धिनि स्वावयवे वर्त्तमानी योऽभावस्त्यतियोगितावच्छेदकलेऽपि धूमलस्य न चितः। न वा धूमलविशिष्टसम्बन्धिनि पर्व्वतादी योऽभावः समवायसम्बन्धेन तग्रतियोगितावच्छेदकलेऽपि धृमलस्य न चति:। अतएवेति। यत एव तदुभयमुक्तांभिति भाव:। न चतिरिति। अवच्छेदका-नितिरित्तव्यस्तित्वमात्रविवचणे तत् चितिरिति भावः। अन वस्तुतो महाकातो घटवान् इत्यव नित्यान्यसंयोगित्वमहाकानान्यवृत्ति-लविशिष्टघटलादिकमेव तथा प्रसिद्धम्, एतदप्यवच्छेदकलचणं श्रोभनमिति केचित्। ननु कालिकसम्बन्धेन घटादी साध्ये महा-कालपरिमाणहेती, हेतुसामानाधिकरणप्रतियोगिव्यधिकरणा-भावीयसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छित्रप्रतियोगितावच्छेदकलम--प्रसिद्धम्। न च गगनला दिकामेव तथाविधं सुसभम्। गगनल-

हित्तकिः पि सत्तालस्य न चितः। एवं स्वविशिष्टसम्ब-न्धिनिष्ठाभावप्रतियोगिनानवच्छेदकावच्छेदात्वं बोध्यं

विशिष्टमस्बस्यप्रसिद्या तस्य पारिभाषिकावच्छेदकलविरहात्, एवं गगनादेवृत्तिसत्वे तु सुतरासप्रनिडि:। किञ्च ईःखरज्ञानं घटवत् नित्यज्ञानत्वादित्यत्र नितरासेव तादृशावच्छेदकाप्रमिष्डि-रित्यतोऽवच्छेदकघटितं लचणं विचाय पूर्व्योक्तप्रतियोगिता धर्मि-कोभयाभावविवचायां यडम्भान्युन शत्तिलोत्ती सत्तावान् जाते-रित्यत्वेव गुणकस्थार्यविविधिष्टसत्तात्वाविष्टनप्रतियोगितायां स-त्तालान्यूनहत्तिगुणकमाण्यलविशिष्टमत्तालाविष्यत्रलसत्तादुभ-याभावासत्त्वेनाव्याप्तेराह, एवमिति। स्त्रं साध्यतावच्छेटकम्। पट-व्याद्वतिः पूर्व्ववद्योध्या । अत च पूर्व्वीक्तस्थले कालपरिमाणं समा-नाधिकरणसमवावसम्बन्धाविक्वित्रघटाभावप्रतियोगितायां घटल-विशिष्टसम्बन्धिनिष्टाभावप्रतियोगितानवच्छेटकीभूतघटलावच्छि-त्रलसलेऽपि कालिकसम्बन्धाविक्छत्रलविरहाईवोभयाभाव इति क्रमेण लचलसमन्वय इति । नतु घ्राणग्राह्यगुणवान् पृथिवीत्वा-दित्यत पृथिवौत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितायां, घ्राण-याञ्चगुणलविशिष्ट-सम्बन्धिनिष्ठाभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकीभूत-गस्वकाविक्यमाभावे ग्राह्य गन्धवक्ते ताद्यावक्केटकलाभाव-स्तल्पतियोगिको वा तदवच्छित्रो वा ग्राद्ये तद्गन्धवलादेरिप घ्राणयाच्चगुणल-विधिष्टसम्बन्धि निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेटक-लापत्ति, गौलिनिष्ठस्य तदवच्छेदकलस्य तहाभावात्, तथाच तद-

ताद्यप्रतियोगितास विशिष्योपादेयाः नातो गुरोरव-क्छेदकत्वं विना दुर्व्वचत्वं प्रतियोगित्वं सम्बन्धित्वच्च साध्यतावक्छेदकसम्बन्धेन बोध्यमतो न सम्बन्धभेद-मादाय दोषः॥ २२॥

विच्छित्रप्रतियोगितायासुभयसत्त्वादेव व्याप्तिसत्तचणाव्याप्तिः। श्रन्थे त ताह्यावच्छेदकलाभावस्य सामान्याभावतया तत घाण्याह्य-गुणलविशिष्टसस्विसिनिष्ठाभावप्रतियोगिताव ऋदेवकललं गौरवेण गत्यलविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकलमे-वावच्छेदकं कल्पाते लाघवात्, तथाच कथमस्य लचणस्यावतार इति प्रज्ञतसाध्यतावच्छेदकविशिष्टसस्वन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगिता-वच्छेदकललावच्छिवाभावस्थाप्रमिडिरित्यत श्राह, ताद्यप्रति-योगितास्रेति। केचित्त हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि-तासु यावतीषु तादृश्रीभयाभावसः विमत्यत्न प्रतियोगितालस्य तद्भयाभावव्याप्यत्वमित्येवार्थः, तथाचेयं पृथिवी घ्राणग्राह्यगुणादि-त्यच घ्राण्याच्चराणसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितात्वं वि-हाय लाघवेन गन्धसमानाधिकर्णात्यन्ताभावप्रतियोगित्वलमेव व्याप्यतावच्छेटकं कल्पात इत्यस्वरमादाह, तादृशप्रतियोगिताचे-त्याहु:। तत्मन्दर्भविरोधाद्पीचतं न च लन्मतिऽपि सामान्याभा-वस्थलाभिषिकताह्यावच्छेटकभेटकूटविवचणेऽवच्छेदकस्यैव विश-षतो ग्रहण्मुचितमिति वाचम्। प्रथमोपस्थितत्वेन प्रतियोगि-ताया एव च विशेष्यग्रहात । न च तथापि एकावच्छित्रनाना-

कालिकविशेषणताविशेषण च साध्यतायां ताह-शप्रतियोगितावच्छेदकत्वमनित्यतत्तद्वातित्वे प्रसिडम्, श्रमावश्च प्रतियोगिव्यधिकरणो वोध्यः। न च मौल-मिदमीयञ्च प्रतियोगिवैयधिकरण्यमनुपादेयं, संयोग-त्वाद्यविक्षद्वाभाववति संयोगत्वादिविशिष्टस्य वृत्ते-

प्रतियोगितानां विशेषतो ग्रहणे गौरवम् एकावच्छेदकावच्छेदा एकैव प्रतियोगिता कल्पेत्रतं, साघवादित्यभिप्रायात्र प्रतियोगित्व-मित्यादि व्याख्यातप्रायम्। सम्बन्धभेदमिति धूमवान् वक्केरित्यत्त धूमनिष्ठप्रतियोगितायां धूमत्वस्य प्रमेयधूमविष्ठष्ठसमवायसस्ब-न्यावच्छित्राभावप्रतियोगितावच्छेदकातया ताद्यगानवच्छेदकाव-च्छेदातं व्याहतमिति, एवं प्रमेयधूमसमवायिनिष्ठाभावप्रतियोगि-तामादायापि न दोष इति बोध्यम्॥ २२॥

ननु कालिकसम्बन्धेन कालो घटवात घटादित्यत कालिक-सम्बन्धेन घटलविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठतादृशाभावप्रतियोगितावच्छे-दक्तलमप्रसिष्ठमित्यत श्राष्ट्र, कालिकिति । तत्तद्वाक्तित्व इति । घटलविशिष्टसम्बन्धिस्मन् कालोपाधौ वर्त्तमानो यः कालिक-सम्बन्धाविच्छनोऽत्यन्ताभावस्त्रयतियोगितावच्छेदकलमतीततत्त-द्वाक्तिले प्रसिद्धमिति । इदिमयम्, श्रवच्छेदकलचणान्तर्गतिम-त्यर्थः । संयोगलेति । मौलप्रतियोगिव्यधिकरणपदादानिऽपि इदं कपिसंयोगि एतलादित्यत्र संयोगलस्यैतलसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावीयस्रकृपसम्बन्धकृपावच्छेदकलसन्तेऽपि तदविच्छना- गुँगादिनिष्ठाभावप्रतियोगितावक्छेदकद्रव्यत्वत्रद्रव्यमा-वसमवेतत्वाद्यविक्तद्राभाववित चावत्तेरव्याप्तप्रतिव्या-प्रप्रोरनवकाशादिति वाच्यं, धूमवान् वक्नेरित्था-दावितव्याप्ते:, न ह्युत्पत्तिकालावक्छेदेनापि महा-. नसादी किञ्चित् संयोगिन वर्त्तते, येन विक्नमदयो-

भाववति संयोगलविशिष्टस्य सत्त्वात्तस्य पारिभाषिकावच्छेदकलं व्याहतिमति न व्याप्तिलचणाव्याप्तिः। इदमीयपदादानेऽति-व्याप्तिमुद्दरति, गुणादौति । संयोगिसत्त्वादित्यत संयोगलगुणला-विक्वित्राभावस्य प्रतियोगिममानाधिकरणतया तदग्रहेऽपि द्रव्य-ललाविक्सताभावस्य ताहगस्य यस्तियोगितावक्सेदकं द्रव्यललं तदवच्छित्राभाववति संयोगलविशिष्टस्यासम्बन्धलात् संयोगलस्य पारिभाषिकावच्छेदकालं सुलभिमिति नातित्याप्तिः । संयोगस्यापि प्रतियोगित्वमाविष्मर्तुमार, द्रव्यमाविति। श्रवच्छेदकलजचणि तत्यदं प्रवेशयवाह, धूमवानिति । अत्र च तत्पदे दत्ते मूलीऽप्यव्या-प्तिवारणायावध्यं तत्पदं देयमिति हृदयम्। तदेव व्यतिरेक्षेन साध-यति, न होत्यादि । अयमर्थः धूमवान् वक्रीरित्यत्र संयोगसम्बन्धेन विक्रिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं यद्यत् उत्-पत्तिकालावच्छेरेन तादृशनिखिलावच्छित्राभाववति धूमलविशि-ष्टस्य सत्वाबूमलस्य पारिभाविकावच्छेदकत्वमनुपपन्नमिति । येने-यदि किञ्चित्संयोगेनोत्पत्तिकालेऽपि वर्त्तेत तदाऽ-योगोलकावृत्तिद्रव्यलाविक्यत्राभाववद्योगोलकमेव स्थात्तत्र च

गोलकनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितावक्केदकायोगोलका-वृत्तिद्रव्यत्वाद्यविक्विन्नाभाववदवृत्तित्वं धूमत्वविविष्टस्य समाव्येत ॥ २३ ॥

भूमलविशिष्टस्य श्रमस्यस्यले न भूमलस्य पारिभाषिकावच्छेदकल-सभावेने खर्यः। अयोगोलका हित्तद्र खलिम खत्र द्र खलं, सयोग-सम्बन्धेनायोगोननाहित्तित्समोरणाय, न च धूमवान् वक्केरित्यत पारिभाषिकतादृशावच्छेदकाप्रसिद्धाः श्रवच्छेदकलघटितव्याप्ति-लचणं न गतमेविति कुतोऽतिव्याप्तिरिति वाचम्। त्राद्यावच्छेद-कलचणे गगनस्यैव तादृशस्य सत्त्वात्, भवति हि वङ्गिसमानाधि-करणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं गगनलं, तदवच्छिन्नाभाव-विति अमस्बर्धं च, गगनलविशिष्टमिति। अय तथापि दितीयलचणे तादृशावच्छेदकाप्रसिद्धिः, तथाहि वक्किसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-प्रतियोगितावच्छेदकं गगनलं तच गगनलविभिष्टसम्बस्यप्रसिद्द्रा न पारिभाषिकावच्छेदकमिति चेन्न, किमेतावता अवच्छेदका-घटितैक्यमित्या युक्तलचणे प्रतियोगिव्यधिकरणपददानस्यावस्यक-लिमिखनास्य ग्रम्थस्य तात्पर्यात्। न च तत्राप्यप्रसिंडिः, विक्न-समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितायां धूमलविधिष्टसम्बन्धि-निष्ठ-तथाविधाभावप्रतियोगितानवच्छेदकीभूतजातित्वाद्यवच्छेदा-लमादायोभयाभावमत्त्वात्। न च धमलविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठ-संयोगसम्बन्धाव च्छित्राभावप्रतियोगितानव च्छेदकलमेव लख कुत:, पर्व्वतादी सर्वेषामेवीत्पत्तिकात्वावच्छेदेन संयोग-

प्रतियोगितयोरेकसम्बस्धाविक्कद्मत्वस्य विशेषणता-विशेषाविक्कद्मत्वस्य वा विवचणे, पुनरनुपादेयमेव प्रति-योगिवैयधिकरण्यद्वयम् । यत्नाधिकरणे व्यभिचारस्तद-न्यत्वत्व-तदन्यत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वत्व-साध्यवत्वप्र-कारकप्रमाविषयत्वत्वादौनां साध्यतावक्केदकविशिष्ट-

सम्बन्धाविक्ति नाधानि वाधां, संयोगसम्बन्धाविक्ति नात्यः सावस्य लाघवेन नित्यसमवेतलमेवावक्षेदकः कल्पातेन जातिलं नित्यलादिघटितमित्यभिप्रायात्। न च तथापि जातिलाद्यव-क्षेद्यलाप्रसिद्धिः, जातिभेदनिक्षिपतप्रतियोगितायां जातिला-वक्षेद्यलस्य सत्त्वात् तद्वेदस्याप्यन्येष्वपि समवेतेषु गुणादिषु विद्यमानलादिति॥ २३॥

प्रतियोगितयोरित । हेतुसमानाधिकरणात्यन्तामावप्रतियोगितायां यसम्बन्धाविष्ठिक्वलं साध्यतावच्छेदकविश्विष्ठसम्बन्धिनिष्ठामावप्रतियोगितायामपि तसम्बन्धाविच्छित्रत्विमत्यर्थः । यस्वतस्त्रयोरननुममादाह, विशेषणताविश्वेषित । ननु प्रतियोगीत्यादिपदादाने
उप्रदर्शितातिव्याप्तिवारणं कथमित्यत श्राह, यत्राधिकरण इति ।
ननु यत्रामाव एव व्यभिचाराधिकरणं तत्र तदन्यत्वस्थामावीयविशेप्रणताविश्वेषामावादाह, तदन्यत्वप्रकारकेति। तदन्यत्वप्रकारकं व्यमिचारित्विनिष्पकस्यनान्यत्वप्रकारकमित्यर्थः । नाघवमिष्प्रत्याह,
साध्यवत्वेति । श्रनयोश्व व्यवस्थितो विकन्यः ज्ञत्वित्तदन्यस्वप्रकारकप्रमाविषयत्वं ज्ञत्वित्वसाध्यवस्वप्रकारकप्रमाविषयत्वसित्वर्थः.

साध्यविद्वशाखनाभावप्रतियोगितानवक्छेदकत्वाडेतु— तावक्छेदकविशिष्टहेतुमिद्विष्ठाभावप्रतियोगितावक्छेदक-त्वाचातित्याप्तरनवकाशात्। तथाच विशेषणताविशेषा-विक्वन्नयडकीविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगितानव-क्छेदकावक्छेदात्वं तत्सम्बन्धाविक्वन्नसाधनसमानाधि-करणाखनाभावप्रतियोगितासामान्ये नास्ति, साधने तडकीविशिष्टसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति पर्य्य-

तथाच प्रमाविषयल नियत विशेषणता विशेष एव धर्मे व्य इति भावः । श्रवच्छेदका घटित लचणम भिप्रेत्य यो जयित, साध्यतावच्छेदकीति । श्रव विवचायां साध्यतावच्छेदक सम्बन्धा प्रविशा त्त्र यो भया भावाना-दर इत्येव निस्तृष्य दर्भयित, तथाचेति । एतेन का लो जगदा-धारः का लत्वा दित्यत्र साध्यतावच्छेदक सम्बन्धे न साध्यतावच्छेदक विशिष्ट सम्बन्धे महाका ल एव, ति हि शावत व्यतियोगितावच्छेद का प्रसिद्धा श्रवच्छेदका घटित लच्च थेऽप्यतिव्या सिरिति परास्तं, विशेषणता विशेषसम्बन्धे न सहाका ला न्यत्व प्रकारक प्रमाविषयत्व मादाय तवा पि सौ लभ्यात् । यह भीः साध्यतावच्छेदक ध भी विशेषः । तल्यस्व न्यो विशेषणता विशेषः । विश्व मान्यत्व प्रमादित्य व्यव ध मसमाना धिक रणाभावीय विशेषणता विशेषा विशेषणता विशेषणता विशेषणता विशेषा विशेषणता विशेषणत

वसितोऽर्थः। यत्र सहितुविशेषे साध्यतावच्छेदकं न प्रतियोगितावच्छेदकं तत्रैवेयं रीतिरूपादेयेत्यपि वदन्ति॥ २४॥

गौरवप्रतिसन्धानदशायामपि कम्बुग्रीवादिमान् नास्तीतिप्रतीतिवलात् गुरुरपि धम्मीऽवच्छेदकः प्रति-

धिकरणे ग्रडमाध्यतावच्छेदक्यापकरूपावच्छित्राभावाभावात्, धूमवान् वक्केरित्यत्र इदलप्रकारकप्रमाविषयत्वाभावप्रतियोगि-तायां धूमलविशिष्टमम्बन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छे-यात्वाभावादित्याप्तेराह, सामान्य इति । तथाच धूमलप्रकारक-प्रमाविषयत्वत्वावच्छित्रताष्ट्रगप्रतियोगितायां तदवच्छित्रत्वसच्चा-त्रातिव्याप्तिरिति । यत्र सडेतुविग्रेष इति पाठः, तत्र सडेतुविग्रेषः प्रमेयवक्किमाध्यकधूमादिः । क्वचित्पुस्तके यत्नासडेतुविग्रेष इत्यादि-पाठस्तिष्ठति तत्नायमर्थो बोध्यः, यत्र प्रमेयवक्कित्वेन बद्धगादी साध्ये ग्रडो हेतुस्तत्र तदवच्छेयत्वाप्रसिद्धगा तस्माध्यकव्याप्तेरिदं त्वचणं, तदीययावडेतुसाधारणग्रव्हेकोनाक्रियमाणं तदीयासडेतुं न व्याप्नोतीति । श्रवच्छेदकत्वलच्चणाभिप्रायेण वा तदित्यपि किथत् ॥ २४॥

स्त्ररूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वकत्यनं, सन्धवित नवी गुरी ना-स्तीति ये मन्चन्ते,तान् प्रति व्याप्तिं व्यवस्थाप्य,तदिप नवुगुरुसाधा-रणमिति ये वदन्ति तान् प्रत्याद्य, गौरवित्यादि । न चास्या दति । योगितायाः। न चास्यास्तत्प्रतियोगिकाभावमावमव-लम्बनं तथाविधयत्किञ्चिद्यात्तासत्त्व एव तादृशप्रतीते-रनुद्यात् अतएवैकघटवति भृतले कम्बुग्रीवादिमान् नासीतिशब्दो न प्रमाणं प्रमाणञ्च घटसामान्यश्न्ये। नचेदेवं लघुरूपसमनियतानां गुरूणामव्याप्यतापत्तिः। गुणादिगुणककीान्यत्वविशिष्टसत्तादिसमानाधिकरणा-

कम्बुगीवादिमान्नास्तीति प्रतीतिरित्यर्थः,तथाविधेति । यत्निश्चित्क-म्बुग्रीवादिमसत्त्वे कम्बुग्रीवादिमानास्तीति प्रतीतेरनुदयादित्यर्थः। न च कम्ब्रीवादिसात्रास्तीति कम्ब्रुयीवादिसत्यकारकाभावप्र-तीती कम्बुग्रीवादिमत्रकारकज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादेवानुदय इति वाचं, तदमीविक्तिमागववत्तनान एव तदमीविक्तितत्तानस्य प्रतिबंस्यकालात्। अन्यधा नीलघटो नास्तीति ज्ञाने सत्यपि घटोsस्तीति ज्ञानं न जायेतेति । अतएवेति । यत एव कस्बुगीवादि-मेचस्यावच्छेदकलकलानमित्यर्थः। कम्ब्गीवादिमानास्तीति ग-ब्दस्य कम्बुग्रीवादिमत्त्वप्रकारालिङ्किताभावविषयत्वे, तत्रापि विष-यसत्वादप्रामाखं पारिभाषिकमापाद्येत ! इदानीं गुरुधर्भस्थान-वच्छेदकलेऽन्यदप्यनिष्टमाइ, न चेरेविमिति। एतरेव विष्टणोति, गुणादीति। इदं सत्, गुणात्। गुणकमांग्यलविधिष्टसस्वात् द्र्यताद्वा द्रत्येतत्रयाणामप्यहेतुलं स्यादित्यर्थः । नाघवेन द्रव्य-निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकलस्यैव तथावच्छेदकभेदप्रतियोगि-

भावप्रतियोगितावक्छेदकत्वनिष्ठायाः प्रतियोगिताया लाघवेन द्रव्यादिनिष्ठाभावप्रतियोगितावक्छेदकत्वत्वे-नैवावक्छेदात्, तत्तदवक्छेदकत्वव्यक्तीनाञ्च प्रातिस्विक-रूपेणाभावानां युगसहस्रेणापि ज्ञातुमशक्यत्वात्। एवं द्रव्यत्वत्वादिविशिष्टद्रव्यत्वादेरव्याप्यत्वप्रसङ्गोऽप्य-नुसन्धेयः, उपदर्शितप्रकाराणामपि स्वत्वादिघटितत्वेन

तावच्छेदकालादित्यर्थः। नन्ववच्छेदकभेदसमुदाय एव वक्तव्य इत्यत ग्राइ, तत्तदवच्छेदकेति। ननु गुरुधमीस्यानवच्छेदकालेऽपि जतमिव लच्चणं सुगममित्यत श्राह्, उपदर्शितिति। तादृशप्रति-योगिताञ्चेत्यादिना कथितप्रकारेण तत्तत्र्यतियोगिताग्रहणे दुर्ज्ञेय-लिमिति भाव:। एवं पारिभाषिकावच्छेदकलक्तरणेऽपि स्रलाद्य-ननुगमोऽपि द्रष्टव्यः। ऋतएवेति यत एव घ्राण्याच्चगुण्लस्य गुरोरिप प्रतियोगितावच्छेदकल्बमतएवेत्यर्थः। अत्र वदन्ति, कम्बु-ग्रीवादिवात्रास्तीत्यत्र कम्बुग्रीवादिमस्वस्थावच्छेदकत्वांग्रे भ्रम एव, न च गौरवप्रतिसन्धानेऽपि विशेषदर्श्यनां कम्बुगीवादि-मानास्तीति प्रतीतेरुदयात्र तथेति वाच्यं, गौरवज्ञानं हि अवच्छेद-कलविषयकज्ञानभात्रप्रतिबन्धकं श्रवच्छेदकल्वप्रकारकज्ञानप्रति-बन्धकं वा। श्राद्ये प्रमियलप्रकारकावच्छेदकलज्ञानस्यापि प्रति-बस्यकलापत्तिः, अन्त्ये कम्बुगीवादिमात्रास्तीत्यत कम्बुगीवादि-मलस्य सम्बन्धविधयाऽवच्छेदकलभन्नमेण न कापि च्तिरिति।

दुर्ज्ञेयलात्, अतोघाणग्राद्यगुणलादिना साध्यतायां द्रव्यत्वादेर्व्यभिचारिलं साधुसङ्गक्त द्रत्यपि केचिदिति कृतं पञ्जवितेन ॥ २५॥

द्रखनुमानदिधितौ अवच्छेदकत्वनिम्तिः

समाप्ता ।

न च कम्बुगीवादिमात्रास्तीति ग्रन्टस्य निरुक्तप्रामाखाप्रामा-खव्यवहारादेव कम्बुगीवादिमत्त्वस्यावच्छेदकत्वं, कल्पनीयं, तद्व्यवहारस्थान्यथाप्युपपादितत्वादिति। मैवम् ग्रन्वयव्यतिरेका-द्यथावच्छेदकत्वप्रकारकज्ञाने गौरवज्ञानं प्रतिबन्धकं तथावच्छे-दकत्वस्य सम्बन्धविधयाभानिऽपीति विनिगमनाविरहादुभयी-रिप प्रतिबन्धकत्विमत्येके। ग्रपरे तु भवच्छेदकत्वातिरिक्त-धन्ममात्राप्रकारकावच्छेदकत्वावगाहन एव तस्य प्रतिबन्धकत्व-मित्याहु:॥२५॥

> इति महामहोपाध्यायक्षणदाससार्व्वभीमप्रणीतायां भनुमानदीधितिप्रसारिख्यां श्रवच्छेदक-निरुक्तिः समाप्ता।

श्रय सामान्याभावः।

तत्त्वचिन्तामणि:।

यन्यनिष्ठवक्केर्धूमवत्पर्व्वतव्रखन्ताभावप्रतियोगित्वे-ऽपि तत्प्रतियोगिता न विक्कित्वनाविक्तियांते धूमवित विक्कित्तांस्तीत्यप्रतीतेः सामान्याविक्तिव्वप्रतियोगिताका-भावः पृथगेव यन्यथा सकलप्रसिद्धह्रपाभावे प्रसिद्ध-ह्रपवदन्यत्वे चावगते वायौ ह्रपं न वा, वायूह्रपवाव्वविति संशयो न स्थात् विशेषाभावकूटस्य निश्चितत्वात् ॥१॥

द्रति तत्त्वचिन्तामणी सामान्याभावव्यवस्थापणं

समाप्तम् ।

दौधिति:।

ननु य एव मिलिता वज्ञाभावाः। जलज्ञदादी विज्ञनीस्तीतिधियं जनयन्ति, त एव प्रत्येकं धूमविति महानसादी वर्त्तन्ते, तव च तेषां खखावच्छेदकतत्त-

प्रसारिणी।

व्याप्तिलचणानन्तरं सामान्याभावय प्रथगेविति ग्रम्थस्याव-तारार्थमाच, ननु य एविति । सामान्याभावास्त्रीकर्तृमते चालनी-न्यायेन धूमाधिकरणे वर्त्तमानास्तत्तदभावा एव जलङ्गदायैका-धिकरण्यापदाः विङ्गिन्ति।तिधियं जनयन्तीति, तदादायाऽव्याप्ति- दिक्त त्वाविक्त त्वेयिधका राष्ट्र निष्ठिका याः प्रतियोगि-तास्तदवक्केदकमेव विक्तित्वमतोऽव्याप्तिः। न चैवं विक्ति-त्वाविक्त त्रस्य तदृत्तित्वा त्र तथात्वं, तथा सित ऋदत्व-तिधूमाभावप्रतियोगितावक्केदक ऋदावृत्तित्वाविक त्रस्य विक्तमदयोगोलक वृत्तित्वादितव्याप्तेः॥१॥

अयानुगतं रूपं तत्तदभावप्रतियोगितानां नाव-च्छेदनम्, अनवच्छेदनमेव तर्द्यभावप्रतियोगितायाः

रित्यर्थः । प्रतियोगिवैयधिकरण्यं सङ्गमयद्वाहः, तत्न चेति । खंप्रति-योगिता । ननु तत्त्वङ्काभावप्रतियोगिताया यथा तत्त्वङ्कित्वम् प्रवच्छेदकं, तथा तस्या एव मिलनापद्वाया विक्कित्वमापे प्रति-योगितावच्छेदकं, तथाच तत्त्त्वप्रतियोगितावच्छेदकाविच्छित्रान-धिकरण्लमेव हेतुमतो नास्तीत्याहः, न चैविमिति । तथा सती-त्यादि । जलङ्कदे इदावृत्तिर्नास्तीति बुद्धियवित्तत्तदुदावृत्ति-व्यक्तिप्रतियोगिकाभावविषया तत्तदूमा अपि तन्मध्यपतिता-स्तयाच तत्तदूमाभावप्रतियोगितावच्छेदकं इदावृत्तित्वं, इदा-वृत्तित्वाविच्छदं चायोगोलकलादिकं विक्किमित वर्त्तत एव, तथाच तत्तद्वमाभावकूटस्थापि स्वप्रतियोगितावच्छेदकाविच्छन्नसमाना-धिकरण्लादतिव्याप्तिः ॥ १॥

एतङ्गीत्या चेदिदमनुगतं रूपं नावच्छेदकां, तर्ष्टि सम्मुखत एव तत्त्तबूमाभावप्रतियोगिताया स्नतिरिक्षद्वत्तित्वाबूमलमनव- श्रभावान्तरे मानाभावात्। तथाच तद्रूषाविष्ठन्न-साध्यके व्यभिचारिग्यतिव्याप्तिरत श्राह, सामान्येति। संशयान्यथानुपपत्तिं प्रमाणयति, श्रन्यथेति। वाया-

च्छेदकमेवेत्यतित्याप्तिरित्याह, श्रयेत्यादिना। ननु कयं पूर्वः कत्येऽतित्याप्तिः उत्तयुत्त्या प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धेः। न च गोलाभाव एव तथा। तत्राप्यृत्तयुत्त्या इदावृत्तिलस्य प्रतियोगितावच्छेदकलात्। न च इदलाभाव एव तथा। तत्राप्युत्तयुत्त्या घटावृत्तिलादेः प्रतियोगितावच्छेदकलात् तदवच्छित्रस्यायोगोलकहत्तित्वाच। न चायोगोलोकहत्तिरूप-सक्पाभावस्तथा। तत्चणीयायोगोलकाहत्तिर्नास्तीतिप्रतीते-स्तद्र्पाभावस्थापि तत्चर्णीयायोगोनकावृत्तिलेन रूपस्ररूपा-भावस्थापि स्त्रप्तियोगितावच्छेदकतत्चणीयायोगीलोकावृत्ति-लाविक्छनचणान्तरतद्गत्तिसमानाधिकरणलात्। एवमन्यद-प्यू ह्यम्। अव केचित् ऋतिव्याप्तिपदमसभावपरम्। परे तु श्राकाशाभाव एव तादृशः। न च इदावृत्तिमध्यपतिताकाशाद्य-भावोऽपि तथा। यस्य इदाहत्तेरभावाभावेन तथा बुडाभाव-स्तदभावस्यैव तथालं कल्पत द्रत्याकामामावातिरिक्तानामेव तस्रितियोगितावच्छेदकमिति । न चैवं ऋदान्यत्वाभावस्रैव प्रति-योगितावच्छेदकं इदाष्ट्रतित्वं, न तु धूमाद्यभावस्थेति वाचं, तयापि धूमायोगोलकद्वत्तियिकिञ्चिदन्यतरत्वाद्यविच्छन्नाभावस्थैत-द्वादिमते तत्तदभावरूपलादूमाभावस्थाप्यन्यतरलं प्रतियोगिता-

विति । यद्यप्ययं संशयो न वायुविशेष्यकः तस्य विशेषणत्वेनोक्केखात्, न वा रूपविशेष्यकः तथा सति रूपतद्भावयोविरोधिनोरकोटितायां प्रकृतानुपयोग-प्रसङ्गात्, तथापि वायूरूपवान् तदभाववान् वेति रूप-तदभावकोटिकसंशये तात्पर्यम् । अन्यस्तु रूपवत्तद-न्योन्याभावकोटिक द्रति नाभेद द्रति सम्प्रदायविदः।

वच्छेदकमिति एवं संयोगावच्छित्रगुणाद्यभावमादायापि बीध्यम्। उन्नेखादितिसप्तस्यन्तेनोन्नेखादिति भावः। तथा विशेषणस्येव कोटिलादित्यर्थः । प्रक्तति । तावद्रूपाभावनिर्णयं वर्णयतो मूलकारस्य रूपसामान्याभावव्यवस्थापने तात्पर्यं, तच रूपाभावकोटिकसंग्रयमादायैव निर्व्वहतीति भावः। तथापी-त्यादि। रूपरूपाभावकोटिको वायुविशेष्यकः संगयोऽनुभव-सिद्वतया द्रवद्भव:। तस्य च प्रव्दान्तराभावादस्यैव प्रव्दस्य तत्र तात्पर्थम्। शब्दमन्दर्भमेव सम्प्रदायविच्वेनोहात्र शब्द-सन्दर्भमेव व्यवस्थापयति विरुद्धयोरित्यादिना, नव्या इत्यन्तेन। तयाच वायौ रूपं नवेत्यस्य रूपं विशेष्यमेव. न वेत्यत नजर्थी-ऽभावोऽपरो विश्रेष्यः उभयनैव वायुष्टत्तित्वमन्वितमिति भावः। यद्यप्यनापि सप्तम्ययी हत्तित्वमेव विशेषणमिति वायुविशेषणक इत्यसमातं, तथापि तस्य परम्परया विशेषणले तात्पर्थमिति भाव:। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां भिन्नप्रकारकनिर्णयस्य संशयप्रतिबन्ध- विस्डयोरेकधिक्संकसंसर्गावगाहिज्ञानमेव संगयो न तु तदुभयप्रकारतापि नियता, तथाच रूपतदभाव-विशिष्यको वायुविशिषणकोऽसाविति तु नयाः। वायु-वृत्तित्वतदभावकोटिको रूपधिक्मंक एवायं संगयः, ग्रिधकरणे तत्तदभावान्यतरिनश्चयस्यापि तचाधिकर-णवृत्तित्वसंगयविरोधित्वात्, ग्रन्थया भूतले घटतद-भावान्यतरिनण्येऽपि घटो भूतलवृत्तिनं वेति संगय-प्रसङ्गादित्यपरे। ग्रयेतावन्त्येव रूपाणीत्यनिर्णयात् यावद्रूपाभावानिर्णये संगयो न विस्थ्यत द्रति चेत्, यावद्रूपाभावानिर्णय द्रत्यस्य यावन्तो रूपाभावास्तेषां

कलमाँ भेप्रेत्यपरेषां मतम् श्राह्न, श्रिष्ठकरण इति। श्रत्न च न वित्यच भावेन समं वृत्तिलस्यैवान्वयः। तथाच वृत्तिलवृत्तिला-भावकोटिको रूपविशेष्यक एव संग्रयः मूलोक्तविशेषाभाविनर्ण-यस्य स्वातन्त्वेरण प्रतिबन्धकलमिप्रेत्यावतार इति स्वातन्त्वेरण प्रतिबन्धकलमेव व्यवस्थापयित, श्रन्थयित। श्रत्न चणविलस्वादिना-प्यन्त्यव्यतिरेकावन्यथासिद्वावित्यस्वरसो बोध्यः। रूपवृत्तियावत्वा-विच्छित्राभावानां रूपाभावानामेव यावतां वस्तुतोऽनिर्णयः, वस्तुतो यावन्ति रूपाणि तावदभावानाम्। यावद्रूपत्वेन तदभावानामिति चत्वारः कल्पाः तथित। वस्तुतो यावन्तोऽभावा यावन्ति च रूपाणि तेषां तदभावानाञ्च निर्णयः प्रकृतं वक्तंत एविति भावः, योग्यान्दप-

यावस्वेन रूपेण तेषां यावन्ति रूपाणि तावदभावानां यावद्रूपत्वेन तदभावानां वा अनिर्णय दूखर्यः। न प्रथमत्तीयी तथानिणींतत्वात्, नेतरी प्रतियोगितद-भावयोर्यावत्त्वानु खेंबिऽपि योग्यानुपलब्ध्या भूतले घटो नास्तीति निश्चयमाचादेव घटतदभावसंग्रयोक्छेददर्भ-नेन तस्याकिञ्चित्करत्वात्। न चातिरिक्तसस्भावना-विरहसहक्रत एवाभावनिश्वयस्तत्प्रतिबस्वनः, ससा-वना च, रूपं पार्थिवादिचितयभिन्नं न वेत्याकारा निवर्त्तते चेयं रूपलावच्छेदेनैतिचितयभिन्नलाभाव-निश्वयादेविति वाच्यं, गौरवात्, विनापि श्रतिरिक्त-सक्सावनां विशेषाभावनिश्चये सामान्यसंशयदर्श-नाच॥२॥

लक्षेत्रति। यावलानु से खस्फोरणार्थम्। तथा निषयस्य प्रति-बस्यक्त देशि सम्भावनाया उत्तेजकलं प्रमुच्य निराकरोति, न बेत्यादि, रूपलावच्छेदेनेति। तथाच स्वरूपलस्य भिन्नलाभावा-बच्छेदकतया व्यावर्तकलात्ति न्युंक्तैवेति भावः। नन्वयव्यति-रेकाभ्यां तथा गौरवमप्यास्थेयमित्यत श्राह्न, विनेति। तथाच प्रकारिऽतिरिक्तसम्भावनां विनाणि विशेषाभावनिर्णये सामान्यसंश्र-योऽनुभवसिद्व इति भावः॥ २॥ श्रथाभावस्य सामान्याविक्ति द्वप्रतियोगिताकत्वनिश्चय एव तादृशसंशयविरोधी, श्रन्यथा तवाप्यतिप्रसङ्गात्, स च न प्रकृते, श्रभावस्य च याविद्वश्रिषाभावाधिकरण-वृत्तित्वेन विशिष्टस्य तद्वक्छेदेन वा सामान्याविक्तिद्व-प्रतियोगिताकत्वं, सम्भवति चेदं, तादृशाभावप्रति-योगिताया श्रतिरिक्तत्वात्, तेन नैकविश्रेषवतो विश्रेषा-

यज्ञपति द्रषणमुद्वाटयति अधित्यादिना। अतिप्रसङ्गादिति, तडिमें किन्ययमात्रस्थैव प्रतिबन्धकत्वे प्रमेयत्वादिना तथा निषये-ऽपि प्रतिबन्धः स्थादिति भावः। स चेति। सामान्याविक्छन्न-प्रवियोगिताकत्वनिश्वय इत्यर्थः। नतु याविहरेषाभावानामेव सामान्याविक्शत्रपतियोगिताकले मिलितघटइयवित घटो ना-स्तीतिप्रतीतिप्रमङ्ग इत्यत श्राह, श्रभावस्य चेति। नन् तत्त-दिधिकरणवृत्तित्वविविष्टानामेव तेषां सामान्याविच्छन्नप्रति-योगिताकले नअर्थ एव भावीऽभावश्वेति भावाभावकरं हि तलमित्यत ग्राह, तदवच्छेदेन विति। याविहिमेषाभावा-धिकरणृष्ट्रतित्वावच्छेदेनेत्यर्थः। तथाच सामान्यावच्छित्रप्रति-योगिताकत्वं व्यासच्यवत्तीति नोक्तदोष इति भाव:। ननुया विशेषाभावप्रतियोगिता सैव चेत् सामान्धाविच्छन्ना, तदा विशेषा-न्तरवत्यपि सामान्याविक्तिन्नप्रतियोगिताकाभावौ वृत्तौ एवेत्यत भाइ, सभावति चेति। तथाच विलचणप्रतियोगिताकालं तत्तद-

न्तराभाववत्त्वेन सामान्याभाववत्त्वप्रसङ्गः। न च प्रति-योगितावच्छेदकभेदस्याभावभेदिनयामकत्या भेद-सिडि:, प्रतियोगिभेदस्य तत्त्वे एकघटप्रतियोगि-कस्य प्रागभावादिचतुष्कस्याभेदप्रसङ्गात्, अवच्छेदकन्तु भिद्यत एव, तत्र क्वचित्तादात्म्यस्य क्वचित्संसर्गस्य क्वचि-त्पूर्व्वापरकालीनतह्वटत्वादेश्च तथास्वादिति वाच्यं, संसर्गप्रतियोगिविशेषणसाधारणस्यैकस्यावच्छेदकत्वस्य दुर्व्वचत्वात्, पूर्व्वापरकालीनत्वादेश्वंसादिप्रतियोगि-तावच्छेदकत्वे मानाभावाच । किञ्च अवच्छेदकभेदस्या-

धिकरणावच्छेदेनेति भावः । इदमेव स्फुटयित तेनेति । मित्रमतमाग्रङ्का निराकरोति । न चेति । तस्व इति । अभावभेदनियामकल इत्यर्थः, अवच्छेदकित्वित । अत्रावच्छेदकलं संसर्गप्रतियोगिविशेषणसाधारणमेव वक्तव्यं, तेन घटो ध्वस्त इत्यादिप्रतीती पूर्व्वकालीनलादेः प्रकारलोपवर्णनं परास्तमिति । ननु प्रतियोगिविशेषणमेवावच्छेदकं वक्तव्यम् इत्यत आह, पूर्व्वापरकालीनलादेरिति । अय सम्बन्धप्रतियोगिविशेषणसाधारणव्यवहारादेवावच्छेदकलमेकं वाच्यं, तच्चातिरिक्तमनितिकं वेत्यन्यदेतत्, घटो ध्वस्त
इत्यादिप्रतीती तु पूर्व्वापरकालीनलादेः प्रकारतया सम्बन्धविधया
वा अवच्छेदकलं वक्तव्यम्, उत्तरकालं तथा सन्देहाभावादित्यन
भाह, किञ्चेति । अत्यन्ताभावादीति । खक्पभेदमिभप्रेत्य चैतत् ।

भावभेदिनियामकालं न तक्जनकालम्, अत्यन्ताभावा-दिखरूपस्य तस्याजन्यत्वात्। नापि तद्याप्यत्वं, वैयधि-करण्यात्, अतएव न तद्यापकात्वमपि, अभेदेऽप्यविरो-धाच। न च तदितरधर्माविक्छन्नप्रतियोगिताकालं तद-विक्छन्नप्रतियोगिताकान्यत्वस्य व्याप्यं, मानाभावात्। अतएव च समनियतसुखदुःखादितक्तत्संस्यापरिमाण-व्यक्त्यादिनानाधर्माविक्छन्नोऽप्यभिन्न एवाभावः, भेद-

नापीत्यादि। यत प्रतियोगितावच्छेदकभेदस्तत्वाभावभेद इत्याकारकमित्यर्थः। वैयधिकरण्यादिति। इदमपि खरूपभेदमभिप्रेत्य। अन्योन्याभावाभिप्राये तु घटादावेव सामानाधिकरण्यं
सुलभमिति। अतएव, वैयधिकरण्यादेव। व्यापकत्वपच्चे दूषणानतरमाइ, अभेद इति। अभावेक्य इत्यर्थः। तथाचात्राभावेक्येऽपि
यत्राभावभेदस्तत्रप्रतियोगितावच्छेदकभेदः सिद्धात्विति भावः।
वैयधिकरण्यादिकसृष्टृत्य दूषयति न चेत्यादि। तथाच रूपत्यावच्छिन-प्रतियोगिताकोऽभावस्तद्रूपत्यावच्छिनप्रतियोगिताकाद्विद्यते। तदतिरिक्तधभाविच्छनप्रतियोगिताकत्वात्। घटाभाववदिति मानसुन्यम् अत्राप्रयोजकत्वमाह, मानाभावादिति।
अतएवेति। यत एव प्रतियोगितावच्छेदकभेदेऽपि अभावाभेद
इत्यर्थः। सुखदुःखाभावयोरैक्ये दुःखकाले सुखाभावसच्वादिदानीं
दुःखं नास्तीति ज्ञानापत्तिरित्यत आह, संस्थेति। एकत्विमत्यर्थः।

सिडिस्तु भाववदभावस्यापि विष्ठ डांक्मीध्यासादेव, अतएव गगनादीनामवृत्तीनां समनियतानां वा धक्माणामेक एवात्यन्ताभावः, युगपदृत्यद्भविनष्टानां समानदेशानामसित वाधके एक एव ध्वंसः प्रागभावो
विति॥ ३॥

व्यधिकरणधर्माविक्तिन्नप्रतियोगिताकोऽपि चेद-भावः प्रामाणिकस्तदा तस्यैकस्यैव प्रतियोगिताः सर्व्येरेव

दिलादिनामव्याप्यहत्तिलादितिभावः। तश्चभावभेदकं किमस्तीत्यत श्राह, भेदिसिहिरिति। श्रभाव इति श्रेषः। श्रभावे विश्रहो धर्मःः श्रत्यन्ताभावे प्रतियोगिष्टत्यभावत्यम्। श्रन्योन्याभावे प्रतियोग्य-हत्तित्वे सति सदातनाभावत्वम्। प्रागभावे तज्जनकाभावत्वं ध्वंसे तज्जन्याभावत्यम्। श्रष्टत्यभावस्य प्रत्यचाभावादाहः, समनिय-तानामिति। नियमत्र देशतः कालतत्रेति, तन न पूर्वोक्ते वैषम्यम्, श्रसति वाधक इति। श्राखामूलाविष्ण्यनाकाशसंयोगयोर्यूगपदुत्प-न्नसमदेशयोरिप एकिस्मन् ध्वंसे प्रागभावे वा परस्परानवच्छेदेऽपि ताद्यप्रत्ययप्रसङ्गो वाधक इत्यर्थः। वेचित्तु पाकन्नानामिकस्मिन् ध्वंसे प्रागभावे वा तेषामभेदापत्तिः इतरकारणस्य तुत्यत्वात्, कार्यभेदस्य च कारणभेदिनयस्यत्वादित्याहः॥ ३॥

समनियताभावानामैक्यमभिष्रेत्यान्न, श्राकाशाभाव एव वैति। तत्तदिति। सामान्याभावाव क्येदककालदेश इत्यर्थः तेन शाखाक-

Markandeya Purana, Fasc. 5-7 @ /10/ each *Mimārinsā Darçana, Fasc. 10-19 @ /10/ each	•••		• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	6	Š.,
Nirukta Vol IV fore 1.8 @ /10/ each	••				
*Nitisara, Fasc. 3-5 @ /10/ each			•••		
*Nitisara, Fasc. 3-5 @ /10/ each Nityācārapaddhatih, Fasc. 1-7 @ /10/ each Nityācārapradīpah Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Nyarabin Jutha Kon. 1 @ /10/ each	73 19	@ /10/ anoli	•••	4 6	
Nityacarapradipan vol. 1, Fasc. 18; vol. 11, Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each	rasc, 1.5.	(w /10/ each		0	
	26 ; Vol. !				
*Nyāya Kusumāñjali Prakaraņa Vol. I, Fasc.: 1-3 @ /10/ each Nyayasarah Padumawati, Fasc. 15 @ 2/ *Parigişta Parvan, Fasc. 35 @ /10/ each		• • • •			
Nyayasarah 1 5 @ 2/	•••	•••	•••		
*Paricista Parvan. Fasc. 3-5 @ /10/ each				ì	
Padumawati, Fasc. 15 @ 2/ *Pariçişta Parvan, Fasc. 35 @ /10/ each Prākrita-Paingalam, Fasc. 1-7 @ /10/ each				4	
Prithivirāj Rāsa. Part II, Fasc. 1-5 @ /10/ ea	ch			3	
Präkrta Laksanam Fasc. 1 @ 1/8/ each		•••		1	
Paräoara Smrti Vol I Ruse 18 · Vol II Ru	вс, 16 ; V	ol III,	- 11	3.74	
Fasc. 1-6 @ /10/ each		•••		12	
Paragara, Institutes of (English) @ 1/- each			•••	1	
Pariksamukha Sutram Prabandhacintāmaņi (English) Fasc. 1-3 @ 1/4/	each		• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	3	1
Rasarnayam, Fasc. 1-3				3	- 1
Saddarsana-Samuecaya, Fase, 1-2 @ /10/ each	***			1	: ;
Samaraicca Kaha Fasc. 1-3, @ /10/ Sankhya Sütra Vrtti, Fasc. 1-4 @ /10/ each	•••			2)
Sankhya Sütra Vṛtti, Fasc. 1-4 (@/10/ each Ditto (English) Fasc. 1-3 @ 1/- *Sankara Vijaya, Fasc. 2-3 @/10/ each	each			3	
Ditto (English) Fasc. 1-3 @ 1/- Sankara Vijaya, Fasc. 2-3 @ /10/ each Six Ruddhist Nyava Tracts			•	1	
Six Buddhist Nyaya Tracts Srāddha Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ /10/ each				3	- 1
Sradina Kriya Kaumudi, Fasc. 1-0 (2) /10/ each Sradilura Stotra (Sanskrit and Tibetan)	•••	•••		2	1
Sucruta Saidhita, Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each		***			
Suddhikaumudī, Fasc 1-4 @ /10/ each				2	
Städdha Kriyā Kaumudi, Fasc. 1-6 @ /10/ each Sragdhnaf Stotra (Sanskrit and Tibetan) Suçrata Sanihitā, Eng. J Pasc. J @ 1/- each Suddhikaumudi, Fasc 1-4 @ /10/ each Suryas Siddhanta fasc. 1	a. 1. • • • •		•••	1	
Svainika Sastra			•••	1	
*Taittreya Brahmana, Fasc. 11-25 @ /10/ each					
, Pratisakhya, Fasc. 1-3 @ /10/ each			•••	1	
Whaitreya Brahmana, Fase. 11-25 @ /10/ each Pratisakiya, Fase. 1-3 @ /10/ each Pratisakiya, Fase. 1-3 @ /10/ each Pantisakiya, Fase. 1-3 @ /10/ each Pantya Siráhinana, Fase. 10-19 @ /10/ each Pantra Vărteka (English) Fase. 1-8 @ /14/ each Pratira Cintámani, Vol. 1, Fase. 1-9, Vol. 11, Fase. 1, 20/ /11/ each Vol. 11, Fase. 1, 40/ /17, Fase. 1, 20/ /10/ Eattvathadhigama Sutram, Fase. 1-3 @ /10/ each Cirthagani, Fase. 1-4 @ /10/ each Cirthagani, F			•	11	1
Pantra Varteka (English) Fasc. 1-8 @ 1/4/ each				10	•
Pattva Cintămani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, F.	isc. 1-10, V	ol. III, Fasc	. 1-2,		
Vol. IV, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part IV, Vo	I. II, Fasc. I	1-12@/10/	each	24	- (
Ditto Prakas, fase, 1-2 @ /10/	each		•	1	4
Pattvärthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ eac	h		•••	1	1.
rattvarmaninguna sutran, rase, 1-3 @/10/ eac firithaeintamoni, fase, 1, @/10/ each frikāugā-Maṇḍanan, Fase, 1-3 @/10/ each Fulsi Satsai, Fase, 1-7 @/10/ each Elpanita-bhava-prapahea-kablā, Fase, 1-2, 5-13 Volumraksāb, (Tust and Rudish New, 2-3 @).	•••				10
Pul'si Satsai Fase, 1-5 @ /10/ each	***	***		3	1
«Upamita-bhava-prapañea-kathā, Fase, 1-2, 5-13 (@ /10/ each			6	1
regarding transfer, (10x0 mir 1mg tist) Page, 1-0 (@ 1	- each	***		- 6	. (
Vallāla Carita, Fasc 1 @ /10/ Varsa Kriyā Kaumudi, Fasc 1-6 @ /10/ each Vāyu Purāna, Vol. I, Fasc 3-6 ; Vol. II, Fasc.		***		0 3	10
Vayu Purana, Vol. I, Fase. 36; Vol. II, Fase.	1-7 @ /10		•••	10.00	1
Vidhāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol. II. Fasc. I @	/10/ cach			5	11
Ditto Vol. II, Fase, 2-4 @ 1/4/			.,.	- 3	
vivacigratuakara, Fasc. 1-7 (g/10/ cach Irlut Svavambhii Purāna Fasc. 1-6 @/10/ cac	ь			3	1;
Yoga Aphorisms of Patanjali, Pasc. 3-5 @ /10/	each			1	1
ogasastra of Hemchandra Vol. I. Fasc. 1-3				3	1:
Vigyu Furana, Vol. 1, Fase, 35; Vol. 11, Fase, 1 & William Parjiata, Fase, 1 -8 Vol. 11, Fase, 1 & Ditto Vol. 11, Fase, 2.4 @ 1/4 Videlgratuskura, Fase, 1 -7 @ 1/0 case, 1 -6 @ 1/9 case, 1 -7 @ 1/0 case, 1 -5 @ 1/0 case, 1 -6	8.			2	
A Lower Ladakhi version of Kesarsner Pase 1.	4 @ 1/- enel	1	•••	. 7 -	1
Iyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1			A	1	- 0
A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1— yayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1— yay-Sam S'hi Tin, Fasc. 1—4 @ 1/- cach ttogs brjod drng hkhri S'in 'Tib, & Sans. Avadi Fasc. 1—8; Yol. II. Fasc. 1—7 @ 1/- cach				4	٠,
Gogs or job depag akuri San (1710, & Sans, Avadi Ruse, 1-8: Vol. II. Ease 1-7 @ 14 avel	ana Katpala	VOI. 1,		15	į,
				14	(
Arabic and Persia	Secies.				ġr.
Arabic and Persian Alamgirahanah, with Index, (Text Frasc. 1-13 & I-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- kbarnamah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ enc	2 /10/ each	••		8	2
harmanah with Index Fasc 1-37 @ 192 me	unch h	•••		4 55	9 8
The other Pasciculi of these works are out	*	3		11	
The other rescicuit of these works are out t	· unocie an	enti biere	CODI	DB 10基	un(

Tr. Valley Tomat on Original		
Ain-l-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. 1, Fasc. 17, Vol. II, Fasc. 15, Vo	33 1 III 36	
Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-7 Vol 3 @	1/4/ each 20	
Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/	0	
*Bādshāhnāmah, with Index, Fasc. 1-19 @ /10/ each	11	
Conquest of Syria, Fasc. 1-9 @ /10/ each Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2 @ 1/- each	Rs. 5	
Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library		0
Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1-3 @ 1/ each	3	0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1-21 @		8
Fa rnang-i-Rashidi, Fase, 1-14 @ 1/8/ each Fib rist i-Tūsi or Tūsv's list of Shv'ab Books Fase 1.4 @ 1/2 each	ch 21	0
Fih rist-i-Tūsī. or, Tūsy's list of Shy'ah Books, Fasc. 1-4 @ 1/- eac Futūḥ-uṣ <u>h-Sh</u> ām of Wāqidī. Fasc. 1-9 @ /10/ each	5	
Ditto of Azādi, Fasc. 1-4 @ /10/ each	2	8
History of Gujarat Haft Asman, History of the Persian Masnawi, Fase, 1 @ /12/ each	1	
History of the Caliphs, (English) Fase, 1-6 @ 1/4/ each	-	12
Iqālnamah-i-Jahāngīri, Fasc. 13 @ /10/ each	1	14
Isabah with Supplement, 51 Fasc. @ 1/- each	51	0
Ma'sāir-i- Ālamgiri, Fasc. 1-6 @ /10/ each	3	12
Macagir-ul-Umara, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-9; Vol. III, Index to Vol. I, Fasc. 10-11; Index to Vol. II, Fasc. 10	1-10;	
Index to Vol. III, Fasc. 11-12 @ /1/ each	35	0
Maghāzi of Wāqidī, Fasc. 1-5 @ /10/ each	3	2
Marhamu 'L-Ilali 'L-Mu'Dila Muntakhabu-t-Tawarikh, Fasc. 1-15 @ /10/ each	1	. 0
Muntakhabu-t-Tawarikh, Fasc. 1-15 @ /10/ each Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, I	9	6
1-5 and 3 Indexes : Vol. 111, Fasc 1 @ 1/ each	16	- 0
Muntakhabu-l-Lubab, Fasc. 1-19 @ /10/each	11	14
17660 Fate 9, Fasc. 1 144	1	0
Nukhbatu-I-Fikr, Fasc. 1 (2) /10/ Nizāmi's Khiradnāmah-i-Iskandari, Fasc. 1-2 (2) /12/ each	0	10 8
Onwaning 's Savvad of Khuda Yar Khan 'Abbasi edited in the original	inal	
Persian with English notes by Lieut. Col. D. C. Phillott	5	0
Riyazu-s-Salātin, Fasc. 1-5 @ /10/ ench Ditto (English) Fasc. 1-5 @ 1/ Tadhkirs-i-khushusisan	0	2 0
Tadhkira i khushnavisan	8	o
Tabaquāt-i-Nāsiri, (English), Fasc. 1-14 @ 1/- each	14	0
intto index	1	0
Tärikh-i-Firûz Shāhi of Ziyāu-d-dîn Barui Fasc. 17 @ /10/ each Tārikh-i-Firûzshāhi, of Shams-i-Sirāi Aif, Fasc. 16 @ /10/ each	4	6 12
Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1-2 @ 1/8/ each	8	0
Tuzuk-i-Jahangiri, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/	1	0
Wis-o-Ramin, Fasc. 1-5 @ /10/ each	3	2
Zafarnāmah, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-8 @ /10/ each	10	10
ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.		
1. ASIATIC RESEARCHES, Vols. XIX and XX @ 10/ each	20	
2. PROGREDINGS of the Asiatic Society from 1870 to 1904 @ /8/ per		
 JOPERAL of the Assistic Society for 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1 		
1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1	887 (7),	
1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1 1888 (7), 1889 (10, 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1893 (11), 1894	
(8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8), 1899 (8), 1900 (7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Membe), 1901	
(1), 1102 (3), 1303 (3), 1304 (10), (2) 1/3 per No. to atember (4), 2/ per No. to Non-Members	its with	
N. B.—The jigures enclosed in brakets give the number of Nos. in c		
4. Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date, (Nos. 1-4 of 1905	are out of	
stock), @ 1-8 per No. to Members and Rs. 2 per No. to Non- 5. Memoirs, 1905, to date. Price varies from number to n	members.	
5. Menours, 1905, to date. Price varies from number to in Discount of 25% to Members	dimoor.	
6 Contenary Review of the Researches of the Society from 1784-189	33 3	0
7 Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal, 1910) 8	e
8. Moore and Hawitson's Descriptions of New Indian Lepic Parts 1HI, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each	topters, / 18	46
p. Kagmiraçabdümeta, Parts I & II @ 1/8/	8	Û
to Passian Pranslation of Haji Baba of Ispahan, by Haji	Shaikh	
Ahmadi-Karmasi, and edited with notes by Major D. C. Phill	ott 10	0
Salar State	37785555555	

BIBLIOTHECA INDICA .

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL NEW SERIES No. 1334.

अनुमान-दीधित-प्रमारिणी



addy group additing alara ad alara de servidad en aralara ara a de company ara a de company a de

ANUMANA DĪDHITI PRASĀRINI

BY

KRISHNA DAS SARVABHAUMA

EDITED BY

PANDIT PRASANNA KUMAR TARKANIDHI

Professor, Sanskirt College

EASCICULAS III.

Calcutta:

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHAKRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS.

No. 5, Nandakumar Chawdhury's 2nd Lane.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 1 PARK STREET.

1912.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CACUTTA,
AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MR BERNARD QUARITCH,
11, GRAFTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W, AND MR OTT
HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY,

Complete copies of those works marked with an asterisk cannot be supplied - son

of the Fasciculi being out of stock BIBLIOTHECA INDICA. • Advaita Brahma Siddhi, Fasc 2, 4 @ .10/each ... Rs. 1 1 5 Aitereva Lochana. • Anu Bhāshya, Fasc 2-5 @ /10/ each Aphorisms of Sandilya, (English) Fasc 1 @ 1/-1 Astasāhasrikā Prajnāpāramitā, Fasc 1-6 @ /10/ each 3 *Atharvana Upanishad, Fasc 4 5 @ /10/ each ... 1 3 1-7 @ 1/ each 1-7 @ 1/ each Bālam Bhatti, Vol I, Fasc. 1-2, Vol 2, Fasc. 1 @ /10/ each Baudhāyana Strauta Sutra, Fasc 1-3 Vol. II, Fasc 1-3 @ /10/ each 15 7 3 *Bhāmatī, Fasc 4-8 @ /10/ each Bhātṭa Dīpikā Vol I, Fasc 1-6, Vol 2, Fasc 1, @ /10 each 3 Brhaddevatā Fasc 1-4@/10/each Brhaddhai ma Purāna Fasc 1-6@/10/each Bodhiearyāvatāra of Çāntideva Fasc 3 Cri Cantinatha Charita, Fasc 1-3 ł Qataduşanı, Fasc 1-2 @ /10/ each 7 Catalogue of Sanskirt Books and MSS, Fasc 1-4 @ 2' each Qatapatha Biāhmaṇa, Vol I, Fasc 1-7, Vol II, Fasc I-5, Vol III, Fasc 1-7 Vol 5, Fasc, 1 4 @ /10/ each Ditto Vol 6, Fasc 1-3 @ 1/4/ each ... Ditto Vol VII, Fasc 1-5 @ /10/ Qatasāhasrikā Prajñāpāramitā Part, I. Fasc 1-14 @ /10/ each *Caturvarga Chintāmaṇ, Vol II, Fasc 1-25, Vol III Part I, Fasc 1-18 Part II, Fasc 1-10 Vol IV Fasc 1-6 @ /10, each Ditto Vol 4, Fasc, 7-8, @ 1/4/ each Catalogue of Sanskut Books and MSS, Fasc 1-4 @ 2' each - 3 8 36 Ditto Vol 4, Fasc. 7-8, @ 1/4/ each Ditto Vol. IV, Fasc. 8.9 @ /10/ 2 Ditto Vol. IV, Fasc. 89 @ /10/ Clockavartika, (English) Fasc 1-7 @ 1/4/ each *Çrauta Sūtra of Āpastamba, Fasc. 1:-17 @ /10/ each Ditto Çānkhāyana, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-4, Vol. III, Fasc. 1-4; Vol. 4, Fasc. 1 @ /10/ each Çiī Bhāshyam, Facc. 1-3 @ /10/ each Dāna Kriyā kaumudī, Fasc. 1-2 @ /10/ each 1:tto Āchārasārah Vol. II, Fasc. 1-7 @ /10/ each Cochbiliya Guhya Sutra, Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each Cochbiliya Guhya Sutra, Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each Vol III, r... Çiî Bhā-hyam, Farc I. Dāna Kriyā kaumudī, Fasc 1--2 Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol I, Fasc 1-4 @ / Gobhiliya Grihya Sutra, Vol I. @ /10/ each Ditto Vol II. Fasc -2 @ 1/4/ each Ditto (Appendix) Gobhila Parisista Grihya Sangraha 10 1 1 ... Ditto Grihya Sangraha Haralata Karmapradiph, Fasc. I Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each * * * Katha Sarit Sagara, (English) Fasc 1-14.@ 1/4/ each Katha Sarit Sagara, (English) Fasc 1-14.@ 1/4/ each Kūrma Purāna, Fasc s-9 @ /10/ each Lalita Vistara, (English) Fasc 1-3 @ 1/- each Madana Pamāta Fasc 1-11 @ /10/ each 17 • •, Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each Mahā-bhāga-pradīpōdyōta, Vol. I, Fasc. 1-9; Vol. II, Fasc. 1-12 Vol. III,

व्यधिकरणेर्धसीः सर्वीष्ठ समानासमानाधिकरणेः सम्बन्धेरविक्विद्यन्ताम्, आकाशाभाव एव वा तयास्ता-मिति। मैवम् एवं हि तत्तदेशकालाविक्विद्वानविक्विद्व-तत्तदिधकरणवृत्तित्वेन विशिष्टस्य तत्तदवक्वेदेन वा एकस्यैवाभावस्य घटपटगोत्वाध्वत्वादिप्रतियोगिताक-त्वसमावेन तत्त्रद्वेदेऽपि विलुप्येत। तत्तत्यतियोगि-कत्वं तत्तत्स्वभावो न च तवाधिकरणवृत्तित्यसान्त-भावोऽवक्केदकत्वञ्चेति समानम्। अतएव सामान्या-

पकालयोः संयोगरूपात्यन्ताभाववारणम्। यभावावच्छेदकानामानन्त्यात् प्रतियोगिन एव तद्वाच्यमित्याह, यनवच्छिनेति। यदा स्नावच्छेदकानवच्छेदकयोरण्यलानण्यलाभ्यां लाघवास्तरभेदः, तयाच स्नावच्छेदकदेशकालयोरण्यलं तत्र तदवच्छिनत्वस्थिकरण्यः वक्तव्यं यत्र त्ववच्छेदकावच्छिन्नत्वभिक्षत्वस्थिकरण्यः वक्तव्यं यत्र त्वनवच्छेदकायोरण्यलं तत्र स्नानवच्छेदकावच्छिन्नत्वभिक्षत्वस्थाप्तविक्तिः विश्वश्चे विज्ञावविद्यात्र प्रत्वविद्यात्रे एवसुत्पत्तिकालावच्छिन्नपर्याप्तविक्तिः विविध्रेष्टे विज्ञावविद्यात्र प्रतियोगिताकत्वमिति वाच्यं व्याप्यविक्तिः गोत्वाभावादी घटादिव्यत्तित्वविद्यात्रे गोत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताः काल्यमिति। यतएव घटपटगोत्वाख्यत्वत्यादि यथा संस्थेन वच्चति, विश्वष्टस्य तत्वे भावाभावकरंवितच्वादनुभवविदोध इत्यतः याह, तदवच्छेदेनिति। कल्यद्वयं निषेधयति यन्त्यभाव दत्यादि। एतत्कल्यत्वसुभयतोऽपि परिष्कृतं दूषयित, यत्रपविति। यत एव तत्-

विक्ति द्वप्रतियोगिताकालं व्यासच्यवतीत्यपि प्रत्युक्तम्, श्रव्यासच्यवत्तीस्तत्स्वभावस्य तत्तानुपपत्तेरतिरिक्तकल्पने च किमपराइमतिरिक्ताभावेन।

किञ्च व्यधिकरणयार्घटपटयार्डित्वप्रतीतिवदाधि-करणानामपि विशेषाभावानां युगपदिन्द्रियसिक्षकर्षे सामान्याविक्छिद्मप्रतियोगिताकत्वप्रत्ययोऽपि स्थात्, श्रिप च रूपान्तरेण सम्बन्धविधया वा व्यासच्यवित्ति-धक्षस्य ज्ञानेन यावदाश्रयसिक्षकष्ठीपेचा मानाभावात्, एवञ्च एकाभावसिक्षक्षेऽपि सामान्याभावबुद्धिप्रसङ्गः, याद्यशे च तस्य ज्ञाने यावदाश्रयाणां सिक्षकर्षीऽपेच्यते,

स्वभावो न तचाधिकरणनिवेशनिमत्यर्थः। ननृक्षमेव मन्धवित चेदिमित्यादिना प्रतियोगिता अतिरिक्षेति तस्या एव व्यासच्यव्यक्तित्वं कर्ण्यं नातिरिक्षाभाव इत्यत श्राष्ठ, किञ्चेति। ननु निरिधिकरणाभावप्रतोतिर्नास्येव व्यासच्यव्यक्तिधर्मस्यैव तदिधकरणाव्यक्तिले तत्र प्रतोतिरितिपूर्व्वापरितोषादाष्ठ, श्रिप चेति। रूपान्तरेणिति। प्रमेयत्वादिना तथाभाने न तदपेचेत्वर्थः। ननु व्यासच्यव्यक्तिधर्मस्य जोकिकप्रत्यच एव यावदाश्रयसिक्षपंपिचा तत्र च तद्विषयत्वं प्रकारतया सम्बन्धविधया वत्यन्यदेतत्, श्रत्रप्त संयोगसंसर्गकदण्डोति भानं दण्डपुरुषसिक्षक्षं एवत्यत श्राष्ठ, याद्ये चेति, तस्येति। व्यासच्यवक्तिधर्मस्येति व्यासच्य-

तच तेषां तक्षेदस्य च ज्ञानमपि तद्ज्ञाने तदभेदज्ञाने च तद्यहात् आश्रयभेदस्मेग तद्समदर्शनाच। न चाव याविष्ठशेषाभावानां प्रथमसुपिस्थितिः
सम्भवति, तत्प्रतियोगिनां विशेषतोऽनुपिस्थितिरिति
दिक्॥ ४॥

केचित्तु अनन्तविशेषाभावानां सामन्याविक्वत्र-

धर्मस्येत्यर्थः। तेषामिति। यावतामात्रयणामित्यर्थः। तद्वेदः याययभेद:। तद्जाने यावदाययाज्ञाने, भेदज्ञानव्यतिरेकात् कार्थ्यवितरेकमाइ, तदभेदेति। तदग्रहात् व्यासच्यव्यक्तिधर्मा-यहात्, दृढ़ीकर्त्तं व्यतिरेकमुक्काऽन्वयमप्याह, ग्राम्ययभेदेति। प्रक्तते उपपादयति, न चाल्नेति। विशेषत इति। तत्तदत्यन्ताभाव-ग्रहे तत्रतियोगिज्ञानस्यावश्यकलादिति। नन् व्यासच्यव्हित्तलं दिलसंयोगप्रक्रतप्रतियोगितापि साधारणं नैकं तल्लयं सामान्येन कार्यकारणभावग्रहः, विशिष्य तु कार्यकारणभावे प्रक्ततप्रति-योगितायां तथोपपादने साधकाभाव इत्यत ग्राह, दिगिति। यत्त पर्याध्याख्यसम्बन्धनियतविषयताविशेषमादायैव सामान्येनैव व्या-प्तिरिति। तद तत्तत्पर्थाप्तेरिप तत्तत् खरूपसम्बन्धरूपलादिति। दिगर्धेलु तादृश्प्रतियोगिताभावयोरतिरिक्तत्वकल्पने गमनाविरह एवेति, अतएव सार्ळभीममतेऽपि वच्चत्यप्रत्य-हैवेति॥ ४॥

सार्वभीममतमुद्वाटयति, वेचित्तिति। स व्यासज्यवित्ततं

प्रतियोगिताकात्वस्य तद्यासम्यवृत्तित्वस्य च कल्पना
मणेच्य लाघवात् सामान्याविक्वव्रप्रतियोगिताकात्वे
नैक एवाभावः कल्पाते कल्पनीयगरीरस्योभयव

तुल्यत्वेऽपि एतद्येच्य तस्य गुकत्वात्, विनिगमना
भावेऽपि च सामान्याभावसिद्धिरप्रत्यूहेव, धर्माकल्पना
तोधिर्मादाल्पनाया गुकत्वं कल्पनीयानेकात्वप्रयुक्तम्।

प्रक्षतप्रतियोगिताच्यासच्यवृत्तित्वं, ननु भवताप्यतिरिक्तोऽभावः कल्पात इत्यत श्राह, कल्पनीयेति। उभयविऽपि धर्मिकल्पने धभाकत्यनेऽपौत्यर्थः, एतदपे छेति । सामान्याभावं तलामान्याविकः-न्नप्रतियोगितान त्यमपेच्य बहनां तथा कल्पने गौरविमत्यर्थः। ननु सामान्याविक्छन्नप्रतियोगिताकलकल्पनं किसर्धं मंसर्गस्य मंस-र्गकल्पने प्रयोजनाभावात्, किन्त्वेकीव प्रतियोगिता सैव मामान्या-विच्छिता बह्ननां संमगेरुपित्यत आह, विनिगमनिति। अयमर्थः एकाप्रतियोगितावसभावनिकृषिता वा अल्प्यत लग्नबद्दप्रति-योगितानिकपित एक एव वाभाव: कल्पात इति विनिगमनाविरह इति । इदं पुनरापातत एव, वस्तुतस्त सिंडे सामान्याभावे लाघवा-देकीव प्रतियोगिता कल्पाते अतएवावच्छेदक कचणाऽपि तथैवीता-मिति। निवासिव विनिगमकं यस्तियागिताया धमीक्पल-मभावस्य धर्क्षिक्षपत्विमिति तदुतं धर्मिक त्यनातो धर्मेक त्यनाया लघुत्विमिति अत्यवाह, धक्षेत्रत्यनात इति। तथाच धिर्मिणां बह्रनां कल्पाले बहुकल्पनम् एकस्यैव धर्मस्य कल्पनिमिति न चातिरिक्ताभावस्य तत्र च सामान्याविक्तः व्रप्तियोगि-ताक्तत्वस्यानन्तवाय्वाद्यधिकरणद्वत्तित्वस्य च कल्पना-मपेच्य क्षृप्तानन्तवाय्वाद्यधिकरणद्वत्तित्वानां यावद्-विशेषाभावानामेव सामान्याविक्तः प्रतियोगिताकत्वस्य तद्यासज्यद्वत्तित्वस्य च कल्पनेव लघीयसीति वाच्यम् एवं सत्यभावमाचासिडिप्रसङ्गादित्याहुः ॥ ५ ॥

द्रित तत्त्वचिन्तामणि-दीधितौ सामान्या-भावः समाप्तम् ।

लाघवमेव तन्मूलम्, प्रकृत तु धर्मस्वरूप एविति न तद्वतार इति।
एवं सतीति। घटाभावस्तावदेकोऽधिकः कल्पाः, तस्यानन्ताधिकरणहत्तित्वं च कल्पां तदपेच्य कृष्तानन्ताधिकरणानामेव तथा
प्रतीतिनियामकत्विमत्यभावमात्रासिडिरित्यर्थः। केचित्तु प्रतिवन्धकाभावस्य कारणतायां तावदनन्ताभावानां कारणत्वं कल्पात
इत्यतिरिक्तसामान्याभावस्य वा। एवम् अभावघटितयिक्तकल्पने
ताविद्येषाभावानां वा तथात्वं कल्पाते सामान्याभावस्य वेत्यत्र
इत्यमिव लाघवं तर्कमाहः॥ ५॥

इति महामहोपाध्याय-क्षण्यदाससार्व्वभौम-प्रणीताया-मनुमानदोधितिप्रसारिखां सामान्यभाव-व्यवस्थापनं समाप्तम् ।

🌣 श्रय विशेष-व्याप्तिः।

तत्त्वचिन्तामणिः।

यद्वा प्रतियोगिव्यधिकरण्खसमानाधिकरण्ख-न्नाभावाप्रतियोगिना सामानाधिकरण्यं यत्ममानाधि-करणान्यान्योभावप्रतियोगि यद्वन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं वा स्वसमानाधिकरणान्योन्या-भावाप्रतियोगियद्वत्कत्वं वा। अन्यवृत्तिविद्वितद्वतो-

दीधिति:।

यदेत्यादि । अथाव नानाव्यितिक्पादिसाध्यकैकव्यितिपृथिवीत्वादावव्याप्तिः । न च तत क्पवच्वादिकमेव साध्यं तच्च परम्परासम्बन्धेन क्पत्वादिकमेव
तेन च सम्बन्धेन न तदभावः पृथिव्यादाविति वाच्यं
क्षपादेरसाध्यतापत्तेः द्रव्यान्यत्वादिविशिष्टसच्वाद्य-

प्रसारिणी।

नानाव्यक्तीति। एकव्यक्तिहिलिधिकरणके तदभावस्थाभावा-दित्यर्थः एकव्यक्तीति। नानाव्यक्तिके तु यहेलिधिकरणे या साध्यव्यक्तिस्तयोरेव व्याप्तिवेक्तं शकात इति भावः। यज्ञपतिमतं निराकरोति, न चेति। रूपादेरिति। तथाच रूपमनुमिनोमीत्य-नुभवविरोध इति भावः। ननु रूपलादिकमिति दण्ड्यादिसाध्य-कगतिरेवात्नापि भविष्यतीत्याह, द्रव्यान्यलेति। श्रन्यथा विशिष्टा- रन्य हत्ति-धूमविज्ञ हात्यन्ताभावान्योन्याभाव-प्रतियोगि-लाद्द्राधिकरणविज्ञधूमयोर्न व्याप्तिः किन्तु तत्त हूमस्य समानाधिकरणतत्त दक्षिना। न चैवं धूममावे न व्याप्तिरिति वाच्यं सर्व्वधूमव्यक्तेस्त यात्वेन धूममावस्य व्याप्यत्वात्, धूमसम्बन्धिविज्ञस्त द्याप्य एव, युगपदुत्पद्ग-विनष्टयोश्व व्याप्तिरेव, कर्माणि च संयोगाभावः प्रति-योग्यसमानाधिकरणः। यद्दा प्रतियोगिवैयधिकरण्या-

भावस्य द्रव्यादिवृत्तित्वात् सत्त्वादिसाध्यकद्रव्यत्वादाव-व्याप्तेस्य, अन्यया विशिष्टतया सत्तादेः साध्यत्वे व्यभि-चारिणि जातिमत्त्वादावितप्रसङ्गात्। व्युत्पादिय-ष्यते च विशिष्टाभावस्य विशेष्यप्रतियोगिकत्वं दित्वा-द्यविक्तिन्नसाध्याभावस्य तच सत्त्वाच्च। अथाप्रति-योगित्वं प्रतियोगित्वाभावः स च येन रूपेण तद्रूपा-विक्तिन्नव्याप्यत्वं हेती, अस्ति चायं रूपादी रूपत्वादिना

भावस्य विशेषाप्रतियोगिकाले ! नमु क्षयमितप्रसङ्गः विशिष्टतया सत्तादेः साध्यलेऽपि विशिष्टमन्यदेवित्यत त्राह, ब्युत्पादियष्यत इति । दण्डितया पुरुषो नास्तीति विस्त्रणानुभवादित्यर्थः, अनु-भवे विवादादाह, दिलेति । तथाच विज्ञमान् धूमादित्यवात्याप्ति-रित्यर्थः, उभयाभावस्य विशिष्टाभावरूपत्वं पूर्व्वमेव खण्डितमिति । वक्छेदकाविक्रिद्रात्वमत्यनाभाविशिषणं कर्माणि च संयोगाभावस्य प्रतियोगिवैयधिकरण्यावक्छेदकाविक्छ-द्रात्वमेव। न चान्योग्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वम् अभेद-स्यावाधितप्रत्यभिद्धानात्। व्याप्यव्यापकभावाद्धानिऽपि वस्तुसतस्त्रथात्वेनाद्धायमानस्य सम्बन्धत्वेनेव भातस्य षष्ठार्थत्वं न चैवमननुगमो दोषाय कस्य का व्याप्ति-रित्यननुगतस्यैव लक्ष्यत्वात्।

न पृथिव्यादिनिष्ठाभावप्रतियोगित्विमिति प्रत्ययादिति चेन्न, तादृशप्रतीत्या हि रूपत्वादी प्रतियोगिताया अव-च्छेदकत्वाभावो गृह्यते न तु तदभावावच्छेदकत्वं सर्व्यतेव रूपे पृथिवीनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं न तु कुत्वापि रूपे तदभाव द्रत्यवाधितप्रत्ययात् अन्यथा यो यो धर्मी यस्य यस्य नावच्छेदकः तत्तदवच्छेदेन तत्तद-भावोऽप्यृत्तरीत्या सिध्येत ॥ ६॥

प्रगत्समतं निराकर्त्तुमाणक्षते । नमु पृथिव्यादिनिष्ठाभावप्रति-योगिलस्य प्रतियोगिन्यविषयी करणात् कथमवच्छेदकलाभाव-विषयीकरणे नान्यथासि बिरित्यत श्राष्ट्र, सर्व्व नैवित । तथाचा-नेन वाधकेन द्वतीयोक्षिखितावच्छेदकलस्यैव प्रतियोगिलेन विषयीकरणं कन्यात इति भाव: । श्रन्यथा, तेन रूपेण प्रति-योगिलाभावविषयीकरणम् ॥ ६ ॥ प्रमेयधूमलेन न विद्मान्निष्ठाभावप्रतियोगित्वमितिप्रत्ययात्तदवक्छेदेन ताहणप्रतियोगित्वाभावस्यापि
सुवचत्वाच । अय प्रमेयधूमलं न गौरवेण सामानाधिकरण्यप्रतियोगितावक्छेदकं विविच्चतञ्चात्र तथेति चेत्,
असमानाधिकरणधूमकव्यक्तिहत्तितया विद्वत्वमपि न
तदवक्छेदकं कम्बुयीवादिमत्त्वादिना च घटादेरसाध्यतापत्तिरिति वहुव्याकोपश्च । अतएव प्रमेयधूमलं गौरवेन प्रतियोगिताया द्रव तक्कृत्यताया अपि
नावक्छेदकमित्युक्तावपि न निस्तारः । अच वदन्ति
अप्रतियोगित्वं प्रतियोगितानवक्छेदक्षधमीवत्त्वं न चैवं

सिदेगदित्यचेष्टापत्ती अनिष्टमाह, प्रमेयधूमलेनित। तथा, सामानाधिकरण्यतियोगितावच्छेदकलम्, असमानाधिकरण्ति। विज्ञमान् धूमादित्यत्रायोगोलकीयवज्ञेधूमासमानाधिकरण्तया-विज्ञित्यत्र तहृत्तिलेन सामानाधिकरण्यावच्छेदकलहानिरित्यर्थः। सितिरत्तवृत्तिलेन तदनवच्छेदकलमुक्ता गौरवेणानवच्छेदकलमाह, कम्बुग्रीवादीति। ननु प्रमेयधूमलं यथा प्रतियोगितानव-च्छेदकं तथा प्रतियोगितानव-च्छेदकं तथा प्रतियोगितानव-च्छेदकं तथा प्रतियोगित्वाभावस्थाप्यनवच्छेदकं वाच्यं सामाना-धिकरण्यांग्रे चावच्छेदकलमिवविज्ञतमेवित्याग्रद्धा दूषयित, अत-एवित। अतएव कम्बुग्रीवादिमलादेरप्यनवच्छेदकलप्रसङ्गादे-वेल्यर्थः। न च पारिभाषिकावच्छेदकलमिव वक्तव्यम्। तथापि

पूर्व्वस्मादभेदः तन साध्यजातीयसमानाधिकरणसाधन-जातीयत्वस्य त्रव च साध्यसाधनयोः सामानाधिकर-ण्यस्य व्याप्तित्वे तात्पर्य्यात्। घटकयोस्ताद्दशप्रतियोगि-तावच्छेदकतत्त्वान्योन्याभावात्यन्ताभावयोर्भदेन भेद द्रत्यपि कश्चित्॥ ७॥

श्रवनाभावगर्भवत्यामान्यविशेषभेदेनान्योन्याभा-वगर्भमिप व्यातिदयमाह, यत्ममानाधिकरणेत्यादि-लचणदयेन, प्रथमे एकस्य साध्याधिकरणांशस्याधिक्यात् दितौयलचणम्, श्रव यद्यपि नानाव्यक्तिसाध्यकस्थले

तत्तद्रूपत्वादेरितिरिक्तवृत्तित्वेन कृपत्वस्य कृपसाध्यकव्यभिचारिखतिप्रसङ्गात्, तात्पर्थादिति । पूर्वेत्र साध्यतावच्छेदकाविच्छत्रसाध्यसामानाधिकरखस्य हेतुतावच्छेदकाविच्छत्त्रयावहेतीव्यक्तित्वादिति अत्र त तत्तद्वाक्योरेवेति, घटकयोरिति । अनवच्छेदकमित्यत्र घटकयोरित्यर्थः । कश्चिदित्यस्वरसोद्भावनं तदीजन्तुसामान्यविशेषलचणानुपपत्तिरिति ॥ ७॥

प्रथम इति। प्रतियोगियदन भवति तेन समं सामाना-धिकरण्यमित्यव तदधिकरणाधिकरण्वमित्यथैस्तव तदधिकरण-पदं व्यर्थम्। यदत्तत्वत्वं तहत्तित्वमित्यत एव सामञ्जस्यादिति। तदत् विझसंयोगवत्, साचादङ्गादी। परम्परया श्वयोः। नतु श्रेषयोर्न शहैकां तव साध्यतावच्छेदकीभूतविझ्लाविच्छन-

तत्तत्माध्यवतस्तत्तत्माध्यवत्त्वस्य च साधनसमानाधिक-रणान्योन्याभावप्रतियोगित्वात्तदवक्केदकत्वाचाव्याप्तिः, तथापि यद्रपाविकाञ्चवस्वं तादृशान्योन्याभावप्रति-योगितानवच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमि-त्यच तात्पर्ध्यम्। वज्ञ्यादी तत्संयोगादी तददादी वा साध्ये सर्व्वव साचात्परम्परया वा चनुगमकं विज्ञला-दिक्रमेव साध्यतावच्छेदकं, तदवच्छिन्नवत्त्वस्य च न तादृशान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद्वत्विमिति. यत् यदूपाविक्वं तादशक्पाविक्वं समनवक्वेदकमिति वा यथाययं वत्तव्यं शब्दैकासानुपादेयत्वात् । अन्येत्यादि-यद्यप्तृत्तरीत्या सर्व्वव तादृशप्रतियोगिता-नवच्छेदकत्वपर्य्यन्तानुधावनस्यावश्यकत्वेनाकिञ्चित्कर-मेव तादशाभावप्रतियोगित्वं, तथापि विशिष्टसामाना-

वत्तस्थानवच्छेदकालात् किन्तु तसंयोगवत्तादेरित्यत श्राह, यदिति। यदनवच्छेदकमिति, एकव्यक्तिसाध्यस्थले यद्रूपाविच्छन-साध्यमनवच्छेदकमिति। वद्भगदिसाध्यकस्थले याद्रश्रह्णाविच्छ-न्निमिति च वद्भिसंयोगादिसाध्यके यं यथाक्रमस्कानिके। ननु विद्मलाविच्छनविद्मलेनावच्छेदकालात् कथं चरमदयमिति चेद-बापि दण्डगदिसाध्यकप्रकारस्थानुसरणीयलात्। विशेषलच्चणा-

धिकरण्यक्षपाया व्याप्तेर्व्यधिकरणासक्षवित्वमाचे तात्-पर्यं, व्याप्तिरेवेत्यस्य कालिकीत्यादि ॥ ८॥

यन्योन्याभावगर्भलक्षास्यात्राप्यवित्तसाध्यकसंबे-तावत्याप्तिं निरस्यति, न चेति । यभेदस्थेति । तथाच मूले महीरुहो विहङ्गमसंयोगी नेति प्रतीतेरनुभूयमान-विशिष्टभेदोन्निखिन्या यपि शिखी विनष्ट द्वति प्रतीति-विशिष्ठणाभावविषयतामावं कल्प्यते वाधकवलात् यच च विशिष्टभेदे न वाधकं तव तथाप्रतीतिवला-त्तिसिबरप्रस्यूहैवेति नातिप्रसङ्गः ।

श्रव बदिन्त । श्रभेदस्य भेदाभावस्य ज्ञानं न बाधकं भेदवत्तत् प्रतियोगितावच्छेदकस्य संयोगातमन-

भिप्रायेण मृलं योजयना इ, तथा पीति। तथा च मूले प्रतियोगि-लादित्यन्तं ता दृण्याप्तेर्यधिकरणासम्भविले ईतुरिति भावः। दैशिकयाप्ती युगपदुत्यन्नलादिकं व्यर्थमत श्रादिभागं पूर्यति का लिकीति॥ प॥

लचणस्थेति। सामान्यत एकवचनम्। शिखीति। शिखा-विनष्टा पुरुषो न नष्ट इत्यादिन्यायात् विशिष्टस्य नागाप्रति-योगित्वेऽपि तत्रतीतेः, यथाविशेषणाभावावलम्बनत्वं, तथोक्त-वाधात् प्रक्षतेऽपीत्यर्थः। नन्वेवं गुणादाविप संयोगिभेदो न सिद्देशत अत आह, यच चेति। तत्र च वाधिकायाः प्रतीते- स्तदभावस्याव्याप्यवृत्तित्वेन तदुपपत्तेः, यथा हि प्रति-योगितावच्छेदकाविच्छन्नप्रतियोगिज्ञाने तद्यन्ताभाव-स्याग्रहात्तद्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च स एव तदभाव द्रति क्षण्यते, तथा प्रतियोगितावच्छेदक्षधभाग्रहे तदद-न्योन्याभावस्याग्रहात्तदभावव्यवहाराच्च स एव तस्या-भाव द्रति निश्चीयते, श्राधिक्येऽपि चाव्याप्यवृत्तित्वात्, श्रतएव न मृलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेदाभावज्ञानं तथा श्रसस्थवादसिडेश्च नापि कपिसंयोगिभेदस्य वृज्ञा-वृत्तित्वज्ञानमसिडेः तदृत्तित्वस्थेव ग्रहात् नापि कपि-संयोगिभिन्नभेदज्ञानं कपिसंयोगिभेदवत्तद्भेदस्याप्य-

रभावादित्यर्थः । तदुपपत्तेरिति । भेदाभेदयोरेकत वक्ते विरोध इति भावः । ननु यदि प्रतियोगितावच्छेदकस्य भेदाभावा- सकत्वं, तदैतत् स्यादिति तदुपपादयित, यथा होति । ननु प्रतियोगिक्तानिऽभावाग्रहात् प्रतिबन्धत्वमाया तु तदभावा- सकत्वम् इत्यत श्राह्न, श्रभावव्यवहारित । नन्वभावप्रतीतेः प्रमात्वा- नुरोधादितिरिक्त एव सेत्यतीत्यत श्राह्न, श्राधिक्य इति । श्रत- एवति । यत एव तदभावस्य संयोगसमनैयत्यमित्यर्थः । तथा प्रति- बन्धकं संयोगमिभप्रत्यासम्भवादिति । श्रतिरिक्तमिभप्रत्यासिष्ठेरित । ज्ञानम्, प्रतिबन्धकमिति शेषः । एवमग्रेऽपि तहृत्तित्वस्य- त्यस्य प्रत्यत्वादि । तद्वद्वेदस्येति । तद्वद्वेदः संयोगो वा संयोगसम-

व्याप्यवृत्तित्वेनाविरोधात्, नापि मृलावक्छेदेन तज्-न्नानमसिद्धेः तद्यम्मविद्वन्नभेदस्य तद्यम्मानपर्य्यवसित-तया कपिसंयोगिभिन्नभेदात्मनः कपिसंयोगस्य मूल-वृत्तित्वविरोधाच ॥ ८ ॥

न हि घटिभन्नभेदो घटत्वादितिरिच्यते आवश्यकक्राप्तघटत्वेनैवोपपत्यौ अतिरिक्तकलपनायां मानाभावात्
अन्यथा सर्ज्ञवाभावस्याभावोऽतिरिक्त एव कल्येत,
अतएवात्यन्ताभाव-प्रतियोगिनोरन्यान्याभावप्रतियोगितावच्छेदकयोः सामान्यत एव क्रुप्तो विरोधः, तत्र
कपिसंयोगवत्यपि वृच्चे मृले न कपिसंयोग इति
प्रतीतेरन्यथानुपपत्था तावदाद्ययोः स सङ्गोच्यतां न
च्येषा प्रतीतिः कपिसंयोगिभेदविषयत्वेनोपपादियतुं
शक्या, नियमतः संयोगवत्त्वेन प्रतियोगिनोऽनुप-

नियताभावो वेत्यन्यदेतत्। ऋसिषी विवादादाः तष्ठभाति। इदश्व प्राचीनमतमभिप्रेत्य, स्वमते तु तद्वेदः संयोगसमनियत इति न किथिडिशेषः अतएवेति विरोध इत्यर्थः ॥ ८॥

नतु भेदेनैवात्यन्ताभावः कयं नान्यथा सिदात इत्यत श्राह, न होति। कदाचित्र संयोगवित हत्ते मूले न संयोग इति प्रतीतिसत्त्वा-दाह, नियमत इति। प्रतियोगीति। यत्नापि संयोगवित हत्त इत्यादि- स्थितः प्रतियोगिकोटी तदनुक्केखा मृले न कपि-संयोगीति प्रतीतेस्तु शिखी विनष्ट द्रतिवङ्गासमान-विश्रेषणस्थाभावमाव--विषयत्वेनीपपद्मत्वाद्मान्तिमयोर-पीति परास्तम्। अन्योन्याभावान्तरस्य प्रतियोगि-तावच्छेदकान्तरसमानाधिकरणतया स्वस्तप्रतियोगि-तावच्छेदकासामानाधिकरण्यपर्ध्यवसायिनो विरी-धस्य सत्त्वघटितत्वेन विश्रेषत एव विश्रामात्, अख-न्ताभावप्रतियोगिनोरिवान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छे-दक्योरवाधितसामानाधिकरण्यानुभवेन प्रतिविक्ष्व-तया तथाविधविरोधकरणनाया अनवकाशाच । किञ्च

प्रतीतिस्तवापि संयोगवतो हचस्यानुयोगितायामेवोन्ने खो न प्रतियोगितायामित्यर्थः । श्रत्यन्ताभावेनान्योन्याभावमन्यथासिष्ठयत्राहः, मूल इति । श्रव च प्रतियोगिकोटावेव संयोगिनः प्रवेशे संयोगस्यापि तथात्वमिति हृदयम् । शिखी विनष्ट इतिप्रतीतिवदिति । विशेषण-प्रतियोगिकत्वांशमाचे दृष्टान्तः । श्रभावविषयतामात्रमिति । भेद-त्वेन भानेऽपि विशेषणात्यन्ताभावेन निर्वाहाधें माचपदमिति । श्रक्तिमयोः श्रन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक्योरपौति । श्रङ्कोच्य-तामित्यनुषच्यते । ननु विशिष्यैव कथं न विरोधः, सामानाधिकर-त्यानुभवत्वमेवासिष्ठम् । किञ्च भेदस्य शाखाद्यवच्छित्रवृच्चावृत्तित्व-क्षणनमपेच्य लाववेन वृचावृत्तित्वमेव कल्यात इत्यत श्राहः,

शिखी विनष्ट द्रति प्रतीतेर्विशिष्टध्वंसोह्नेखिन्या विशेष्ये तद्वाधादासां विशेषणध्वंसविषयता, न संयो-गीति प्रतीतेर्विशिष्टभेदमवगाहमानायाः कथं विशे-षणसंसर्गाभावविषयत्वेनोपपत्तिः, न खलु सहस्रिणापि बाधकेरिदं रजतिमिति प्रतीतेरङ्गत्वावलम्बनं व्यवस्था-पयितुं शक्यते, न च विशेषणभेद एव तस्या विषयः अग्रेऽपि न कपिसंयोगीति प्रतीत्यापत्तेः युज्यते चान्यो-न्याभावोऽव्याप्यहत्तिः कथमन्यथा पक्षतादशायां घटा-दावयं न श्यामो दण्डादिविनाशसमये चैवादी नायं तद्दग्डवानित्यादयो व्यवहाराः, न च तत्र विशेषणा-संसर्गाभाव एव प्रतीयते अनुयोगिनि सप्तमीं विना तदनुपपत्तेः, न खलु भृतलं न घट द्रत्यादीनि

किश्वेति। तथाविशेषणात्यन्ताभावेन नान्यथासिडिरिति श्रनुभव-बनादेव गौरवमप्यास्थीयत इति भावः। न खिल्लत्यादि। तत्रका-रक्तत्वस्थानुव्यवसायेन विषयीकरणादिति भावः। ननु प्रत्यस्त-प्रतीतौ श्रत्यन्ताभावस्थापि विषयस्य सन्त्वात् तदनवगाइनं केन निरटिक इत्यतः प्रतिनियतविषयकत्वं शब्दमप्युपष्टभकमाइ, युच्यते चेति। श्रयमिति। इटानीमिति शेषः। एवमयेऽपि इट्श्व पिठरपाकमभिप्रत्य। श्रत्नापि पौनुपाकमादाय विवादादाइ, दण्डादौति संसर्गाभाव इति। तेन दण्डध्वंसोऽपि संग्रहीतो

वाक्यानि कदाचिदपि घटसंसर्गाभावं बोधयन्ति तथात्वे वा घटो न घट द्रत्यादेरपि प्रसङ्गात् ॥ १० ॥

त्रिष च विशिष्टवाचकदण्डादिपदेभ्यो धर्मुगपस-र्ज्जनतयोपस्थितस्य दण्डादेः कयं प्रतियोगित्वेनाभावे-रन्वयः दतरविशेषणत्वेनोपस्थितस्य निराकाङ्कतयान्यच विशेषणत्वेनान्वयायोगात्। न चाच विशिष्टोपस्थापकं पदं विशेषणमाचपरं, तथापि चैवो न दण्डो घटो न स्थामं रूपमित्यादावपि दण्डादिसंसर्गाभावप्रतीत्था-पत्तेर्द्व्ञारत्वात्, एतेन नञोऽभाववद्धाचणिकतया विनैव सप्तमीमन्वयवोधसमर्थनं प्रत्युक्तम्, एवच्च चैवो

भवतीति प्रक्ततमेव व्यतिरेकेण व्यवस्थापयितुमाह, न खिल्विति। इष्टापत्तावनिष्टमाह, तथालेति॥ १०॥

ननु यन विशेषणतावच्छेदकप्रकारेणैव विशेषणं भामते तनैवानुयोगिनि सप्तमीं विनापि विशेषणाभावोऽवगस्यत इह तु घटस्य
विशेष्यतया न तदित्यत श्राह, श्रपि चेति । तथापीति । विशिष्टपदस्य विशेषणपरतया तथा समर्थने शुद्धविशेषणोपस्थापकस्य
सुतरामेव तथात्वापत्तेरित्यनुयोगिनि सप्तस्या श्रभावाश्रयत्वनाभायैवादर इति सन्वानो नञ्पदेऽभाववत्येव नच्चण्या तज्ञाभ इति यो
ववीति तन्मतं दूषयति, एतेनिति । चैत्रो न दण्ड इत्याद्यापादनेनेत्यर्थः । ननु सर्वत्रेव संसर्गाभाववीधने यदानुयोगिनि सप्तस्यपेचा

न पचतीत्यादी आख्याताच्छक्ता लचण्या वोपिस्यतस्य कर्तुरेव भेदो भासत द्रत्यस्तु, वस्तुतो न पचित चैवो नेदं मैबस्येत्यादी विभक्तार्यस्य क्वतिसम्बन्धादेरभावा-न्वयबोधं नञा सप्तमी नापेच्यते, अपेच्यते च प्रातिपदि-कार्यस्येति निपुणतरमुपपाद्यिष्यामः। नञो वैधर्माा-परत्या न ग्र्याम द्रत्यादे: ग्र्यामादिविधर्मोत्यर्थः, वैधर्माञ्च रक्तत्वादिकभेव यदान्तराचार्यः, ग्र्यामा-द्रक्तोविधर्मा न तु पृथगित्यपि वदन्तीति क्वतं पञ्च-वितेन॥ ११॥

सम्बन्धत्वेनिति । निरूपिततत्त्वमेतत् । कस्येति । दृत्यञ्चाननुगताया अपि व्याप्तेर्ज्ञानं यथानुमितिहेतुस्तथा

तदा न पचतीत्यन कयं पाककत्यभावबीध इत्यतस्त होधयित, एवं चिति, प्रत्येति। वैयाकरणमते लच्चणदिकत्यनादा ह, वस्तत इति। सम्बन्धादेः नेदं मैत्रस्थेत्यादी, निपुणतरमिति। नञ्चिति केण प्रतियोग्यन्वये यत्नानुयोगिनि सप्तम्यपेचा तचैव नञा सापेचते नान्यनेत्यादेः प्रतियोग्यभावान्वयौ च तुत्वयोगचेमावित्यनेन नञ्चादे प्रतिपादितत्वादिति। ननु वैधन्धें तदद्वत्तिधन्धं इत्यत श्राह, वैधन्धें प्रदेशे प्रत्याद्वादिति। सनु वैधन्धें तदद्वत्तिधन्धं इत्यत श्राह, वैधन्धें प्रत्यादितत्वादिति। सनु वैधन्धें तदद्वत्तिधन्धं इत्यत श्राह, वैधन्धं प्रतिपाद्वितवादिति। सनु वैधन्धं तद्वाद्वाचीन तद्वाचीन त्वप्रकारिणोपस्थिती चच्चेति॥ ११॥

निक्पिलमिति। संयोगलादिनैव तखवेश इति भाव:। श्रतएव

श्रव धूमवंति विक्रित्रदी न सः धूमवान् विक्र-मक्केदी न भवतीतिप्रतीतेर्व्यासच्यष्टत्तिप्रतियोगिकी विक्रविक्रमतोरत्यन्तान्योन्याभावी धूमवित विद्येते इति कथमेते लच्चणे द्रति चेन्न, तादृशाभावानभ्यप-गमात् श्रभ्यपगमे वा तच तदुभयं प्रतियोगि न विक्र-विक्रमन्ती।

वच्यते। एते अन्योन्याभावात्यन्ताभावगर्भे। ताइ-श्रेति। ननु किं दिलादिकं प्रतियोगितावच्छेदकमेव न भवति किं वा भवत्येव, परन्तु क्रुप्तानामेव स्वसमाना-धिकरण-तत्तद्वकीविच्चन-प्रतियोगिताकानामभावानां साघवादित्यभिप्रायः, नादाः एकैकाभावप्रतीतितो दी न स द्रित प्रतीतिर्व्विच्चणत्वात्, शब्दादिना दी न स्त

द्रश्यमिति। वच्चत इति। विशिष्यैव कार्य्यकारणभावौ न सामान्यत इति। चतुर्णामेव लचणानामाचेपात् मृलस्य द्विवचनं न घटत इति तदुपपादयित, एते इति। तथाच तत्तदभावगर्भेत्वेन द्वयोरैक्यमिति भावः। अभ्युपगमे वेत्यस्याचेपमारभते, निन्त्या-दिना। नन्वेकाभावप्रतौतिसाधारखेऽपि द्वितस्याधिकस्य भानादेव वैलच्चामित्यत श्राह, शब्दादिनेति। प्रत्यचे तु ताद्यमित्यय-काले तथा संग्रयोऽसिड इति ष्ट्रदयम्। ननु शब्देन घटलादेरव-

द्रति निश्चयेऽध्येकेकाभावसंग्रयाच, विषयानुगमं विना श्रनुगताकारप्रत्ययायोगात्। न चाभावस्य दिलाधि-करणप्रतियोगिकत्वमात्रं दित्वसामानाधिकरणधक्ताव-च्छिद्मप्रतियोगिताकत्वं वा द्रयं नास्तीति प्रतीतिर्विषयः, ताद्दशदिलाधिकरणव्यक्तिविशेषविरिष्टिणि तथाविधी-भयशालिनि तादृशौ दी न स्त द्रत्यप्रत्ययात्, दित्वसा-मानाधिकरण्याभानेऽपि प्रतीतिग्नुगताकाग्त्वाच्च, श्रत-एव न तादृशप्रतीतिर्घटत्वपटत्वाद्यन्यतराविच्छद्मप्रति-योगिताकाभावविषयत्वम् श्रन्यतरत्वानुक्लेखेऽपि घट पटौ न स्त द्रत्यनुगतप्रत्ययाच्च, न च परम्परासम्बन्धेन तादृशदिल्बसामान्याभाव एव दी न स्त द्रति प्रती-

च्छेदकलं न विषयीक्रियत एव परन्तु प्रत्यचमादायैव तथा वच्याम दल्यत आइ, विषयेति। हिलाविच्छिमप्रतियोगितायनुगताकार इत्यर्थः। ननु हिलाधिकरणप्रतियोगिकलमेवानुगतं वाच्यमित्या-प्रद्वप्र निषेधति, न चेति। प्रथमेऽवच्छेदकलस्पर्शभावादाइ, हिलेति। ताहग्रेति। घटपटोभयविश्रेषविरिहिणि घटपटोभय-विश्रेषशालिनि, घटपटौ न स्तः प्रत्ययादित्यर्थः। ननु हिल्समाना-धिकरणलेन भासमानो यो धम्मस्तदविच्छनप्रतियोगिताकल-मेवानुगमकं वक्तव्यमित्यत श्राह, हिलेति। श्रतएवेति। वच्यमाणा-स्वकम्, श्रतएवाग्रे चकारविरहः। परम्परेति। हिलाश्रयघटित-

तेर्विषयः, दित्वाधिकरणयोरेव प्रतियोगित्वोल्लेखात् दित्वादेर्घटादिहत्तित्वानुपस्थिताविष अन्ततः शब्दे-नापि घटपटौ न स्त द्रत्यादिप्रत्ययाच्च, अतएवैकैक-विशिष्टापराभावोऽपि न तदालम्बनं विश्वयोरिष जल-त्वपृथिवीत्वयोर्द्विनाभावप्रत्यय द्रत्युक्तत्वाच्च नान्त्यः, तथात्वेऽपि साध्यतद्वतोस्तादृशाभावप्रतियोगित्वानपा-

परम्परेत्यर्थ:। त्रन्ययोभयवत्यपि उभयव्यत्तिदिलस्य साचात् सम्बन्धेनाभावात्तादृशप्रतीत्यापि नि:। दिलाधिकरणयोरिति। हिलं नास्तीत्वेवाकार: स्वादिति भाव:। ननु प्रत्येचे आश्रयस्य हिलवैशिष्टाभाने हिलस्यापि तहिलस्यापि तहिललं भासते. तयाच प्रतियोगिकोटी दिलाधिकरणस्योक्केचेऽपि तस्य विशेषण-तयैवोपयोग इत्यत श्राह, हिलादेरिति। प्रत्यचे विवादादाह, भ्रन्तत इति। घटपटावित्यंग्रे हिवचनार्थस्य प्रक्तत्यर्थेविग्रेषण-तयैव भानाभ्यपगमादिति भाव:। अबेदं चिन्खं, व्यतिरिक्ताभाव-वादिमतेऽपि दिलमानं न प्रतियोगितावच्छेदकं किन्तु घटव्रान-दिलं, तथाच ताद्यबोधार्थं लचणावश्यकीति तुल्यम् अनितिस्ता-भाववादिमते दति, अतएवेति। पटस्य घटवैशिष्ट्याभानेऽपि तादृश्-प्रतीतिर्यंत एवस्यर्थै:। क्रचिद्दस्तुनोऽपि दुर्घटत्वमाह्न, विरुद्धयो-द्रखुतत्वाचेति। चकार: पूर्व्वीतसमुचयपर:। किं चेत्याद्यन्यकल्पमाशङ्का निषेधति, नान्य इति। तथालेऽपीति। इटाभावस्यैव हिलावच्छित्रप्रतियोगिताकाले वज्रेगीप प्रतियोगित-

यात्, अन्तरेणाभावान्तरमेकेकघटवति जायमानाया यत्किञ्चिद्वटद्वयवति चानुत्पद्यमानाया घटौ न स्त इति प्रतीतेमपपाद्यितुमशक्यत्वादित्यत आह, अभ्यु-पगमे वेति। उभयत्वमेव प्रतियोगितावच्छेदकं न तु साध्यतावच्छेदकं साध्यवच्चं वेत्यर्थः, अश्रूयमाणावच्छेद-कत्वांशिऽपि लच्चणे तथैव विविच्चतमिति भावः ॥१२॥

मापतितं, अन्यथा दिलस्य इदमावष्टतिप्रतियोगितातिरिक्तष्टत्ति-लेनानवच्छेदकलभङ्गादिति। ऋतिरिक्ताभावमेव व्यवस्थापयति, भ्रत्तरेणिति। एकैकिति। योऽन्तेन घटत्वाविच्छत्रसामान्याभाव-विषयत्वनिरामः, यत्विञ्चत् घटदयप्रतियोगिताकाभावनिरासः। ननु घटौ न स्त इत्यत्न दिलाव च्छिनाभाव: सिदातु, घटपटौ न स्त इत्यन कयं प्रत्येकाभावहयस्यैव हित्वाविक्यसमामान्याभाव-विषयत्वनिरासः, यिलिश्विदिति। तेन यिलिश्वित् घटदयस्यैव डिलाव च्छित्रप्रतियोगिताकलकल्पनादिति चेदन बदन्ति। सामा-न्याभावयुक्तिन्यायेनातिरिक्तदिलाविक्यत्रप्रतियोगिताक ल्पने वि-निगमनाविरहेणातिरिक्ताभावकत्यनिमिति। क्षृप्ताभावेन दित्व-प्रतीतरन्यथोपपादनेऽपि दिलविधिष्टाभावस्य विधिष्टाभावतया-तिरिक्तस्यैव व्यासज्यवृत्तिप्रतियोगिताकाभावलिमित्यपि कश्चित्। उभयलमेवेति । सम्माधमेवाभावदयघटितं लच्चमभिप्रेत्य स्रतएव तथैव निराक्तरोति। निल्ति। ननु विशेषलच्चणेऽवच्छेदका-प्रवेशात्तन सदोषस्तदवस्य एवेत्यत भाइ, भन्नूयमाणेति॥ १२॥

त्रयवानीपाधिकत्वं व्याप्तिः, तच यावत् खसमा-नाधिकरणात्यन्ताभाव-प्रतियोगितावच्छेदकाव च्छिन्नं यत् तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत् तेन समं सामानाधिकरण्यम् ।

तचित । खं साधनलाभिमतं तथाच साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदका यावन्तो
धर्मा यडम्माविक्वन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकाः तडम्मावलीदसामानाधिकरण्यमित्यर्थः, एतेन सर्व्यंव ताद्यर्थयाविद्वरविक्वन्नस्य ताद्याविक्वन्नयावत्यतियोगिकस्य चातिप्रसञ्जकात्, यावन्ताद्यविक्वन-प्रतियोगिताकादितिरिक्तस्याभावस्याप्रसिडिः

तथा चेत्यादि। यद्यभाविक्छिन्नेति। यसाध्यतावक्छेदकाविक्छिन्नेत्यर्थः। तेनेदं गुणकर्माान्यसत्तावक्जातिमस्वादित्यत द्रव्यत्वतादेर्जातिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावक्छेदकत्वेऽपि
न क्षतिः। यथाश्रुतमूलानुपपत्तिं व्यक्षयित, एतेनेति। अविक्छिनस्थेति। अप्रसिद्धेरित्यनेनान्वितम्, अवक्छेदकस्य यावस्तं विद्यायाविक्छिन्नेऽपि तद्योगं खण्डयित, ताद्योति। अतिप्रसन्धकादिति। धूमवत्यपि यावदाद्रेन्थनाभावसस्त्वादितव्याप्तेरित्यर्थः।
आदिपदेन यावत्ताद्याविक्छिन्नगगनष्टस्युभयत्वपरिग्रहः। अविक्ष-

ताहशाविक्त द्रप्रतियोगिताकानां यावदभावानामधि-करणस्य प्रायशस्त्रया। इपादिसाध्यकपृथिवीत्वादा-वव्याप्तिश्व कापि इपादिव्यक्ती ताहशयावदभावसामा-नाधिकरण्यासम्भवादिति प्रत्युक्तम्। सर्व्यव सोपाधा-वेकव्यक्तिकस्य सम्भवतोऽप्युपाधिईम्मान्तरिविशिष्टत्वा-दिना ग्रभावो भवत्येव साध्यसमानाधिकरण द्रत्यव-क्षेदकानुसरणम्॥ १३॥

साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिताव--

नेऽपि यावस्वं विहायाभावे यावस्वं खण्डयति, ताद्यति। तथा श्रमिदिरित्यर्थः। नानाहेलिधिकरणकस्यले ताद्यानां यावद-भावानां चालनीन्यायेन समवस्थितानामधिकरणमप्रसिद्धमिति। एकाधिकरणहेतुस्थले तु तस्मिन्नेवाधिकरणे ताद्या यावन्तो भावा दत्युकं, प्रायण इति। श्रय यावदभावानां प्रत्येकाधिकरणाहित्तत्वं साध्यस्य वक्तव्यमित्यते श्राह, रूपादीति। श्रतएव विश्वयति, कापौति। ददश्च घटरूपे यावन्यध्यपतितस्य घटत्वाभावस्य सामानाधिकरण्याभाव इति क्रमेणोन्नेयम्। सर्व्यनेत्यादि। श्राद्रेन्यनादीनां चालनीन्यायेन धूमहत्त्यभावसन्भवेऽपि व्यभिचाराधिकरणे भिन्नत्वस्थाभावो धूमवतीति प्रचद्दकार्थः। विश्वष्टत्वादिनत्यादि-पदेन दिल्परिग्रहः॥ १३॥

तदपि विशिष्टस्यातिरिक्तलमतालस्वनानुगयादेव उक्तविव-

क्छेदकाविक्विद्रप्रतियोगिताका यावन्तोऽभावा यहाँमा-विक्विद्र-समानाधिकरणास्तहाँमावलीढ़--सामानाधिक-रण्यमित्यर्थः । अभावश्वाव भावभिन्नो याद्यस्तिन द्रदं जलं स्नेहवत्त्वादित्यादी स्नेहवत्त्वसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावप्रतियोगितावक्केदकरूप-सामान्याभावत्वाव-क्विद्वप्रतियोगिताकाभावानां सकलरूपाणां जलत्व-

चायां मूलाचरासमधेनादान्त, साधनित्यादि । तथाच मूलेऽभाव-सामानाधिकरखामित्यत्र बहुबीहिरात्र्ययणीय:, एतदिवचायान्तु रूपवान् पृथिवीलादित्यन यावस् ग्रभावेषु रूपलाविच्छनसामा-नाधिकरण्यं वर्त्तत एव। भावभित्र इति। रूपप्रागभावाभावलाव-च्छित्राभावस्य यावद्रपप्रागभावात्मकस्य साध्यशामानाधिकर्खाभा-वात् स एव दोष इत्वतीऽभावपदं श्रत्यन्ताभावपरं बोध्यम्। तेनी-त्यादि भावभिन्नोऽत्यन्ताभावो चाच्चस्तेन प्राचीननये रूपप्रागभाव-क्रपध्वंस क्रपयावदभावेषु साध्यसामानाधिकरखाभावेऽपि नोक्त-दोष:। नतु तथापि जलावृत्तित्वाऽविच्छित्राभावाऽन्यतराभावत्वा-विच्छत्रप्रतियोगिता कयावनाध्यपतिते तेजीव तिलाविच्छत्राभा-वस्य न जलवृत्तित्वसामानाधिकरण्यमिति पुनरव्याप्तिरिति चेत्, तादृशाविष्टित्र-प्रतियोगिताकाभावत्वत्वव्यापकसाध्यसमानाधिक-रणवृत्तित्वकत्वस्य विविचितत्वात्। अत्र रूपसामान्याभावस्य स्नेह-समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिलं जनपरमाखुमादाय बोध्यं, जलावयविन्युत्पत्तिकाले तत्सत्त्वास्युपगमात्। न च तथापि स्नेह-

सामानाधिकरण्यविरहेऽपि नाव्याप्तिः। घटध्वंसो ध्वंसत्वादिखादी च घटध्वंसत्वादेसत्यकारकप्रमावि-शिष्यत्वादेवी भावाभावहत्तिरतिरिक्तोऽभावस्तादृशो न घटध्वंसत्वादिसमानाधिकरण द्रति नातिव्याप्तिरित्यपि वदन्ति ॥ १४ ॥

वसमानाधिकरणात्य लाभावप्रतियोगितावच्छेदकजलाहत्तित्वाव-च्छित्राभावहेतोरव्वत्तिलावच्छित्राभावान्यतरलावच्छित्रप्रतियोगि-ताकाभावलाविक्वत्रप्रतियोगिताकस्य तेजी वृत्तिलाविक्वत्राभा-वस्य जलत्वसामानाधिकरस्यविरहादव्याप्तिरिति वाच्यम्। स्वसमा-नाधिकरणात्यन्ताभाव-प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-काभावललव्यापनसाध्यतावच्छेदनावच्छिन्न-साध्यसमानाधिनरण-हत्तिलकत्वसानेन विविध्यततात्। एवं चाभावेषु भावभिन्नलविव-चणं ययायुताभिपायेणिति कोध्यम्। ननु घटध्वंसो ध्वंसलादित्यत तादृशाभावस्तद्वटध्वंसलाभावा एव, ते च स्वाधिकरणघटात्यन्ता-भावादिभ्यो नामातिरिचन्ते, तेषु घटध्वंसलसामानाधिकरण्य-सत्तादतिव्याप्तिरित्यत श्राह, घटध्वंस द्रति। श्रव यद्यपि पट-ध्वंसस्यापि घटध्वंसलाभावरूपतया घटध्वंसलासमानाधिकरणतया च नातिव्याप्तिसभावना, तथापि घटध्वंसलाभावस्याधिकरण-सक्पले श्राधाराधियभावानुपपत्तिरितिभयेन समानाधिकरणा-भावैरेव तथा धीरिति ये वर्णयन्ति तेषां मतमवल्खेयदसुक्तमिति

यावदिति। खं व्यभिचारि येषां तेषां यावतां व्यभिचारिणा साध्येन सामानाधिकरण्यमित्यर्थः। यावदिति। यत्पदं साध्यत्वाभिमतपरं, सोपाधिवारणाय यावदिति लुप्तसप्तमीकस्य दितीयात्यन्ताभावस्य विश्र-

ध्येयम्। प्राचीननये घटध्यंसलस्य घटध्यंसरूपलादाह, तल्यकारकीति। तत्र यद्यपि विषयलं स्ररूपमेव तथापि प्रमास्करपमेव
तह्योध्यम्। श्रातिरिक्त इति। घटध्यंसलं नास्तीति धीस्तावदनुगताकारा तस्याय तावत् स्ररूपनियम्यले गौरविमत्यतिरिक्त एवाभावः
काल्पात इति। न च तत्रापि घटध्यंसलं नास्तीति धीसत्त्वादतिरिक्तकलपनेऽनवस्थाऽनितरिक्तकलपने श्रात्माश्रय इति वाच्यम्।
एविस्विधदोषेण घटाभावोऽपि लुप्येत तत्रात्माश्रयोऽन्यथानुपपत्थैव
षोध्य इति चेदिहापि समानिमिति भावः॥ १४॥

यथा श्रुतमूले विक्तमान् धूमादित्यत धूमीययावदाभिचारिमध्यपिततस्य विक्तद्रिश्चलादेर्श्वभिचारित्वं कदापि न वक्ताविति
भयेन व्याचष्टे, स्वमिति। तथाच बहुबी द्यन्तस्व्यभिचारिपदेन समं
यावत्पदस्य कर्मधारयो बोध्यः। श्रनन्तरं च षष्ठीसमास श्राश्रयः
णीयः। लुप्तसप्तमीकस्थेत्यादिषष्ठीदयं वैयधिकरण्येन, तथाच लुप्तसप्तमीकस्य पदस्य योऽयीं दितीयात्यन्ताभावः तदिश्रेषणमिति।
तथाच लुप्तसप्तमीकस्येति द्राप्य द्रापकभावे षष्ठी, सामानाधिकरण्ये
तु श्र्यस्य लुप्तसप्तमीकत्वाभावात्, पदस्य च विश्रेषणत्वाभावादसक्रितिरिति भाव्यम्। केचिन्तु वैयाकरणरीत्या पदयोरिव विश्रेषणवि-

न ह्यवं सोपाधिः, तत्र साधनसमानाधिकरणा-त्यनाभावप्रतियोगिन आर्ट्रेश्चनवत्त्वादेक्षपाधेयीऽत्यन्ता-भावस्तेन समं साध्यस्य धूमादेः सामानाधिकरण्या-भावात्, उपाधः साध्यव्यापकत्वात् एतदेव यावत्-स्वव्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनीपा-धिकत्वं गीयते।

षणम्। तथाच साध्यव्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-योगिताकात्यन्ताभावत्वव्यापक-स्वसामानाधिकरण्यसा-मान्याभावकत्वमर्थः। केवलान्वयिस्थले त्वाकाशादि-

शिष्यभाव दित मतेनेदिमित्याहु:। तथावित्यादि। यावदित्यसैव व्यापक्षत्विमित्यश्चे:। तस्रयोजनं तु धूमवान् वक्केरित्यत्र द्रव्यत्वाभावे वक्किमामानाधिकरण्यसामान्याभावसत्त्वादितिव्याधिरिति तद्वारणम्। तत्रैवाद्रेन्धनाद्यभावे रासभिनष्ठसामानाधिकरण्यस्याभावमत्त्वादिति-व्याधिरिति मामान्यपदोपादानम्। श्रत्न व्यापकत्वमध्ये चेत् प्रति-योगिव्यधिकरणपदं निच्चित्यतं, तदा दितीयाभावे तदवश्यं देयं, श्वन्यया द्रव्यं गुणक्षांण्यत्वे सित सत्त्वादित्यादी संयोगाभावे तत्त्वामानाधिकरण्यसत्त्वाद्याधिरिति, एतदिष्क्षवेष व्याधिकचण-वद्योधः। उभयत्रैव तद्दानिमिति तु सम्यगिव प्रतिभाति; मम्प-दाय द्रव्यस्तरसोद्वावनं तद्दीजन्तु द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादी गुणवित्त-त्वविशिष्टसत्ताद्यभावस्य द्रव्यत्वव्यापकस्य योऽभावः सत्ताक्प- रेव तथाविधोऽभावः प्रसिद्ध द्वित सम्प्रदायः। केचित्तु ताहशयावदभावश्चन्यत्वं यद्धिकरणताया व्यापकं तत्त्वमर्थः। न च ताहशप्रतियोगितानंवच्छेदकवन्तमेव यावच्वेन विशिष्य यावत्ताहशाश्रयत्वं यद्धिकरणताया व्यापकं तत्त्वमित्यर्थलाभादेव सामञ्जस्थिऽभावद्वयो-पादानमनतिप्रयोजनकमिति वाच्यं, यावतां ताहशा-मिन्धनादीनामैकाधिकरण्यस्याप्रसिद्धः। न चावच्छेद-कांशमपहायाप्रतियोग्येव यावच्वेन विशिष्यतां साध्य-व्यापकस्थापि रूपान्तरेण साध्यसमानाधिकरणात्यन्ता-भावप्रतियोगित्वस्थोपदर्शितत्वादित्याहः॥ १५॥

स्तिस्मन् हेतुसामानाधिकरण्यसत्वादव्याप्तिरिति, द्रदमेव दोषमुद्दरनाह, केचित्विति। ताद्द्याः साध्यव्यापकत्वावच्छेदकावच्छित्रप्रतियोगिताका यावन्तोऽभावाः, प्रत्येकं तच्छून्यत्वं यदधिकरणताया व्यापकत्वं तत्त्विमित्यर्थः। यावन्त्वावच्छित्रश्रून्यत्वविवचणे धूमवान् वज्ञेरित्यचातिव्याप्तिस्ततापि विज्ञमत्ययोगोन्तके
श्राद्रंन्धनाभाववत्यपि द्रव्यत्वाभावाभावेन ताद्द्यश्रून्यत्वसत्त्वादिति,
श्रनतीति। यावन्त्वस्याभावविशेषण्य व्यापकासंस्पर्शादिति यथासित्विश्च वैयर्थ्याभावादिति भावः। न चेत्यादिपूर्व्यकन्पे यावदाव्यवत्य व्यापकत्वमतोऽप्रसिद्धः। श्रव तु श्रप्रतियोगिनां व्यापकत्वे तच्च रूपान्तरेणापि निर्व्वहतीति नाप्रसिद्धिरिति ध्येयम्।

यद्दा यावद्यत्ममानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रति-योगिप्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरण्यं यस्य तस्य तदेवानौपाधिकत्वं, सौपाधौ तु साध्यविष्ठात्य-न्ताभावाप्रतियोगिन उपाधियौऽत्यन्ताभावस्तेन समं हेतोः सामानाधिकरण्यम् उपाधिः साधनात्यापक-त्वात्। यद्दा यत्मम्बन्धितावच्छेदकरूपवच्वं यस्य तस्य सा व्याप्तिः।

साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानव-च्छेदके यावति यत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि-तावच्छेदकत्वं नास्ति तत्त्वमर्थं द्रति तु नव्याः। श्रविच्छद्रं सामानाधिकरण्यं सामानाधिकरण्यावच्छेदकरूपं वा

क्ष्यान्तरेणेति। प्रमेयलादेरिप गगनादिवृत्तिलेन घटवृत्तिल-विशिष्टलादिना चाभावस्य सुलभलादिति, श्रन च साध्यसमा-नाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकानि यावन्ति यत्समा-नाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकानीति तु स्पुटतया पूर्वीक्ततया च नोदिक्कितमिति ध्येयम्॥१५॥

संयोगेन सामानाधिकर एक मिन्नेत्या ह, धूमलेति। सम-वायेन सामानाधिकर एक मिन्नेत्या ह, द्रव्यलला देरिति। यदा पूर्वं नानासामानाधिकर एक स्वावच्छे दक्षं दिश्तं ददानी न्तु एक- व्याप्तिः । दृत्यञ्च धूमत्वद्रव्यत्वत्वादेर्व्याप्यतावक्केदकार्वं दण्डत्वादेर्नियतपूर्व्ववर्त्तितावक्केदकार्यमात्मकारण-तावक्केदकात्ववदभेदेऽप्युपहितानुपहितभेदाद्वा समर्थ-नीयं, तबाद्यमभिप्रेत्याह । यत्मम्बस्थितेति । सा सम्बन्धिता सामानाधिकरण्यक्षपा जनकात्वादिव्याद्वत्ता, यव च विशिष्टसत्तात्वाद्यविक्वद्रगुणादिसामानाधि-करण्याधिकरणसत्त्वादेः कर्मादौ परामर्शाद्गुणाद्यनु-मित्यापत्तेः ॥ १६॥

साध्यसामानाधिकरख्यविशिष्टहेतुमत्तापरामर्शस्तु

व्यिति एकसामानाधिकरखेऽप्यवच्छेदकं स्मोरियतुमाइ, द्रव्य-लेक्षित । दण्डलादेरिति । नियतपूर्व्ववित्तितमावस्य कारण-लेऽरखास्यदण्डस्याकारणलप्रसङ्गः । नन्त्रभेदेऽप्यवच्छेद्यावच्छेदक-भावे दण्डो दण्ड इत्यपि प्रतीतिः स्यादित्यत ग्राइ, उपिह-तेति । ग्रुडं धूमलमवच्छेदकं सामानाधिकरखावच्छेदकलोप-हितन्त्ववच्छेद्यमिति भावः, तादाक्षासम्बन्धसंग्रहायाइ, जनक-लादौति । तथाच तेन व्याप्यव्यापकभावेऽपि न चतिरिति भावः । ग्रुव्व चेत्यादि व्याप्तिविश्वष्टहेतुमच्चं पच्चे स्वयं, व्याप्तिच विशिष्ट-सत्तात्वावच्छित्वसत्तानिष्ठसामानाधिकरस्यं तदती च सत्ता-कामैनि वक्तते एविति भावः ॥ १६॥

श्रय व्यास्पुपहितव्याप्यवत्त्वमेव तथा वत्तव्यं, व्याप्तिय तादृश-

तथाहि धूमस्य विज्ञसम्बिध्यते धूमत्वमवक्छेदकं धूममावस्य विज्ञसम्बिध्यतात् विज्ञस्तु धूमसम्बन्धे न विज्ञत्वमवक्छेदकं, धूमासम्बन्धिनि गतत्वात् न द्यति-प्रसक्तमवक्छेदकं, संयोगादौ तथात्वादर्शनात्, किन्तु वज्ञावाद्वीस्थनप्रभवविज्ञत्वं धूमसम्बन्धितावक्छेदकं ताद-शञ्च व्याप्यमेव।

पचे साध्यनिर्णयात् प्रागसस्भवीत्यनुष्यं न हितीयम्, श्रयमालोको धूमो वित्यादी विशिष्यसन्देहेऽपि सामा-न्यतोऽवच्छेदकरूपवत्त्वनिर्णयः सस्भवत्येवेति दृदयम् । श्रवावच्छेदकालं नान्यूनवृत्तित्वम् श्रन्यूनानितिरिक्त-वृत्तित्वं वा, वद्घादी साध्ये मेयत्वादावित्रसङ्गात् धूमत्वादावप्रसङ्गाच्च, किन्त्वनितिरिक्तवृत्तित्वं तच्च यद्यपि न तदभाववदवृत्तित्वं, गुणवान् सत्त्वादित्यव सत्तात्वे-

सामानाधिकरख्रक्षेत्यत याह, साध्येति। प्रागिति। तथाच पचे साध्यानिर्णयेऽपि यदनुमितिर्मृग्यते तद्म स्यादिति भावः। न तु भित्रसाधनाभिप्रायेण तद्योजनीयं, भित्रप्रकारकसाध्यनिर्ण-येऽपि यदनुमानमादायापि तयोपपत्तेरिति। नन्वयमालोको धूमो वित्यादौ धूमत्वालोकत्वादेरवच्छेदकस्यानिर्णयात् कयं तत्रा-नुमितिः, क्रयं वा तेनैव मौमांसकमतनिराकरणं इत्यत भाह, ऽतिप्रसङ्गात्, न च कम्मोदिहत्तित्वावच्छेदेन गुणसामा-नाधिकरण्याभाववत्यां सत्तायां वर्त्तमानत्वाद्ग तथा, तथा सति विशिष्टसत्तात्वे प्राग्रुपदर्शितदिशा च धूम-त्वादावव्याप्तिप्रसङ्गात्, तथापि अतिरिक्ते यडमीविशि-

त्रयमालोक इति । सामान्यत इति । (\mathfrak{k}) साध्यसामानाधिकरखा-वच्छेदकरूपवच्वेन तयोनिर्णयादित्यर्थः। विश्विष्टीत धूमलले-नालोकत्वलेन सन्देहिऽपीत्यर्थः। सामानाधिकरण्यावच्छेदकविग्रि-ष्टवान् पर्व्वतोऽयमित्येव परामर्शाभ्युपगमादिति भावः। त्राद्ये मेयलेति उभयवाह, धूमलेति । सार्व्वभौममतमाशङ्का निराकुरुते, न चेति। न च तथा न तदभाववदद्वत्तिलम्। ग्रथ तन्मते विशिष्टं तावदतिरिक्तसेवेत्यन चान्न, प्रागिति । धूमावयवे धूमेन विज्ञसामानाधिकरण्यमिति प्रतीतेर्धूमिऽपि तदभावसम्मात् धूमत्वस्य तथालं व्याहतमित्यर्थः। अतिरिक्त इति। अतिरिक्तलावच्छे-देनेत्यर्थः, तेन धूमवान् वक्नेरित्यादी कस्यचिदितिरिक्तस्य जल-बारेर्वज्ञिवविशिष्टवज्ञाधिकरणावृत्तिवेऽपि धूमाभावस्य तथावि-धस्य विज्ञाविधिष्टवद्योगोलकवृत्तिलात्रातित्याप्तिः । केवलान्व-विनि तु साध्यसामानाधिकरखाभाववान् गगनादिरेव (२)बोध्य:, त्रव चाहत्तिलमित्यवापि हत्तिलमामान्याभावी बोदयः, तेन

⁽१) द्रंतरु पुस्तकात्त्रयस्य पुस्तके—सामान्यतद्गत्र्यादि परामर्थाध्युपगम।दिति-भावदृत्यन्त पाठो नास्ति ।

⁽२) इं ५ स्तवे - इति वोड्रव्यम्।

ष्टदेविधिकरणवृत्तित्वं न वर्तते, तत्त्वं साध्यासमा-नाधिकरणावृत्तित्वविधिष्टाधिकरणवृत्तित्वसामान्यकत्वं स्वविधिष्टाधिकरणावृत्ति-यावत्साध्यासमानाधिकरणत्व-मिति तु फलितार्थः। सत्तात्वविधिष्टसत्ताधिकरण-कस्मीदिवृत्तित्वस्य साध्यासमानाधिकरणे कर्मात्वादौ

रासभादिनिष्ठस्थायोगोलक हत्तित्वविशेषस्य धूमाभावादावभावेsपि न चति:। ननु सार्वभीममते सत्ताया अप्यतिरिक्तालं गुणा-वच्छेरेन द्रव्यलमामानाधिकरण्याभाववल्वात्, तथाच द्रव्यं गुण-कर्मान्यले सति सत्तादिलादी गुणकर्मान्यसत्तालाविक्छन-सत्ताधिकरणहत्तिलस्य तत्र मत्त्वादत्राप्तिरित्यत चाह, साध्या-समानाधिकरणेति। तथाचातिरिक्तत्व साध्याधिकरणानधि-करणलमेव भेदघटितं, तच तल नास्तीति नाप्रसङ्गः। एतलाम-न्वयसु वज्ञासमानाधिकरणादिषु(१) न वर्त्तत एव ध्रमत्वविशिष्टा-धिकरणहत्तिलसामान्यमिति बोध्यं, (२) अहत्तिरित्यत्र तादृशह त्तिलसामान्याभावो बोध्यः, स्वं सच्चलेनाभिमतम्, सामान्य-पदप्रयोजनं तृतमेव प्राक्। ननु साध्यासमानाधिकरणाइत्ती-त्यत वृत्तित्याधिकस्य प्रवेशेन गौरवादाह, स्वविशिष्टेति। भन्यसर्वे व्याख्यातमेव। द्रव्यं मत्त्वादित्यतातिव्याप्तिं खण्डयनाइ, सत्तात्वेति। विशिष्टमत्त्वे हितावव्याप्तिं खग्डयनाह, कमी-

⁽१) इ., इस्तक्षे वज्ञासमानाधिकरणहादस्यादिष्।

⁽२) इं, पुस्तके-इति दिशाबोड्डव्यः।

सत्ताद्वातिप्रसङ्गः कक्कांद्यन्यत्वविशिष्ठसत्ताश्रयश्च न कक्कांदिरिति नाप्रसङ्गः, एवच्च मेयत्वादेरिप केवला-न्वयिसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वोपपत्तिः। यत्तु हत्ति-मत्त्वादिकमेव तत्व व्याप्तिस्तद्ग्रहस्तु मेयत्वादिनीति तद्ग, व्याप्तिविरिहहत्तितया ग्रद्यमाणेन कृपेण व्याप्ति-ग्रहासक्कावत् श्रन्यथा श्रतिप्रसङ्गात्, साध्यतावच्छेदक-

यन्यत्वेति। एवम् ईष्टगावच्छेदकत्वनिर्वने। मेयत्वादेरिति, इदं वाचं मेयत्वादित्यादौ, मेयत्वविधिष्टमेयाधिकरणाव्यत्येव वाच्यताममानाधिकरणं (१) गगनादिकं यावदिति मैथिलमतं दूषयन्नाह, यित्विति। तैरुक्तमिष मेयत्वं वैयर्थादेव दूरीक्रत्यवृत्ति-मत्त्वमात्रमुक्तम्, श्रन्थयेति व्याप्तिविरहिवृत्तितया ग्रष्ट्यमाणेनापि व्याप्तिग्रह इत्यर्थः। श्रतिप्रमङ्गादिति। वद्यादौ साध्येद्रव्यत्वा-दिनापि व्याप्तिग्रह श्रापद्यत इत्यर्थः। ननु कथमेतत् द्रव्यत्यस्या-तिरिक्तवृत्तितया ग्रहणे व्यभिचारग्रहस्य बाधकस्य सत्त्वात्, मेयत्वे तु न तथेति चेन्न, व्यभिचारम्पूर्त्तावप्यवच्छेद्याभाववदृत्तितया गरह्यामाणेनावच्छेदकात्वभावग्रहस्यानुभविकत्वादिति। न चाव-च्छेद्याभाववदृत्तितया गरह्याभाववदृत्तितया गरह्याभाववदृत्तितया गरह्याभाववदृत्तितया गरह्याभाववद्वित्तात्व व्यभिचारग्रह श्रावश्यकः, तस्य विभिन्नगरहस्यामग्रीकत्वादिति। साध्यतावच्छेदकेत्यादि। साध्यतावच्छेदक्तस्यस्यववच्छाप्रयोजनं तु समवायावच्छिन्नविद्वस्याध्यक्षपूमाति-

⁽१) इ., मैयत्वासमानाविकरणम्।

सम्बन्धेन साध्याधिकरणे येन येन सम्बन्धेनावर्त्तमानत्वं, हितुतावच्छेदकसम्बन्धेन हित्वधिकरणेऽपि तेन तेन तथात्वं बोध्यम्॥१७॥

नीलधूमत्वादेवारणीयत्वे तु स्वसमानाधिकरण-तादृशधक्यांन्तराघटितत्वेन विशेषणीयं सामानाधि-करण्योपादानाडूमप्रागभावत्वादिसंग्रहः, तद्घटित-

व्याप्तिवारणम्। द्रव्य सत्त्वादित्यादौ माध्याधिकरणमध्यपिततमहाकाले मस्वस्थामान्येनावर्त्तमानं गगनादिकमेव, तच हित्वधिकरणिऽप्यवर्त्तमानमेवित्यत श्राह, येनिति(१)। तथाच गुणत्वादिकमादायैव तत्र नातिप्रमङ्गः। विद्वामान् धूमादित्यादौ वद्व्यधिकरणे समवायसस्वस्थेनावर्त्तमानस्य धूमावयवस्य समवायसम्बस्थेन धूमाधिकरणे वत्त्रमानत्वादाह, हितुतावच्छेदकमस्वस्थेनिति। तथाच तेन मस्वस्थेन धूमवित पर्व्यतादौ समवायेन
तस्यावर्त्तमानत्वमेवित भावः। तथात्विमिति हैत्विधकरणावित्तित्विमत्यर्थः॥१०॥

वारणीयले लिति। येषां मते पारिभापिकं व्याप्यताव-च्छेदकत्त्वमचुणमेव नीलभूमलस्य, किन्तु तथा प्रयोक्तुरिषकेनेव निग्रह इति, तनाते विह्नभीवस्थलो न बोध्यः (२) स्वसमानाधिकर-णेति। तथाच नीलधूमले धूमलमेव ताह्यो धन्मः, धूमिति। धूम-लस्य प्रागभावाहत्तिलेन व्यधिकरणलाहिणिष्टाभावस्त्रताचुण इति त्वञ्च तदविषयकप्रतीतिविषयत्वं, खरूपसम्बन्धविशेष एवावच्छेदकत्वम्, अतएव न ह्यतिप्रसक्तमवच्छेदक-मित्यादिकमपि सङ्गच्छते, अन्यथातिप्रसक्ते अनित-प्रसक्तत्वस्थाप्रसक्तत्वेन तद्विराकरणायोगात्, विम्हयो-

भाव:। ननु नीलध्मलस्य कयं ध्मलघटितलं, नीलध्मलस्य भूमलाजन्य लादित्यत ग्राइ, तदघटितलिमिति। तदविषयकेति। प्रतीतिलीं किकाली किकसाधारणी, नीलधूमत्वविषयकं यज्ज्ञान-न्तदवश्यं धूमत्वमवगाइते, प्रमेयलेनापि तज्ज्ञानस्य धूमत्वविषय-कलात्, धूमलादन्यस्य नीलधूमलस्याभावात्। न च धूमलेप्यव-च्छेदकलव्याकोपः, भूमलस्यापि भूमलाविषयकप्रतीत्यविषयलेन तहटितत्वादिति (१) वाच्यम्, भ्रन्तरपदेनैव तद्वारणात् तस्य च स्वभिवार्यकलात्। मित्रमतमुद्वाटयति, स्वरूपसम्बन्धेति। त्रत-एवेति। यतएवानतिप्रसत्तत्वमवच्छेदकत्वं परित्यत्तिमित्यर्थः। श्रन्यथा तदपरित्यागे, श्रयोगादिति तदभाववति तद्दलभ्रमस्या-त्यन्तमसभावितत्वादिति, भ्रमखण्डनार्थमेव गब्दप्रयोगस्य सार्थ-कलादिति,(२) गुणवस्रतादित्यत्र मत्तालस्यावच्हेदकलाभावं दर्श-यितुमाइ, विक्डयोरित्यादि। तथाच विक्डयोः साध्याभावयोः अधिकरणे एकसम्बन्धेन यहिणिष्टो वर्त्तते म च

⁽१) इ. तदघटितत्याभागादिति।

⁽२) इ. गुरावत्मत्वात् इत्यतः सामानाधिकर्गयावक्केट्क इत्यर्थः एताव त्यस्येनं शास्ति ।

भीवाभावायोरिधकरणे एकस्यैकेन सम्बन्धेन हित्त-विष्यते, अतस्तवावक्रोदकभेदापेचा, अतएव व्यभि-चारिणि साध्यवदभावसामानाधिकरण्ययोर्विषद्वयोष्ठ-पपादनायोपाधितदभावावक्रोदकावनुमन्यन्ते न्याया-चार्थ्याः। सत्तात्वन्तु गुणाद्यभावस्येव गुणस्यापि न सामानाधिकरण्यावक्रोदकं विरोधात्। अव्याप्यहत्तेश्च कपिसंयोगादेरिधकरणे हचादौ तद-भावस्य संयोगेन च वक्रोरिधकरणे महानसादौ समवायाविक्तन्नप्रति-योगिताकतदभावस्य सत्त्वेनाविष्ठव्वत्वात्। वक्रिमति च संयोगेन वर्त्तमानस्य धूमादेविक्राभाववित स्वाव-

धर्मी नोभयोरेकस्यापि सामानाधिकरण्णावच्छेटक दल्यर्थः।
एकस्येति एकधर्मावच्छित्रस्थेलर्थः, तेन धृमवान् वक्नेरित्यत्व
वक्नेर्नानालेऽपि न चतिः। प्रत्यवयवच्यावृक्तिस्त्वये स्वयमेव
स्पुटीकरिष्यति। श्रवच्छेटकस्यावस्थकत्वे परमेषामनुमितिं दर्भयति, श्रतएवति। विरोधादिति। तथाच विनिगमनाविरहेण न
कस्याप्यवच्छेटकत्वमिति भावः। विरुद्धयोरित्यस्य फलमाह, श्रव्याप्यवच्छेटकत्वमिति भावः। विरुद्धयोरित्यस्य फलमाह, श्रव्याप्यवच्छेटकत्वमिति। ननु संयोगसंयोगाभावयोरवच्छेटकं शाखादिरूपं
भियत एवति विभिन्नावच्छेटकौ तौ दर्भयत्वाऽविरुद्धावच्छेटकौ
तौ दर्भयति संयोगेन चेति, श्रनयोस्त्वेकावच्छेटेनापि वृक्तिध्येया। एकेन सम्बधेनेत्यस्य फलमाह, विक्नमतौति। ननु तद्धम-

यवे संयोगेनावर्त्तमानत्वाच तदृचत्वत्वधूमत्वादेनी साध्यसामानाधिकरख्यावच्छेदकत्वविरोधः। चारधीरप्येतद्याप्तिबुडी विरोधिन्येव तद्वर्मीविशि-ष्टस्य साध्यानिधकरणवृत्तित्वग्रहे तदवच्छेदेन साध्या-धिकरणवृत्तित्वग्रहायोगात्, त्रम्तु वा हेत्हत्तिधर्मस्य साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदक-व्यभिचारः तडीरेव साचादिरोधिनी व्यभि-चारान्तरधीस्तु परम्परयेति नीलधूमत्वादिकन्तु गौर-वाद्मावच्छेदकम्, एवञ्च लघुघटत्वादिकमेव सामाना-धिकरण्यावच्छेदकं व्याप्तिः। नत् तत्सहचरितकम्बु-गीवादिमत्त्वादिकां, तेन च गुम्णापि क्षेण व्याप्तिग्रही कथायां इतोरूपन्यासे वानुयोगः प्रकारान्तरव्याप्ति-वादिनामपि समानः। एवं द्रव्यं रूपात् रसादित्यादी

विशिष्टस्य साध्यानिधकरणवृक्तित्वग्रहेऽपि तदवच्छेदेन साध्या-धिकरणवृक्तित्वग्रहो न दुर्घटः ग्राह्याभावास्प्रणीदित्यत ग्राह, ग्रसु विति । परम्परयेतीति । एतदुन्नायकत्वेनत्यर्थः । व्यास्यन्तर-वादिनां साम्यसुद्दाटयति एवच्चेत्यादिना, व्याप्तिग्रहे दति स्वार्थपरार्थाभिग्रायेण परार्थस्थलेत्वाह, कथायामिति । प्रकारा-न्तरं हेतुसामानाधिकरणेत्यादिक्पम्, ग्रत्न मते दूषणसुद्दाट-यितुं तुल्ययुक्त्या लाघवेनान्यतास्यवच्छेदकं निर्दारयित, एवमिति । सक्त गुणसाधारणस्य गुणत्वस्य द्रव्यत्वादिसाधारणस्य गुणासमवेतत्वे सित द्रव्यसमवेतत्वस्य वैकस्यावक्छेदक-त्वसम्भवे वङ्कनां रूपत्वादीनां न तत्त्वं विक्रडधर्मा-द्रयाधिकरणयोश्च एकस्थैकेन सम्बन्धेन वृत्ती कथं विरोधः, कथं वा द्रव्यत्वादी साध्ये हेतृत्वेन विशिष्ठ-रूपादेः प्रयोगः, तथा परामर्शाद्वानुमितिरिति विभाव-नीयम्॥ १८॥

सर्वसाधारखायगुणत्मपेच्याह, द्रव्यतादीति। गुणासमवेतत्व हति। एतेन सत्ताव्याहत्तिः विशेष्यद्वेन कर्मत्वादिव्याहत्तिः। न चात्र क्ष्णासमवेतत्वादिभ्योऽपि सत्तावारणे विनिगमनाविरहा-त्तावतां गुणानां (१) नीलायनुधावनेन च नानात्वावधारणे बह्र-नामपि हेतृत्वमापितितं, तथाच तदपेच्य कृपत्वादिकमेव सम्यक्, गुणत्वस्य सामान्यत्वेष्यऽखण्डतया तुल्यत्वादिति वाच्यं, परम्प-रावच्छेदकत्वकत्त्यने विनिगमकत्या सर्व्वसाधारणस्य गुणामम-वेतत्वस्यैव सम्यक्तात्। श्रतपव तुल्यमपि कात्रयत्वादिकमपहाय श्रव्यात्रयत्वमेवाकाश्रपदशक्यतावच्छेदकं स्वयमेव गुणिटिष्यन्यां व्यवस्थापितम्। यद्वात्र वाकारोऽनास्थायां सर्व्वसाधारणं गुणत्व-मेव पूर्वीतां सम्यगिति एतन्मतं दूषयित, विरुद्धभैद्दयेति। ताहशव्याप्तेरप्रयोजकत्वादित्यर्थः। (२) तथाच द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र

⁽१) दूं, भी लाद्य सुधावनेन च नानात्वावधार खे एतत् पाठो नास्ति।

⁽२) इं, तथाचेत्यादि स्थादिति भाव द्रत्यन्तः पाठो नास्ति।

अपरे तु यडक्मीविशिष्टहेत्विधिकरणत्वं साध्याधि-करणताया अवक्छेदकं सधक्की व्याप्तिः, ग्रन्थस्तु धूमस्य धूमवतः, धूमत्वं धूमवच्वं, वक्केस्तु विक्कि-मतिस्वत्यादिप्रकारेण व्याख्येयः। अव चावक्छेदकत्वं न स्वरूपसम्बन्धविशेषः, विक्वदिकालाविक्छन्नवृत्ति-कस्य न्यूनदेशकालवृत्तिकादेश्वाधिकरणत्वयोर्मिथोऽवक्छेद-सम्भवात्तुल्यवृत्तिकाधक्षीदयाधिकरणत्वयोर्मिथोऽवक्छेद-

सत्तात्वमवच्छेदकं स्थादिति भावः। पूर्व्योक्तमेवोद्घाटयति, कथं विति।स्वार्थसाधारस्यायास्च, तथेति॥१८॥

मित्री तं वसुतसु कल्पमुद्दायति, अपरे लिलादि। गुणकर्मान्यलविशिष्टसत्तालसंग्रहाय, यहर्मेति। विरुद्धेत्यादि। विरुदलं देगे काले चान्तितं, तथाच विरुद्धिगवस्थितयोविरुद्धकालाविष्टित्रयो: प्रतियोगितद्वंसयोश्च सामानाधिकरण्येन व्याप्ती
नैकाधिकरण्लमपराधिकरण्तावच्छेदकं, तदनवच्छेदकेऽपि तदलिप्रसङ्गात्। एवं विद्धमान् धूमादित्यत धूमाधिकरणं वद्धाधिकरणपिच्या न्यूनं नित्यनिरूपितजन्यनिष्ठव्याप्ती जन्यकालोऽपि न्यूनो बोध्यः। तुल्येति। एतदूपवान् तद्रसादित्यादी परस्परावच्छेद्यावच्छेदकभावेऽन्योन्याश्ययः, तथाच क्रतः
खरूपस्वस्थरूपावच्छेदकलक्षक्षनास्त्वित (१) भावः। श्रत

⁽१) इं, अवच्छेदकत्वकत्पनेति।

कभावस्य च नियन्तुमशक्यत्वाद्वाप्यन्यूनहित्तकत्वं न्यूनहित्तकधूमादेरव्याप्यतापत्तेः । किन्त्वनितिरिक्तहित्तत्वं
स्वान्यूनहित्तत्कत्वमिति यावत्, श्रतो न केवलान्वयिन्यव्याप्तिः, श्रव च यदन्यूनहित्तमाध्यं तत्त्वं स्वव्यापकसाध्यसम्बन्धित्वपर्य्यवसद्गमपेत्त्य गौरवं परमविश्यति
तच्च यन्यकार एवाग्रे विवेचिय्यत द्रत्याहः ।

वदन्ति, श्रयमन्योन्याश्रय उत्पत्ती ज्ञप्ती वा नाद्यः तयोरजन्य-लात् क्ष नान्यः, एकतरयहाभाविऽपि सामान्यतोऽन्यतर-यहेऽवच्छेद्यावच्छेदकभावपरिच्छेदेऽविरोधात्। ज्ञाने तथाले-ऽपि वसुस्थितावविरोधाचेति। वसुस्थितावेव ईष्ट्रशान्योन्याश्रयो दूषणावहस्तान्त्रिकेरङ्गीक्रयते इत्यपरे समादधः। स्वान्यूनेति। स्वं हेल्वधिकरणता, (१) तलाध्याधिकरणतात्र्याप्तेर्हेतृहत्तिलाय-बहुत्रीद्यनुधावनम्। सत इति।(२) एताष्ट्रशविवच्चणादित्यर्थः। विवेचियथत इति। यत्र्यकारो लाघवादन्योन्याभावगर्भेवित्यादावि-त्यर्थः।(३) ननु साधननिष्ठस्य साध्यसामानाधिकरस्यस्यावच्छेद-

समकालीनयो कृपरसयोः परस्परं खजन्यजन्यलकृषापादकोन खस्य
 स्व पूर्ववित्तिपूर्ववित्तिस्वापादनकृषो य अस्तावन्योन्यात्रयः अवक्केद्यावक्केदकभाव कल्पने ताडशस्य अभावादिति भावः।

⁽१) इं, तत्साध्याधिकरणता इति नास्ति।

⁽२) इं, एताडशविवचाणादित्यर्थ इत्यादि प्रन्यकारः इत्यन्तं नास्ति।

⁽३) इं, अम्बोन्याभावगर्भेषोत्वादावित्वर्धः।

श्रयवा यत्मामानाधिकरण्यावच्छेदकाविच्छित्नं यस्य खरूपं तत्तस्य व्याप्यं, विद्वसामानाधिकरण्यं हि धूमे धूमत्वेनाविच्छ्यतं, सौपाधौ तूपाधिना। श्रतएव साधनतावच्छेदकभिन्नेन येन साधनताभिमते साध्य-सम्बन्धोऽविच्छ्यतं, स एव तत्र साधने विशेषणमुपा-धिरिति वदन्ति॥ १८॥

उपाधिनिति। विशेषणतामापन्नेनोपाध्यतुप्रवेशेनिति यावत्, वज्ञावार्द्वेस्थनप्रभवविज्ञत्वेन रासभार्द्वेस्थनादौ च तथाविधविज्ञिविशिष्ठत्वेन धूमसम्बस्धेऽविच्छिद्यमाने तथाविधवज्ञेरप्यनुप्रवेशात् रासभत्वादिकन्तु निविशते न वेत्यन्यदेतत्। अत्र चेदं स्नेहवत् निःस्नेहं वा

कलमुपाधिर्व्यधिकरणलादसभावीत्यत श्राह, विशेषणतित । तथाच विशेषणतया तस्य तदुपपत्तिरिति भावः । ननु रासभादी तथा-विधविक्षसमानाधिकरणलमवच्छेदकं, तत्र च उपाधेस्तथाविध-वक्नेः साचादिशेषणलमनुपयन्नित्यत श्राह, उपाधीति । श्रनुप्र-वेशे वैस्वच्यमाविष्कर्तुमाह, वक्नावित्यादि । श्राट्रेन्यनप्रभवविक्नले श्राधारतयाऽनुप्रवेशः, इतरयोसु सामानाधिकरप्येनिति श्राट्रेन्यने च कदाचिज्यनकलेनाप्यनुप्रवेशो घटत इति तस्य प्रथमुक्तिः । ननु तदिशिष्टरासमलेन सम्बन्धेऽविच्छिद्यमाने रासमलस्य वैद्य- स्पर्शादिखन विनाष्युपाधिप्रवेशं शीतत्वेन शीतान्यत्वेन वा साध्यासमानाधिकरणतया साधनव्यापकतया वा स्वयमनुपाधिना केवलेन विशेषणीभूय वा शीतान्य-स्पर्शत्वेन चोपाधिना स्वत एव स्पर्शे साध्यसम्बन्धोऽव-क्तियत द्रत्युपाधिनैवेति नियमे न तात्पर्थे परन्तु श्रुडस्य साधनतावक्केदकस्यानवक्केदकतामावे यत एव

र्थादाइ, रासभलादिकमिति। अन्यदेतदिति। तथायनुप्रवेशेऽपि न हानिरिति भावः। अन चेति। न तात्पर्थमित्यनेनान्वियमाध्यासामानाधिकरण्येन साधनव्यापकतया चानुपाधित्यावतारणाय उदाहरण्डयं, साध्यासमानाधिकरणतयेत्याचे,
साधनव्यापकतयेत्यन्ये, एतद्वयं स्वयमनुपाधिरित्यत्र (१) हेतुः,
केवलेनित। श्रीतत्वेन विशेषणीभूय वेति, श्रीतान्यत्वेन (श्रीतान्यत्वस्य
स्पर्भत्वे विशेषण्यादिति भावः,) श्रीतान्यस्यर्भत्वेन चेति चकारस्वर्थः। स्वत एवत्येवकारेण विशेषण्यं व्यवच्छिनं, यदाप्यस्थोपाधेन शुद्धसाध्यव्यापकता स्नेहाभावस्य साध्यस्य (२) गुणाहित्तित्वात्त्रयापि पृथिवीस्पर्भजलान्यतरत्वावच्छिन्नसाध्यस्य व्यापकता बोध्या। ननु अत प्रथमे तथास्पर्भतिष्ठसम्बन्धितायां
श्रीतत्वमवच्छेदकं तथा जलत्वविशिष्टस्पर्भत्वमप्यस्तु, जलत्वस्य च
उपाधित्वसुपपदमेव, दितीये च श्रीतान्यस्पर्भत्वेनाविच्छद्यमाने

^{- (}१) इ. स्वयमत्त्रपाधिनेत्यत्। , (१) इ. प्रव्यादिष्टन्तिलाहिति।

त्रतएव चतुष्टयः।

श्रतएव च साधनाव्यापकाले सित साधनाव-चित्र त्रसाध्यव्यापकालं जचणं ध्रुवं, व्यभिचारिणि-

सोपाधी साधनतावक्छेदकातिरिक्तं नियतमवक्छेदकम्, श्वतएव तिद्वशिषस्तवोपाधिरिति वदन्तीत्या हु ॥ १८ ॥ श्वतएवित्यादि। श्रवावक्छेदकालं सामानाधिकराखेन तत्त्वञ्चान्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्विमिति यावत्, तञ्चाधि-

श्राद्रंस्वनप्रभवविज्ञवत्तत श्रीतान्यस्रश्रीऽप्यनुप्रविष्टः, स चीपाधि-रेव, हतीये तु उपाधिनैवाविच्छद्यत इत्यत न कापि चिति-रिति चेनौवम्, उपाधिनैवाविच्छद्यत इति नियमेऽनुप्रविष्टी-पाधिलस्य यद्यवच्छेदकल्वव्यापकलं, तदा प्रथमे व्यभिचारी बोध्यः। श्रथानुप्रविष्टावच्छेदकलं व्याप्यं, उपाधिलं व्यापकं, तत्र दितीये व्यभिचारो बोध्यः। श्रथावच्छेदकोपाधिलं व्याप्यं, श्रनुप्रविष्टं व्यापकं, तत्र हतीयमिति यावत्। तद्दिशेषः साधनता-वच्छेदकातिरिक्तसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकविशेषः, तेन श्रीतला-दिव्याव्यक्तिः॥ १८॥

ननु साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धिताया व्यधिकरणस्योपाधेः (१) कथमवच्छेदकत्वमित्यत श्राह, सामानाधिकरण्छेनेति। तथाच यसामानाधिकरण्यमवच्छेदकमित्यर्थः। यदा सामानाधिकर-

⁽१) इ. अनुप्रविष्टोषाचे ।

साधने एकत साध्यतदभावयोर्विरीर्धनावक्छेदकभेदं विना तदुभयसम्बन्धाभावादवश्यं साध्यसम्बन्धिताव-क्छेदकमस्ति, तदेव च साधनाविक्छद्वसाध्यव्यापकं

करणान्तर्भावन तेन साध्यविशिष्टसाधनताव च्छेदकाव-च्छित्नसाधनव च्वयापकाधिकरणताक त्वं पर्य्यवस्यति, निकक्तविशिष्टसाधन व्यापक त्विमिति तु निष्कर्षः। द्रत्यञ्च सत्ताद्येक व्यक्तिक हेतुनिष्ठद्रव्यत्वादिसामानाधि-करण्य व्यापक-सामानाधिकरण्यप्रतियोगिनि-घटत्वादौ

खोनित, न तु प्राखादिव है य धिकर खोनित भावः । तत्त्व मवच्छे - दक्क मित्यर्थः । ननु सम्बन्धि तो पाध्यो वैं य धिकर खात् कथ मवच्छे या-वच्छे दक्क भाव दत्यत श्राह, तचित । तथाच सम्बन्धि तायद धि-करणान्तर्भावेन उपाधि स्तद धिकरणान्तर्भावेन तह्यो रेव व्याप्तिः । इदमेव दर्भयति, तेनेत्यादिना । श्रथवा तथापि द्रव्यं सत्तादित्यत घटत्व घटत्वादावितव्याप्तिः, घटत्व सामानाधिकर खोऽपि ताह श्रम्मानाधिकर खाव व्यापक त्यादित्यत श्राह, तचे ति । तथाच साध्यसम्बन्धिताधिकर णं य दिशिष्ट साधनं तहत्त्व मवच्छे यमित्यर्थः । साधनव त्वव्यापकाधिकर णताक त्यापिक स्वयापक विश्वप्त श्रीरवादाह, निरुक्तेति । साधनतावच्छे दकाविच्छ त्रसाध्यविश्रष्ट साधनव्यापक मित्यर्थः । द्रश्यञ्चेति । श्रिषक रणान्तर्भावेन व्यापक त्यापक त्यापक त्यापक त्यापक विश्वप्त स्वयः । दितीयव्या व्यापक त्यापक त्यापक

साधनाव्यापकं तत्रीपाधि:, श्रतएव व्यभिचारे चाव-भ्यमुपाधिरिति सङ्गक्कते, श्रन्यथा व्यभिचारादेव तवागमकत्वेन व्यभिचारित्वेन न तदनुमानमप्रयो-जकत्वात्॥ २०॥

नातिप्रसङ्गः, न वा द्रव्यं जन्यत्वे सित सत्त्वादित्यादी द्रव्यत्वविशिष्टसत्ताद्यव्यापके स्पर्शवत्त्वादावप्रसङ्गः, निः-स्नेष्ठं स्पर्शात्, द्रव्यं सत्त्वादित्यादी शीतस्पर्शान्यत्व-रूपान्यत्वादेवीरणाय। तत्नेत्यादि। तत्न साध्यविशिष्टे

एकयक्रीति । विभिन्न यिक्ति न्यून हित्तसामानाधिकरण्यसा-धिक हित्तसामानाधिकरण्याय्यापक विभित्त स्कोरियतुम् साधन-तावच्छेदकावच्छितस्य प्रलमान्द्र, न विति । श्रीतस्पर्शान्य वित्यादि-निः स्ने इंस्पर्शादित्यत्र श्रीतस्पर्शान्य वस्य साधनव्यापक तया सर्व्य-सम्मतम् एवा नुपाधित्वं, रूपान्य वस्य तु साधनाव्यापक व्येऽपि द्रव्य वा-भावविशिष्टसत्तावित स्पर्शादी सच्चेन विरोधाभच्चकत्या (१) एत-मात एवा नुपाधित्वमिति । (२) सामानाधिक रण्येनित सामानाधि-करण्य प्रत्यासच्याव्यावर्त्तकं साध्यविशिष्टसाधनभेदकं, तथाच श्रीत-स्पर्शान्य वस्पान्य व्योभेदक व्याभावाचातित्याधिति भावः, तेन घटव्यधिकरणस्य घटवस्य तद्यावर्त्तकस्थापि वैक् चर्ण्यं सूचितम् ।

⁽१) इ.ं, विरोधात्तद्वप्रञ्जनतया।

⁽२) इं, सामानाधिकरखेनेत्यादि नातिव्याप्तिरिति भाव इत्यन्तं नास्ति।

साधने विशेषणं साध्याभावविशिष्टात्साधनात् सामानाधिकरण्येन व्यावर्त्तकं साध्याभावविशिष्टिनिरक्तसाधनवदहत्तीति यावत्, एवच्च द्रव्यं सत्त्वादित्यव
सत्ताया अभेदेऽपि गुणकर्मान्यत्वेनाव्याप्तिः। नापि
द्रव्यं कम्माण्यत्वे सति सत्त्वादित्यच गुणान्यत्वादी,
दृत्यच्च साधनतावच्छेदकस्यानवच्छेदकत्वद्योतनाय परं
तिद्वन्नत्वमुक्तं, न तु विविच्चतमेव तत् वैयर्थ्यात्, द्रदं
दिध जन्यं वा दभ्न दृत्यादी दिधत्वाद्यव्याप्तेच्च।

नन्वेकस्य हेतोः कयं साध्यतदभावविशिष्टससात् स्वस्य व्यावर्त्तक-लिमत्यत श्राह, * साध्याभावविशिष्टिति। निरुक्तं साधनताव-च्छेदकाविच्छिनम्, इदमेव विश्वदयित, एविमिति। निरुक्तस्य व्यावृत्तिमाह, नापौति। इत्यच्चेति। श्रतएव सामञ्जस्ये इत्यर्थः। श्रनुक्तल्वमुक्ता प्रतिकृत्ललमप्याह, इदिमिति। साध्यञ्च नोपाधि-रित्यत श्राह, जन्यं वेति। न चान विवचायां जातिमान् मेयला-दित्यादौ जात्यभाववति मेयलाधिकर्णे समवायसस्वन्धेन वन्ते-

^{*} विशेषणामित तथाच साध्यविशिष्टसाधनं साध्याभावविशिष्टसाधनात् भिद्यते उपाधिसामानाधिकरण्यमित्यर्थः, तेन स्नेहाभावविशिष्टस्पर्भस्य साध्या-भावकृषस्नेहिविश्वस्पर्भेदे साध्यशीतस्पर्धान्यत्वसामानाधिकरण्यादिति हेत व्यभिचारी शोतस्पर्भे शीतस्पर्धान्यत्वसामानाधिकरण्यं तेन साध्याभावकृपस्नेह विशिष्टस्पर्भेनेद इति न शीतस्पर्धान्यत्वसुपाधिरिति कृषान्यत्वस्पर्येनं, नसु तथापि दृष्यं सत्वादित्यत् गुणकम्मीन्यत्वं नोपाधिः स्थात् द्रव्यत्विशिष्टसत्वे द्रव्यभेदविशिष्ट-सत्तभेदाभागदित्यत् त्राह्म साध्येति।

यहा, प्रक्षतसाधनतावक्केदकानवक्केद्यप्रक्षतसाधननिष्ठ-साध्यसम्बन्धितावक्केदकालं पूर्व्यदेलार्थः, अनवक्केदक-लञ्ज तस्य साध्याभावविशिष्टसाधनहत्तितया तहिशि-ष्टसाधनस्य साध्याभाववहृत्तित्वेन साध्याभाववतस्त-

रप्रसिद्धेः सत्त्वाद्युपाधावव्याप्तेः, सिद्यान्तलचणोत्तखण्डमः प्रसिद्धा-वेव सुत्तभलादिति, साध्याभावविशिष्टसाधनाऽधिकरणलव्यापकी-भूततसम्बन्धाविक्वत्रप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगीति(१)तद्वार्ध-इत्यपि केचित्। श्रव च तत्सम्बन्धः साध्यविशिष्टसाधनव्यापकता-घटकसम्बन्धाः बोध्याः । साधनतावच्छेदकभिन्नेनेति (२) सार्थकी-कर्त्तमाह, यदेति। पूर्व्वकल्पे तत विशेषणमित्यस्य (३) साध्याभाव-विशिष्टसाधनवदद्वत्तितया व्याख्यातस्य बलादेव संदेतुत्वनिरासः। भन तु यथा व्याख्येयस्य सद्देताविप सत्त्वादाह, प्रक्षतसाधनता-वच्छेदकीत्यादि । तथाच सदेती साधनतावच्छेदकावच्छेदा साध्य-सम्बन्धितेति तनिरास:। तस्य साधनतावच्छेदकस्य। ननु द्रव्यं गुणकमा एवं पति सत्तादित्यादी गुणकमा एवसत्तातस्य द्रवा-लाभावविशिष्टमत्तावृत्तितया विविचितस्य सत्वात्, गुणकांभाष्य-सत्वादावतिव्याप्तिरित्यत ग्राह, तिहिगिष्टेति। साधनतावच्छेदक-विभिष्टेत्यर्थः (१), तथाच गुणकर्न्यास्वसत्तात्वविभिष्टस्य न साध्या-भाववदृत्तित्विमिति भावः। ननु तथापि विशिष्टस्य अनित्रितः-

⁽१) इं, तिइद्वार्थः। (३) इं, पूर्वेकल्पविशेषणिस्यतः।

⁽२) इ.ं, भिन्नेति। (८) इ.ं. साधनताव च्छेट्क विशिष्टे त्यर्थः एतत्पाठो नास्ति। ३१

दिशिष्टसाधनवत्त्वेनित यावत्, एतेन धूमवान् मेयवत द्रवादी मेयानवच्छेद्यसाध्यसम्बन्धाप्रसिद्धिः, गुणवद्-गुणकामान्यत्वे सति जातिमत्त्वादित्यादी जातित्वघट-कानित्यत्वादेवेयर्ध्येन विशिष्टस्थानवच्छेदकतया गुण-कामान्यत्वादेगपाधितापत्तिश्चेति निरस्तम्, श्रवच्छेद-कात्वञ्च सामानाधिकरण्येन, तथाच साध्यविशिष्टस्य साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकासाधनतावच्छेदकाविच्छन्नसा-धनस्य व्यापकत्वमर्थः पर्य्यवस्थित, उपदर्शितशीत-

वात्तद्दोषतादवस्यम् इत्यतं याहं, साध्याभाववतं इति। यत्र यद्यपि विशिष्टस्यानितिकालेन साध्याभाववत्यपि गुणादौ सत्ता-वत्तेन तिद्दिशिष्टसत्तावत्तं, तथापि तथा प्रत्ययाभावात्रं (१) तथा-विभिति। एतेन ईदृशावच्छेदकलस्याविवचणेन। ननु तथापि बह्नां मेयानाम् अवच्छेदकलमपेच्य एकमेव लघु केवलान्वयि-मेयलमबच्छेदकं वक्तव्यं, तथाच तदनबच्छेद्या सम्बन्धिता मेयवित वर्त्ततं एव। यदा स्वानवच्छेदकतलालं वाच्यं, तथाच यिलिश्विमीये स्वानवच्छेदकं सुलभमिति तस्यानुयोगितया तदंशे न सामान्या-भावप्रवेश इत्यतं श्राच, गुणविदिति। यत्र च जातिलस्य समवित-त्वगर्भतया तन्यावस्यैव सम्यक्लिमित्यभिप्रायः, द्रश्यं सत्त्वादित्यादौ न्यूनद्वित्तिघटलादादितिव्याप्तिवारणायाहं, तथाचिति। साधनताव

⁽१) इ.ं, प्रत्ययाभावादेवा तथात्वस्।

स्पर्शान्यत्वादिवारणाय, तत्नेत्यादि । तत्न साधनताव-च्छेदकविशिष्टे साधने, विशेषणं साध्यग्रन्याद्याद्यादेने-पयिकं, यत्मामानाधिकरण्यविशिष्टप्रकृतसाधनवच्चं साध्याभाववति न वर्त्तत द्रति यावत्, साध्याभाव-विशिष्टप्रकृतसाधनाधिकरणसामान्यात् साध्यविशिष्ट-प्रकृतसाधनाधिकरणसामान्यस्य व्यावर्त्तकमिति समु-दयार्थनिष्कर्षं द्रत्यांहः ।

च्छेदकभिनेति सार्धकीकर्त्तं चरमदलं सद्वेतसाधारणं व्याचष्टे। तनेति। व्याव्योपयिकं साध्याभाववतः। यदिति, यत्पदमुपाधि-परम्। प्रक्तति, साधनतावच्छेदकावच्छिन्नमित्यर्थः। तेन द्रव्यं कम्मान्यत्वे सति सत्त्वादित्यादौ गुणान्यत्वेनाव्याप्तिः निष्कृष्टं कल्पान्तरमाह, साध्याभावित्यादि। पूर्व्वकल्पस्य निष्कर्षोऽयमि-त्यन्ये। प्रक्वति, साधनतावच्छेदकाविक्षिन्नेत्यर्थः।

तेन द्रव्यं कभान्यत्वे सित सत्त्वादित्यादी गुणान्वत्वस्य संग्रहः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादी गुणान्यत्वस्य द्रव्यत्वाभाववहुणव्यावर्त्तकत्वादाह, सामान्यादिति । तथाच कभाव्यावर्त्तकत्वेन (१) न तत्वातित्याप्ति-रिति । प्रक्रतेति, साधनतावच्छेदकाविच्छिन्नेत्यर्थः। तेन द्रव्यं जन्यत्वे सित सत्त्वादित्यादी द्रव्यत्वविशिष्ठसत्ताधिकरणसामान्या- केचित्तु विशेषणं सामानाधिकरण्यं, तथाच सामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या येनाविक्तियते अवक्तेद-कीभूतसामानाधिकरण्यप्रतियोगीति यावत्, अवक्ते-दक्तत्वञ्चेदमन्यूनानितिरिक्तहत्तित्वं गुरीरप्युपाधिसामा-नाधिकरण्यस्याचतमेव। यद्यपि वायुः प्रत्यच उइत्र प्रप्यविद्यत्व महत्त्वस्यानि-त्यद्रव्यत्वादित्यत्व महत्त्वस्यानि-त्यद्रव्यत्वादित्यत्व महत्त्वस्यानि-त्यद्रव्यत्वादित्यत्व महत्त्वस्यानि-त्यद्रव्यसमवेतत्वस्य च वच्चमाण्यंचणाक्रान्तस्योपाधः

व्यावर्त्तक्षेत्रिपि (१) सार्यवन्तेनाप्रसङ्गः । द्रव्यं सन्त्वादित्यत्र घट-व्यादावित्याप्तिवारणाय सामान्येति ।

सार्वभीममतमवलस्वमान ग्राह, केचित्ति। उपाधे-हें त्वहत्तित्वेन विशेषणत्वं न घटते इत्यत ग्राह, सामानाधि-करण्यमिति। ननु तथाप्युपाधे: सम्बन्धितासामानाधिकरण्य-मेतदेवाह, (२) तथाचेति। सामानाधिकरण्यस्य प्रत्यासत्तित्वे मानाभावादाह, ग्रवच्छेदकीभृतित। नन्ववच्छेदकत्वं स्वरूप-सम्बन्धविशेष:, तचार्द्रेन्धनप्रभवविक्तमत्त्वस्यैव काल्पाते, न त्वार्द्रे-न्धनप्रभवविक्तसमानाधिकरणस्थेत्यतः पारिभाषिकं, तदाह, ग्रवच्छेदकत्वचेति। ग्रतप्वाह, गुरोरिति। उज्जूतेति। वन्ध-माणलचणाकान्त्यथं ग्रन्थथा प्रत्यच्त्वाभावविधिष्टरूपवतां चन्नु-रादीनामव्यावर्षकत्वेन महत्त्वस्थानुपाधित्वं स्थादिति। ग्रवी-

⁽१) इ., न चतिः। (१) इ., सन्बन्धितासामानाधिकर्य्याभावादान्त।

सामानाधिकरण्यं साध्यसामानाधिकरण्यन्यूनाति-रिक्तवृत्ति, तथापि हेतुनिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यस्य हेतुनिष्ठं यत्सामानाधिकरण्यमन्यूनानितिरिक्तवृत्ति-

पाधिसामानाधिकरखां साध्यसामानाधिकरखान्यून व्रस्यति रिक्त-व्रचिपि, प्रत्यचलसामानाधिकरण्यस्य गुणलादौ वर्त्तमानलात्तव तदभावास इस्त्रसामानाधिकरण्यस्य गगनलादी विद्यमानला-त्तर्नेतदभावाच, हेतुनिष्ठेति। तथापीत्यादी हेतुनिष्ठेत्यच हेतु-तावच्छेदकावच्छिन्न इतिवैक्तव्य दलाभिप्रायादुदा हरणान्तरमाह, महानिति। श्रनित्यपदं वच्यमाणलचणाक्रान्यर्थम्। तेन मह-चविशिष्टद्रयालवति गगनादावनित्यसमवेतलस्यावर्त्तमानलेऽपि श्रव हेतुनिष्ठमामानाधिकरण्यमित्युत्तेऽपि न निर्वाचः, श्रनित्यद्रयत्वस्य द्रयताभिन्नतया गगनावच्छेरेनापि हेती महत्त्वसामानाधिकरखस्य विद्यमानलात्तदवच्छेदेन चोपा-धिसामानाधिकरखाभावादिति, श्रवापि यथाश्रुते उपाधिसामाना-धिकरखे साध्यसमानाधिकरख्यन्यूनातिरिक्तत्वस्येवाऽत्र महस्त्व-सामानाधिकरखस्य गगनलादौ विद्यमानलात्तत्रीपाधिसामाना-धिकरखाभावादुणधिसामानाधिकरखस्य रूपलादौ विद्य-मानलात् साध्यसमानाधिकरखाभावात्, तथापीत्यादि हेतु इय एव हेतुतावच्छेदकावच्छित्रलं बोध्यम्, ग्राद्यहेतुतावच्छेदकाव-च्छिनलप्रयोजनन्तु उपदर्शितं, दितीयोदाहरणभागे दितीयस्य तु द्रव्यं कर्माण्यत्वे सति सत्त्वादित्यादी कर्म्मावच्छेदेनापि

तत्त्वं विविचितं सत्त्वनिष्ठद्रव्यत्वसामानाधिकरण्यं च तिद्वष्ठकासीन्यत्वसामानाधिकरण्यमतिरिक्तवृत्ति, गुणे तदभावावच्छेदकाविच्छद्ववृत्तिकत्वात्, पृथिवौत्वादि-सामानाधिकरण्यन्तु न्यूनवृत्ति, जलादौ तदवच्छेद-काविच्छद्ववृत्त्यभावप्रतियोगित्वात्, साध्यव्यापकानां सद्वेतावुपाधित्ववारणाय, साधनतावच्छेदकभिन्नेनिति तदनवच्छेद्यार्थकमित्याद्यः॥ २०॥

हेती गुणान्य तस्य सामानाधिकर एस स्वेऽपि नाव्याप्तिरित, यन्यूनानितिरिक्तिमित्यतानितिरिक्त तस्य प्रयोजनमाह, सस्वनिष्ठेति।
गुण इति। तदभावो द्रव्यत्यसामानाधिकर एसामावः। यन्यूनवृत्तितस्य फलमाह, पृथिवीत्विति। जन्नादाविति। तदवच्छेदक्तं द्रव्यत्यसामानाधिकर एसावच्छे दक्तम्। ननु साध्यसम्बन्धितायाः साधनतावच्छे दक्तिभिन्न त्वेति, तस्मिन् दत्तेऽपि न वारणमित्यत याह, तदनवच्छे येति। (१) तयाच हेतु निष्ठसाधनतावच्छेदकानवच्छे यसाध्यसामानाधिकर एसावच्छे दक्तत्वसमनियतं हेतुनिष्ठं यसामानाधिकर एसावच्छे दक्तत्वतत्व सुपाधित्विमिति। नन्वीदम्मित्यम एव कयं प्राभाकरमते निरदङ्कि, प्रत्यच्चो मूर्त्तेत्वादित्य व मूर्त्तेत्वं प्रत्यच्चत्वव्यभिचारिसूर्त्ते छङ्ग तरूपव्यभिचारित्वात् इति
व्यभिचारसाधकस्य मूर्त्तेत्वादेरपरिग्रह इति॥ २०॥

^{. (}१) इ., तथाच इत्यादि उपाधित्यमित्यन्तपाठी नास्ति।

श्वतएव च तव साध्यसम्बन्धितावक्छेदकरूप-लचणा व्याप्तिः, साधनताभिमते च कास्तीति स्फटिके जवाकुसुमवटुपाधिरसावुच्यते, लचणन्तु साध्यसाधन-सम्बन्धव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वं, विषम-

नन् सर्वेच सोपाधी सर्वेणोपाधिना साध्य-सम्बन्धोऽविक्तिद्यत द्रित न नियमः, अयं प्रत्यचो मूर्त-व्यादित्यादावुद्भूतक्षपवन्वादेः तदसम्भवादित्यत आह, अतएव च तचेति। यत एवोद्भूतक्षपवन्वादेनं तथात्व-सम्भवः, अतएव तत्र तादृशिनयमवादिमते दूरं, लचण-मिति, साधनाव्यापकत्विमिह साध्याभावविशिष्टसाधन-व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं, तादृशसाधनासामाना-धिकरण्यमिह पर्य्यवसितं, तेनोपदर्शितोद्भूतक्षपवन्व-व्युदासः। अथ प्रत्यची द्रव्यत्वादित्यादी घटत्वादा-वितव्याप्तिः, साध्यव्यापकत्वेन विशेषणे च स ग्र्यामो मित्रातनयत्वादित्यादी शाक्षपाकजत्वादावव्याप्तिरत

श्राभाष्यमानलचणकर्तुस्तदलचणत्वमेविति व्यञ्जयवाह, न-न्विति । नन्वेतलचण एव यथाश्रुते कयं तिवरास दत्यत श्राह, साध-नाव्यापकत्विमहिति, व्यापकत्वपर्यन्तप्रविषे गौरवादाह, ताद्यप्रित । तेनेति । प्रत्यचत्वाभाववित सूत्ते परमाखादाविष उद्गुतकृपस्य वर्त्त-

व्याप्तस्तु नीपाधिपदवाच्यः प्रवृत्तिनिमित्ताभावात्, दूषकता च तस्य व्यभिचारोज्ञायकतया । न च व्यभिचारोज्ञायकत्वमेवोपाधित्वम्, अप्रयोजकसाध्यव्यापक-व्यभिचारिगोऽरप्युपाधित्वापत्तिरिति ॥ २१ ॥ द्रित तत्त्वचिन्तामगौ विशेषव्याप्तिः समाप्ता ।

उत्तं, साधनसम्बस्धेत्यादि। साध्याभावसम्बस्धिनि विम्रुडस्य साध्यसम्बस्धस्यावक्छेदभेदं विनानुपपद्यमान-स्थावक्छेदकीभूयोपपादनमुपाधिफलं तदसमर्थानाञ्चो-पद्शितोङ्गृतरूपवत्त्वादीनां नोपाधिभावः सम्भवतीत्याह, व्यभिचारिणोरिति। व्यभिचारः सपच्चविपच्चवृत्तित्वम्। अथ विपच्चगामित्वरूपव्यभिचारोद्मयनमेवोपाधिफलं

मानलेनेत्यर्थः । साध्यव्यापकलेनेति, साध्यतावच्छेदकावच्छितसाध्यव्यापकलेनेत्यर्थः । नन्नीदृश्विवचयैव कथमुद्भृतक्ष्पादीनां
वारणमित्यनुश्यान उत्तरग्रन्थं योजयन्नाह, साध्याभावसम्बन्धिनौति । तथाचोपाधाविष द्रेदृश्यम् ववादौनां गुक्रणां तदलच्यमेव
तदुक्तव्याख्यानदयमदुष्टमिति भावः, विपचगामित्वकृपव्यभिचारे
तस्य विरुद्धसाधारणतया तथोक्तविरोधापादनं न घटतः दत्यत
भाहः, व्यभिचार दति । विपचसमित्वोन्नयनं द्वतीयाऽत एवेत्यनेन

तची हूत रूपादी नामप्यसी त्यत या ह, यत एवं ति। यत एवं साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं रूपं व्याप्तिः, सोपाधी तु खाभाविकं हेतुतावच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदक्मं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदक्मं, यत एवं खसमी पवर्त्तिन खसमानाधिकरणे व्यभिचारिण हेती खनिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदक्मं रूपलचणव्याप्तिसंक्रामकतया साध्यव्याप्यस्थै वीपाधित्वमाचार्य्येरनुमन्यत द्रत्या ह, यत एवं ति।

साध्यन्यूनवृत्तावृपाधियवहारं दूषणीपयिकह्प-स्यावश्यं वाच्यतयोपाधिपदस्य योगहृद्धित्वय्यवस्थापनेन निराकुहते, लचणन्विति। लचणं दूषणोपयिकं रूपम्।

साध्येति। त्रव साध्यव्यापकमात्रं विविचितं, ताव-तैव साधनवृत्तितद्यतिरेकीण साध्यव्यतिरेकानुमान-सम्भवात्। साधनवित व्यापकनिवृत्त्या साध्यसाधन-

तदनिभमतं च वर्षयमाह, अधित । मिणकार एव अतएव तमये न प्रभाकरमतसृष्टभकोकत्याचार्यमतसृपष्टभयतीति वर्षयमाह, अत एविति। गुरुमते द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र गुणकर्माण्यत्वमप्युपाधिः । आचार्यमते तु तस्य व्याप्यत्वाभावानेति विशेषो बोध्यः । दृश्चञ्च साधनतावच्छेदकस्थानवच्छेदकत्वमादाय उपष्टभः व्यवहारं निरा-कुरुत द्रत्यन्वयः । नन्वनुपदमेव स्वनिष्ठव्याप्तिसंक्रामकत्वं निच्चणं सम्बन्धनिवृत्तिसिं बावर्थात्साध्यनिवृत्तिः । सिध्यतीति । प्रकारान्तरप्रदर्भनाय परं तथाविधीतिः । रूट्या न्यून-वृत्तावुपाधित्वव्यवहारं निरस्य योगेनाधिकवृत्ती तिद्वर-स्यति, विपचेति । प्रवृत्तिनिमित्तं यौगिकं व्यभिचारी-द्वायकत्वमेवस्येवकारेण योगार्थानादरं सूचयति । उपाधित्वम् उपाधिपदप्रवृत्तिनिमित्तम्, उपाधिता उपाधिपदवाच्यता, योगादरे तु लाववात्साध्यव्यापक-तामाचे रूढिरिति भावः ॥ २१॥

दूखनुमानदीधितौ विशेषव्याप्तिः समाप्ता ।

क्कतं, तल्लयमिदं लचणमित्यत याच, लचणमिति। प्रकारान्तरित।
तथाचेत्रं व्यभिचारमनुमापियतुरेव तथा लचणमिति, तं उपाधिव्यवहारं, ननु प्रवृत्तिनिमित्तलं यदि प्रकातावच्छेदकलं तचकृदिविषयतावच्छेदकलस्थैवेति यत याह, प्रवृत्तिनिमित्तमिति। स्चयतौति। तथाच तदनन्तरमेव तदुत्यानं घटत इति। ननु
पदप्रवृत्तिनिमित्तव्यवस्थापने उपाधिलव्यवस्थापनमसङ्गतमित्यत
याह, उपाधिलमिति। एवमग्रेऽपि। ननु ययोगादेरपि व्यभिचारोबापकलमेव कथं परित्यक्तमित्यत याह, लाघवादिति।

श्रथ व्याप्तिग्रहोपायः।

तत्त्वचिन्तामणि:।

सेयं व्याप्तिन भ्योदर्शनगम्या दर्शनानां प्रखेक-महेतुत्वात् श्राशुविनाशिनां क्रमिकाणां सेलकाभावात्,

मय व्याप्तिमहोपायः दीधिति।

व्याप्तिस्तरूपं निरूप्य परमतिनराकरणपूर्व्वकं खम-तैन तद्गृहोपायमभिधातुं प्रथमं प्राभाकरमतमुपदर्भ-यति, सेयमित्यादिना। दर्भनानां प्रत्येकं वा हितुत्वं मिलितानां वा, सिलनमि खरूपतो व्यापारतो वा याद्ये दर्भनानामिति, दितीये याञ्चिति क्रमिकाणा-

मात्रपदेन तस्यैव व्याव्यक्तिः, अप्रयोजकीत्यादिमूले तु तादाक्येगन सङ्गमनीयमिति हृदयम्॥ २१॥

इति महामहोपाध्यायक्षणदाससार्व्वभौमसम्बलितायामनुमान-दीधितिप्रसारिखां विशेषव्याप्तिः समाप्ता ।

श्रय व्याप्तिग्रहोपायः प्रसारिणी।

मूलीयप्राथिमकं प्राभाकरमतं सङ्गमयन् तदीयं सेयमिति च व्याचचाण श्राह्न, व्याप्तीति । परमतिनराकरणपूर्व्वकिमित्यभि-धानिक्रियाविशेषणं, तथाच तत्र (१) गतीति भावः ।

सक्पत इति। कार्य्याव्यवहितप्राक्काले सक्ष्पेण सत्त्विमत्यर्थः।

⁽१) इं. तस्र गतीति भावः।

न च तावहर्शनजन्यसंस्कारा द्रन्द्रियसहक्रता व्याप्ति-धीहेतवः प्रत्यभिज्ञायामिन्द्रियस्य तथात्वकल्पनादिति वाच्यं, समानविषये स्मर्णे प्रत्यभिज्ञाने च संस्कारो हेत्रतः कथं संस्कारेण व्याप्तिज्ञानं जन्येत, अन्यथाति-प्रसङ्गः ॥ १ ॥

मिष स्थिराणामस्थिराणामिष सहीत्यद्वानां मिलन-मस्तीत्युभयमुपात्तम्। दृतीयमाशङ्घ निराकुरुते, न चिति। व्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यात्मिकायां व्याप्ती साध्यसामानाधिकरण्यांशस्य प्रथममेव ग्रहीतत्वाद-ग्रहीतव्यापकालांशग्रहे सहचारदर्शनजन्यसंस्काराणां हितुत्वं वाच्यम्। तच न सम्भवति भिन्नविषयकत्वा-दित्याह, समानिति। धमस्त्वग्रहीतभेदं ज्ञानद्वयं, न तु वैशिष्ट्यावगाहीति भावः॥ १॥

व्यापारत इति । तदानीमेव व्यापारमत्त्वमित्यर्थः । दर्भनानामितीति । तथाच मूले प्रत्येकं व्यभिचारादेवाहेतुत्वमिति ।

हतीयं व्यापारतो मिलनम् । सामानाधिकरण्यांग्रमादाय
मूलस्यं समानविषयकेत्यादि सम्भवत्येवत्यतो व्याचष्टे । व्यापकिति ।

ननु समानविषयत्वेन संस्कारजनकत्वावधारणे रजतत्वगीचरण
संस्कारण कथं सम्बन्धावगाह्यनमित्यत श्राह्म, भ्रमस्विति । यद्यपि
रजतत्वगोचरः संस्कारः प्रायग्रस्तसम्बन्धगोचरः सम्भवत्येव, तथापि

किञ्च सम्बन्ध भूयो दर्शनं भूयःसु स्थानेषु दर्शनं, भूयसां वा दर्शनं भूयांसि वा दर्शनानि न तथा, एक कपरसयोर्द्रव्यत्वघटत्वयोश्व व्याप्तिग्रहात् एक नैव धारावाहिक तहीप्रसङ्गात्, भूयस्वस्य निचतु-रादित्वेनाननुगमाच। अपि च पार्धिवत्वलीहलेख्यत्वादी शतशो दर्शनेऽपि व्याप्ताग्रहात्, तर्कसहक्षतं तथिति चेत्तर्हि सहचारदर्शनव्यभिचारादर्शनसहक्षतः स एव व्याप्तिग्राहकोऽस्तु आवश्यकत्वात्, किं भूयो

न तथा न व्याप्तिग्राहकं व्यभिचारदर्भनं व्यापारतया सहकारीति व्यभिचारादर्भनसङ्चार-

यत रजतलमात्रगोचर: संस्कारस्तनाचांशे हेतुत्वात् उद्घोधकसमव-धानं वा तत्रापि भ्रमो भवत्येवेत्यभिप्राय:। न च तथापि श्रिक्त-सिनकर्षस्यैव तत्सम्बन्धभासकत्वमिति वाच्यम्। प्रकारत्वान्यथा-नुपपत्येव प्रकारभानसामग्रा एव सम्बन्धभासकत्वाभ्युपगमात्, संवादिप्रत्यभिज्ञायां च सम्बन्धसिनकर्षे एव सम्बन्धभासक इति इदयम्॥१॥

भगे तथेत्यस्थान्यथापि सत्त्वात् नकारसमविश्वतमेव पाठं ग्टब्सन् व्याचष्टे, न तथेति। सञ्चारदर्शनव्यभिचारादर्शनसञ्च-कता इति भूलं तत्र व्यभिचारादर्शनस्थात्र हेतुत्वे तर्कोऽन्यथा सिद्ध इत्यत भास, व्यापारतयेति। तथाच व्यापारिणो नान्यथा दर्शनन न च तेन विना तर्क एव नावतरित, प्रथम-दर्शनव्यत्पद्मस्य तर्कसस्भवात्, नचैवमेवास्त तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थानात्, जातमावस्य प्रवृत्ति-निवृत्तिहित्वनुमितिजनकव्याप्तिज्ञानं तर्के विनैवाती नानवस्थिति चेत्तर्हि व्यभिचारात्, सीऽपि न व्याप्ति-

दर्शनसहक्षतस्तर्क एव व्याप्तिग्राहकः भृयो दर्शनन्तु क्वाचित्तर्कप्रवृत्तावुपयुज्यत द्वति निर्गलितम्। नैया- यिकमतमाश्रद्धा निराचष्टे, न चैवमिति। जात- मावस्येति। तथाच तन्मृलको व्याप्त्रान्तरग्राहकतर्का- वतार द्वति भावः। तहींति। न च व्याप्तिप्रत्यचं प्रति तकीं हेतुसत्तु स्मरणमिति न व्यभिचारावकाशः, विनानुभवं स्मरणस्थायोगात्। न च जन्मान्त- रौणः सः जन्मान्तरेऽपि पर्यनुयोगतादवस्थ्यात्, श्रना-

सिंडिरिति भाव:। (१) प्रथमदर्भनेऽपोत्यादिफिक्किकार्धस्याव्यवित-प्रक्रान्तस्यानुकर्षणभ्यममवतारिकाव्याजेन निराकरोति, व्यभि-चारादर्भनेत्यादि। विक्रिधूमव्याप्तिग्रहे किमायातं तत्नाह, तक्तूलेति। व्यास्यन्तरित। यद्यपि स्तनपानेष्टसाधनताघटितव्याप्तेर्धृमादिव्याप्ति-ग्राहकत्वे मानाभावस्त्रयापि रहीतायां तस्यां प्रतिवस्थिविधया

⁽१) इं, प्रथमदर्भने इत्यादि तन्त्रूवेति पाठः नास्तीति ।

यहे हेतुः, न चैतद्वुद्वाववान्तरजातिरस्ति सामान्यप्रत्या-सत्या सर्व्वीपसंहारादिवनाभावग्रहः, सामान्यरूपता च सक्तद्दर्शनगम्येति भूयो दर्शनापिचेति चेन्न, सामान्यस्य हि प्रत्यासत्तित्वं लाघवात्। न तुसामान्यतया ज्ञातस्य तदनम्युपगमाच ॥ २॥

न च काकतालीयलादिशङ्काव्युदासाधं दितीयादिदर्शनापेचिति वाच्यम्। दितीयादिदर्शनेऽपि
सङ्कातादवस्थ्यात्। नलनीपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुः, तद्देशकालतवावस्थितघटादीनामुपाधिदित्वेन च परिहारः परतो विचारियष्यते। न चेति।
मानाभावात् तर्कस्य च हेतुत्वासिष्ठेः, यदि चाग्रहीतस्याग्रहीतपुरोवर्त्तिसंसर्गस्य वा प्रत्यासत्तित्वेऽतिप्रसङ्गस्तदा पुरोवर्त्तिनि तद्गृहो स्ग्यतां न तु सामान्यत्वेनेत्याह, न त्विति॥ २॥

कारणं विना कार्योत्पत्तिग्रङ्गाविघटनिमिति हृदयम्। परत इति। ग्रनादिसिडकार्य्यकारणामावादिमूला इत्यतानादिलेनान-वस्थापरीहारः।(१) ननु सिडे तर्कस्य हेतुले खर्गादाविव फल-वैजात्यं कल्पातां तत्राह, मानाभावादिति। ननु तत्र तर्कस्य हेतुतैव मानं तत्राह, तर्कस्य चेति। दोषकालीनग्रक्तिसिवकर्षे

⁽१) इं, नन्त्रिखाहि तर्केख आप्तपाठी नास्ति ।

त्वशङ्गानिरासः कस्यचित् साधनव्यापकत्वज्ञानेन कस्यचित् साध्याव्यापकत्वज्ञानेन स्यात्, तच भूयो-दर्शनं विना नावतरतीति चेन्न, अयोग्योपाधिव्यति-रेकस्यानुमानाधीतज्ञानत्वेनानवस्यापातात्।

यथ साध्यसाधनसहचितिधर्मान्तराणामुपाधित्व-संगये न व्याप्तिग्रहः, यतस्तेषामनुपाधित्वज्ञानं भूयो दर्भनाधीनसाध्याव्यापकत्वज्ञाने सतीत्येतदर्धे भूयो दर्भनापेचा यतएव यावता दर्भनेन तिद्वश्चयस्तावहूयो दर्भनं हेतुरिति न वारसंख्यानियमो न वाऽननुगमः, यद्यपि चान्यस्य साध्यव्यापकत्वसाधनाव्यापकत्वसंगयो नान्यव्याप्तिग्रहप्रतिवस्थकस्त्रथापि तदाहितव्य भिचार-संग्रयः प्रतिवस्थक द्रति तिहिधूननमावश्चकमिति चेद्र, ययोग्योपाधिसंग्रयाधीनव्यभिचारसंग्रयस्य तथाप्यनु-च्छेदात्, स च न भूयोदर्भनाद्वाप्यनुमानादित्युक्तम्।

साध्यव्यापकालं साध्यसमानाधिकरणाभावप्रति-योगित्वं तद्ग्रहश्च साध्याधिकरणेकव्यक्तिवित्या गृह्यमाणस्य तादृशव्यक्तान्तरग्रहं विना न सम्भवति,

सित श्रुतित्वं प्रमेयमिति सारणस्यापि न सामान्यजनान्नानिम्बद्धतः श्राह, श्रग्रहीतपुरोवन्तीति॥२॥

अपि च भूयोदर्शनाहितसंस्कारो न विहिरिन्द्रियसह-कारी तद्यापारं विनापि च सहचारादिज्ञानवतो व्याप्तिग्रहात्, नापि मनस इन्द्रियादिवङ्गयोदर्शनजन्य-संस्कारस्य तज्जन्यसारणस्य वा प्रमाणान्तरत्वापत्तेः, तस्मात् परिशेषेण सक्षद्दर्शनगस्या सा, तथा द्युपाध्य-भावो व्याप्तिः, अभावश्च केवलाधिकरणं तत्काल-सम्बन्धो वा स्वप्रकाशरूपं तज्ज्ञानं वा, तच्च प्रयमदर्श-नेनावगतमेव चचुरादिना न चाधिकस्तदभावोऽस्ति,न च प्रतियोगिज्ञानमधिकरणादिज्ञानजनकं ये नोपाधि-

दृति भ्योदर्भनापेचा तदाहितः, संस्कारो वहिरि-न्द्रियमावस्य सहकारी मनसोऽपि वा आदो, तद्यापारं विनेति। दितीये नापीति परिभेषात्माध्य-साधनसम्बन्धग्राहकातिरिक्तानपेचग्रहकत्वात् उपाध्य-भावग्राहकस्यापेचणीयत्वादसिंडिं निरस्यति, तथा-

न सभावतीति श्रसित्रधिकरणे तस्य विद्यमानलादेव साध्याधिकरणान्तरग्रहाभावे तदृत्यभावप्रतियोगित्वं दुर्ग्रहमिति । तद्यापारं विनेति । मूलं सङ्गमिष्यता विहिरिन्द्रियेत्यत्र मात्र पदं प्रचित्रमिति ध्येयम् । साध्यसाधनेत्यादि । इयं व्याप्तिः प्राय-मिकसाध्यसाधनसम्बन्धग्रहविषयः, साध्यसाधनसम्बन्धग्राहकाति-

न्नानं विना तद्ग स्यात्, एवमुपाध्यभावे न्नाते किञ्चित्र न्नातुमविश्विते, उपाध्यभावव्यवहारस्तु तिह्यमपेन्नते दीर्घत्वादिव्यवहार द्ववाविधन्नानम्। न नेवं रासभ-सम्बन्धतुल्यविक्षधूमसम्बन्धन्नानादेवानुमितिः स्यादिति वाच्यम्, उपाधिसारणे सत्युपाधितद्याप्येतरसकल-तदुपलस्थकसमवधाने चोपाध्यनुपलस्थसहितस्य केव-लाधिकरणन्नानस्यानुमितिहेतुत्वात्, तद् व्यवहारहेतु-

हौति। उपाधिस्मरण द्रत्यादि। नन्वेवमसिद्धक्षष्टादि-हेतुकानुमितिर्न स्थात्, उपाधियोग्यानुपलक्षविरहा-दत आह, तद्यवहारित। तथाच तद्यवहारस्य हेतु-रेवानुमिति हेतुः तज्ञोपाध्यभावत्वेन ज्ञानम्, उपाधि-

रिक्तानपेचग्रहिवषयलात् तनान्तरीयकपदार्थविदिति परिभेषो बोध्यः। यथायते तु सक्तद्रभेनग्राद्यमतेऽपि भूयोदभैनग्राद्यल-सम्भवात्तदभावरूपपरिभेषविभेषणं न घटत इति। उपाध्यभाव-ग्राह्मकस्य ताद्यमस्बन्धग्राह्मकातिरिक्तस्येत्यादि। ग्रसिडिः हेतु-विभेषणासिडिः। इत्यादौति। तथाच तद्ग्राहिका सामग्री अनुमितावेव हेतुने तु व्याप्तिग्रे इति न हेतुविभेषणासिडिः, एवं योग्यानुपलस्थेरनुमितिप्रयोजकाले असिवक्रष्टादौत्यादिपदे-नातीन्द्रियादिपरिग्रहः। ननु तद्दावहार इत्युक्ताविप तद्दोषस्तद-वस्य इत्यत श्राह्म, तथाचेति। तचेति। व्यवहारकारणमित्यर्थः, लाच। नन्वेवं प्रथमदर्भनेन व्याप्तिनिश्वचाहिशेषदर्भने-सित रासभादिसंशयवत् तत्संशयो न स्थादिति चेत् व्याप्तिचानानन्तरं किं विद्यमान एवोपाधिकीयोपाधि-त्वेन न चात दति शङ्कया ग्रहीतव्याप्ताविप संशयः, श्रतस्तव भूयोदर्भनेनोपाधिनिरासद्वारा व्याप्त्रभाव-शङ्कापनीयते॥ ३॥

स्मरण द्रत्यादि तु तत्कारणप्रदर्शनपरस्, चभावतच्चेद-मिह नास्तीति प्रतीति साचिकः खरूपसम्बन्धविशेषो-ऽतिरिक्तः पदार्थो वित्यन्यदेतत्। एवञ्चोपाध्यभावत्वेन ज्ञानेऽधिकापेचां न वारयाम द्रति भावः। व्याप्ति-खरूपे संश्याभाव श्रापदाते निरूपाधिसम्बन्धरूपव्याप्ति-त्वेन वा, श्राद्ये द्रष्टापितः। दितीयमपि किमुपाधि-स्मरणादिकं विना तत्समवधाने सति वा सम्बन्धग्रहे

तिदिखस्य क्वाचित् केत्यादिः । ननु स्रभावत्वस्याधिकरणानितिरिक्त-त्वात् तदपि स्वरूपज्ञानान्नातिरिचत दत्यत स्राह्न, स्रभावत्वचेति । स्रन्यदिति । प्रकारताया वैलक्षस्ये तु विवादाभाव दति भावः ।

नतु उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञाने भूयो दर्शनमपेचितिमिति तवापि समातं, तथाचातुमितिजनकज्ञाने भूयोदर्शनमपेचितिमिति पर्थावसितं विवादेनित्यत ग्राह, एवच्चेति। न वारयाम इति। यहा ज्ञानप्रामाख्य संशयाद्याप्तिसंशयः, यया घटज्ञानसामग्रां सत्यां घटज्ञाने सित तत्यामाख्य-संशयाहितस्तत्वंशयो न त्विग्रमसंश्यानुरोधेन तच घटज्ञानमेव न हत्तिमिति कल्पाते, तथेहाप्युपाध्यभा-वस्य व्याप्तित्वात् तस्य च केवलाधिकरणक्षपस्य प्रयम-दर्शनेऽपि निश्चितत्वात्, व्याप्तिग्राहकान्तरस्याभावाञ्च, परिश्रेषेण सक्षदर्शनस्य व्याप्तिग्राहकत्वात्, तिद्वश्यये प्रामाख्यसंशयादेवतत्संशयः। न चैवं रासभेऽपि प्रथमं व्याप्तिपरिच्छेदः स्यादिति वाच्यम्। तत्र व्याप्तिरभावात्

श्राद्ये किं विद्यमान द्गति। तथाच तद्यहमातं न तु तदभावत्वेनापि यह द्गति समानप्रकारकिनश्चयाभावा-त्तत्वंशयो नानुपपन्न द्गति भावः॥ ३॥

दितीये, ज्ञानप्रामाखेति। प्रथमेति। सत्यु-

तथाच व्याप्तिस्वरूपन्नाने न सस्वस्थया हकाति रिकापेचेति। ननु नैयायिक सतेऽपि व्याप्तेः सामानाधिक रख्यात्मकतया स्वरूपग्र हे नातिरिकापेचेति, तथैव विवादासाव इति चेन्मैवं, तन्मते व्याप्ति-स्वरूपस्य व्यक्तिचारासावघटिततयाऽस्य चातिरिक्ततया तग्रत्यचेऽति-रिकापेच खात् इति सावः ॥ ३ ॥

तदग्रहमातमुपाध्यग्रहमातम्। ननु प्रथमदर्भने निश्चयेऽपि

प्रविच्चाने विषयस्य हेतुत्वात् क्वचिदसंसर्गाग्रहात् तथा व्यवहारो दोषमाहाक्यात्, न चाचापि तथा श्रारोपे सित निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्था-रोप द्रव्यस्युपगमात्। केचित्तु साधनविद्वष्ठान्योन्या-भावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं साधनविद्वष्ठा-न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्कत्वं वा व्याप्तिस्तदुभय-मपि योग्यं प्रव्यचेण विद्वधूमसम्बन्धानुभवेन प्रथमम-वगतमेव। महानसे योऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावो-

पाधिस्मरणादावित्यादिः । न चावापीति । सर्व्वव रासभादावित्यर्थः । अवगत द्रति । खरूपक्रथनमाचं, महानस द्रति । अस्मिन्नित्यादिः । महति वायौ योग्या-

उपाध्यभावलेन न निश्चयः तत्रोपाधिस्मरणादीनामपेचितलादित्यतः प्रयति सत्युपाधीति। स्रवापीति इति इदं शब्देन व्याप्तिभ्रमाविषयरासभी यद्यपि रहतीतस्तथापि न्यूनताभङ्गाय सर्वेशब्देन व्याचष्टे, सर्व्वविति। यत्र तु भ्रमस्तत्र सुतराम् अन्यवापि
भ्रमे सर्व्वभमे च ससुचितिमिति भावः। महानस इत्यनन्तरम् स्रवगत इति, यद्यपि मूलं तथापि स्रवगतलस्य ज्ञानेऽप्रयोजकलेनाविवचणे महानससामान्यमादायाभावो रहित्सम्भव्य इति महानसपदमवस्यं सङ्कोचनीयमिति व्युल्ममेण व्यास्था-

वावगतस्तस्य प्रतियोगी न विक्किन वा विक्किमानित्यनु-भवात् रासभे तथावगमेऽप्यग्रे स बाध्यत द्रति, तक्क एवं हि तदक्कितबूमयोरेवव्याप्तिः स्यात् न तु धूमत्व-विक्कित्वावक्केदेन न च तदनुमानोपयोगिविक्कित्वं विक्कि-मत्त्वं वा न प्रतियोगितावक्केदकमिति प्रथमतो चातु-

योग्योज्ञूतरूपसामान्यतद्वतोरिव योग्ये वक्की तादृणप्र-तियोगित्वसामान्यतद्वतोरप्यत्यन्ताभावान्योन्याभावयो-र्योग्यत्वादिति भावः, न प्रतियोगितावच्छेदकमिति न धूमसामान्यसमानाधिकरणतादृशाभावप्रतियोगिता-सामान्यावच्छेदकमित्यर्थः। अय साधनाव्यापकव्या-प्यत्वाभावः साध्येऽधिकरणस्वरूप एव एवं साधननिष्ठ-साध्यसम्बन्धे साधनतावच्छेदकातिरिक्तावच्छेद्यत्वाभा-वोऽपीत्यनुशयानो येन रूपेण ज्ञाता, व्याप्तिरनुमि-त्यङ्गं तद्रूपविशिष्टा न सक्तद्दर्शनगम्या, सामानाधि-

तम्। इत्यादिरिति। तथाचैतनाहानसव्यान्याभावाप्रतियोगितं महानसान्तरासिकार्षेऽपि सुग्रहमित्यतो योग्यत्नमेवोपपाद-यति, महतीति। न प्रतियोगितावच्छेदकमितीति। सामान्या-भावस्सुटोकरणाय नकारसम्बन्तितपाठो एतः व्याप्तेहेंतुनिष्ठत्वं कुर्व्वाणो मौमांसकमिप्रेत्व अनीपाधिकात्वं निर्वित्त, एवमिति।

मशकामेविति मैवं प्रक्ततसाध्यव्यापनसाधनाव्यापनो वा साधनत्वाभिमतेन समं प्रक्ततसाध्यसम्बन्धि-तावक्छेदनं विशेषणं वोपाधिः उभययापि तदभावो न व्याप्तिः सिडासिडिभ्यां तिन्नषिधानुपपत्तेः निन्तु यावत्सव्यभिचारिसाध्यमामानाधिनरण्यमनौपाधिनत्वं तस्य च प्रथमं चातुमशक्यत्वात्। निञ्च न वस्तुगत्या व्याप्तेर्ज्ञानं हितुः निन्तु व्याप्तित्वेन तच्च उपाध्यभावत्वं न च उपाधरज्ञाने तदभावत्वेन ज्ञानं सम्भवति विशे-षण्ज्ञानसाध्यत्वादिशिष्टज्ञानस्य न च नियमतः प्रथम-

करण्यमावस्य च तथा भावं न वारयाम द्रत्याशयेनाह, किञ्चेति। विशेषणज्ञानसाध्यत्वात् तत्सामग्रीसाध्य-त्वादा, न चेति उपलचणमेतत् उपाधरयोग्यस्यापि सम्मवात्, उपाधिसामान्यतद्वतो मूर्जत्वादिसामान्य-तद्दतोरिवात्यन्ताभावान्योन्याभावयोरयोग्यतया प्रत्य-चेण ग्रहीतुमशक्यत्वात्। न च योग्योपाधिव्यति-रेकग्रह एवानुमानाङ्गम् अयोग्योपाधिग्रहेऽप्यनुमिति

न वारयाम इति । पूर्व्वं न वारयाम इत्यत्न व्याख्याततत्त्वमेतत् मौमांसकमते विशेषणज्ञानस्याजनकत्वादान्त, तत्सामग्रीति । ननू-पाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानस्यैवानुमितिन्तेतुत्वकथनात् मूलासङ्गति-

मुपाधिधीरस्ति। यच्चीतं प्रतियोगिज्ञानं व्यवहारहेतुः नाभावज्ञान द्रत्यस्तु तावदेवं तथापि तदभावो मा व्यव-हारि उपाध्यभावज्ञानाधीनानुमितिः स्यादेव उपाधि-ज्ञानं विनापि न चैवम्। वस्तुतस्तु विशेषादर्शने सह-चारादिसाधारणधर्मादर्शनाद्यभिचारसंश्यात् प्रथम-दर्शनन न व्याप्तिनिश्चयः॥ ४॥

प्रसङ्गात्। यथाश्रुतं दूषयति यच्चोत्तामित्यादिना व्यभिचारेत्यादि। अत्र प्रत्यचे ग्राद्य संशयस्थापि प्रति-वस्यकत्वमादृत्य व्यभिचारशङ्गायास्त्रधात्वाभिधानम्। अन्यथा पुनरसाधारणतत्तत्कारणमेलकरूपा सामग्री प्रतिवस्थिका वोध्या, विविचितच्चेदं प्रत्यचमणिदौधितौ, वच्यते चाधिकमुपरिष्ठात्॥ ४॥

रित्यत याह, यथायुतिमिति। ननु ग्राह्यसंग्रयस्याप्रतिबस्थकत्वात् व्यभिचारज्ञानाभावित्यादिमूलं कथं सङ्गतिमत्यत श्राह्न, श्रवेति। श्रन्यथा ग्राह्यसंग्रयस्थाप्रतिबस्थकत्वे श्रसाधारणेति, कालादि-व्युदासाय श्रसाधारणकरणमपि प्रत्येकमितप्रसक्तमित्यतो मिलन-पर्यन्तं, ननु निश्चयत्वस्य कार्य्यतानवच्छेदकत्वाह्वयमपि न सम्य-गिति मन्सि कस्थाह, विवेचितमिति॥ ४॥ श्रय व्यभिचारसंशयो नाव्यभिचारनिश्चयप्रतिवस्वकः ग्राच्यसंशयस्य निश्चयाप्रतिवस्वकत्वात् श्रन्यया संशयो-त्तरं क्वापि निश्चयो न स्यादिति चेन्न व्यभिचारसंशयः प्रतिवस्थक दृति ब्रूमः किन्तु विशेषादर्शने सति सह-

यव च यद्यपि साधनगोचरसाध्याभाववहृत्तिल-ग्रहाभावोहेतुरिति न युक्तं केवलान्वयिनि ग्राह्या-प्रसिद्धाा ग्रहाप्रसिद्धेः, खग्डिमः प्रसिद्धाा क्रिचित्ता-हम्भमसम्भविऽपि सर्व्वेव तथा भ्रमे मानाभावात्। यतएव साध्यतावच्छेदकागोचरसाधनविद्धाभावप्रति-योगितावच्छेदकात्वग्रहोऽपि प्रस्युक्तः सकलसाध्यताव-च्छेदके तादृशग्रहे मानाभावात्, तथापि साध्यताव-च्छेदके तत्पुक्षीयतादृशावच्छेदकात्वग्रहस्य विषयतया-भावः, तद्विषयत्वाभावो वा तत्पुक्षीयत्याप्तिग्रहे हेतुः

याद्येति। साध्याभावघटितस्याप्रसिष्ठिरित्यर्थः। खण्डम इति श्रभावादौ साध्यीयलादिनेत्यर्थः। श्रतएव सर्व्वच तथा प्रसिष्ठैव। ननु सर्व्वतेव तथा भ्रमी भविष्यतीत्यत श्राह, सक्तेति। साध्यतावच्छे-दक्त इत्यभावेनान्वितं विषयताया श्रभावप्रतियोगितावच्छेदक्तसम्ब-स्वेत मानाभावादाह, तिह्वयत्वाभावो विति। त्याप्तिग्रहकाल एव पुरुषान्तरस्य ताद्वप्रविषयत्वसन्त्वादाह, तत्पुरुषीयेति। विषयताया

चारादिसाधारणधर्मादर्शनात् संगयः स्थात् न तु संगयसामग्रीतो निश्चय द्रति । किञ्च यद्वीसामग्री-यव प्रतिबन्धिका, विशेषादर्शने तव तद्वीरपीति व्यभि-चारसंगयोऽपि प्रतिबन्धकः एवं भूयोदर्शनमपि संगा-यकं तर्कस्त्वनवस्थाग्रस्त एवेति कथं व्याप्तिग्रहः ।

वस्तुतो व्याप्तेः साध्यसाधनभेदभिद्मतया विशिष्येव कार्य्यकारणभावः, तथाच यच साधनं साध्याभाववद्दृत्ति-साध्यतावच्छेदकं साधनविद्मष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेद-कमेकविधमनेकविधं वा व्यभिचारज्ञानं प्रसिष्ठं तच यथाययं तदभावः पुरुषनिष्ठोव्याप्तिग्रहहेतुः अतएवैक-विधव्यभिचारज्ञानविरहेऽन्यविधव्यभिचारग्रहाद्याप्ति— धीविरोधः। एवच्च क्षचिद्यभिचाराज्ञानस्याहेतुत्वेऽपि

ज्ञानानितरिनेण कालिककादानिकलमिभिप्रेत्येतदुक्तम्। (१) ननु चैत्रीयज्ञानिवषयलाभावसस्त्रे मैत्रीयो व्याप्तिग्रस्ः स्यादित्यत ग्रास्, तत्पुरुषीयव्याप्तीति। ननु प्रसिद्धाया द्रत्यादिवस्त्रमाण्युक्ते-स्तिद्विषयत्वं तवाप्यावस्थकमिति कथं सार्व्विकल्विमत्यनुग्रयान-स्तत्पुरुषीयत्वप्रवेग्रेन कार्य्यकारणाभावबाहुन्ये गौरवादाह वस्तुत द्रति। पुरुष निष्ठ द्रति। तथाच सामानाधिकरण्यप्रत्यासस्थेव

⁽१) इं, निक्यादि व्याप्तीत्यत्यन्तः पाठी नाक्ति ।

श्रवोच्यते व्यभिचारज्ञानविरहसहक्रतं सहचार-दर्भनं व्याप्तिग्राहकं ज्ञानं निश्चयः शङ्का च सा च

न चिति:। प्रसिद्धायाः साधनविद्यष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादिबुद्धेः, सामानविषयतया तदभाववोधविरोधित्वानुरोधेन तु तथात्वकत्यनं न वयं वारयामः
यदि तत्तत्यकारादिनिवेशेन विशेषे न पर्ध्यवस्थेदिति
दिक्। व्याप्तिश्च धूमादिव्यापकविद्यसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वादिकं तादृशसामानाधिकरण्यमावस्य रासभादिसाधारण्यात्, श्रव च व्यापकत्वांश्यके व्यभि-

तस्य हेतुलम् इति भावः, श्रतएव क्टस्य कारणलादेव, एवं प्रक्षतसाध्यतावच्छेदकप्रकारकव्यभिचारज्ञानाभावस्वहेतुले। ननु धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकल्यञ्चसु कुव-चित्रसिष्ठः श्रनवच्छेदकल्यग्रहे प्रतियोगिविधयापि तस्यावश्यक-खादिति तत् किमधें साध्यतावच्छेदकप्रवेशनं तस्य ताद्यश्चाना-भावानुयोगितयैवोपपत्तेरित्यत श्राह्, प्रसिद्धाया इत्यादि, तदभाव-स्ताद्यावच्छेदकल्वाभावः, तथा कल्पनं ताद्यश्चानाभावहेतुल्वक-ल्पनं, न श्रन्यत्वद्यत्तस्य ज्ञानस्य (१) विषयतासस्यन्येन प्रक्रतसाध्य-तावच्छेदके तदभावो वर्त्तत एविति,तस्य समानविषयत्वेनैव कारण-ल्विमिति पूर्व्वपचिषोद्धदयं, यदीति यत्र(२) दाइजनकतावच्छेदक-

⁽१) इं, खन्यस्य दत्तत्तानस्य। (२) इं, दाइजनकतावच्छेदेन जातिः।

क्रचिदुपाधिसन्देहात् क्रचिद्दिशेषादर्शनसहितसाधा-रणधर्मादर्शनात् तदिरहश्च क्रचिद्रिपचवाधकतर्कात्

चाराग्रहः समानाधिकरणहत्तित्वांशग्रहे च तिहशिषणतया सामानाधिकरण्यस्य ग्रहोहेतुरिति वक्तव्यम्।
साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वलचणव्यातिग्रहे विशेपणतया सम्बन्धस्य ग्रहो हेतुरित्यपि कीचित्। यत्तु
विकित्ते सहचारभमेण व्यापकत्वभमात्मामान्यत एव
सहचारन्नानं हेतुरिति तद्ग श्रसिहत्वात् विक्डेऽपि

जातिस्तथाभावप्रतियोगितावच्छेदिकेति(३) ग्रहो जातस्तत्र विद्रित्वे तत्सालात्, बोध्यः ग्रथ विद्राल्वेलेन तत्नाभावो वाच्य इति चेत् विग्रेष-व्याप्तिलच्णे प्रगल्यमतिनराकरणेनैव तस्य निराक्ततत्वात्, महान्मीयत्वविग्रिष्टं विद्वालमवच्छेदकम् इति ग्रहेऽिष तत्सत्त्वोपगमाच ग्रथ ग्रुडविद्वतेन रूपेणावच्छेदकत्वग्रहस्याभावोवक्रव्य इति चेत् तिहि तस्य प्रतियोगिकोटावेव विनिवेग्रनेऽसार्व्वेतिकत्वसिष्टणु-तायां तत्पुरुषीयत्वघटितत्वादनन्तकार्थकारणभावगौरविमिति भावः एवं ग्राह्याभावग्रहस्य प्रतिबन्धकतायां तत्र तदिधकरणतावच्छेदक-विनिवेग्राद्यत्र ताद्यग्रहो न प्रनिहस्तत्र न तथा हेतुत्विमिति भावः। केचिदित्यस्वरमोद्वावनं तदीजन्तु साध्यसस्वित्यावच्छे-दक्तत्ववैति सङ्कोचे प्रमाणाभावः, सामान्यत इति, यदिषययोः

⁽१) इ. यहेऽपि विज्ञते तसङ्गतेः।

क्षचित् खतः सिं एव तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेना-नवस्थिति चेत् न यावदाशङ्कं तर्कानुसरणात्, यत्र च

व्यापकत्वसामानाधिकरण्ययोग्राहकसामग्रीकमुग्रीगप-द्याधीनं ग्रहणक्रमर्योगपद्यं नतु मिथः कार्व्यकारण-भाव दृति।

दूरं पुनरबधेयं यथा विद्यमानमिष विद्वत्वे व्यव-हितविप्रक्षष्टरासभादिदेशनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेद-कत्वं न ग्रच्यते अभावदेशविप्रकर्षादिना ग्राहकाभा-वात् तथा धूमविद्वष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य सच्चेऽप्यग्रहसस्भवात्। नानुपलब्धेः प्रतियोगिसच्च-

कार्यकारणभाव इत्यादि व्यास्युपष्टभाच इत्यपि द्रष्टव्यम्, श्रासद-लादिति सहचारभ्रमस्य व्यापकलभ्रमाहेतुलादित्यर्थः, क्वाचिलं सहचारभ्रमस्य व्याप्तिभ्रमपूर्ववर्त्तिलमन्यथासिद्वयति विकडेऽ-पौति। तथाच यत्रैकदैव उभयोर्भ्यमस्त्रचेव व्यभिचाराहोषविध्यापि न तस्य कारणलमिति भावः।

व्यवधानं मध्यस्थित इत्यादिसस्वन्धः, विप्रकर्षो तदूरवर्त्तालं, कयं चिदिति विरोधस्य तादृशयोग्यानुपलच्या प्रविष्टत्वादिति भावः, भटित्यवभाससु प्रकारान्तरेणापौति दृदयम्, श्वतएवेति यत एव तस्य सौकिकप्रत्यचाविषयत्वमिति निर्णयानीत्युपा-ध्यायाः साधारणे चेति मित्राः ग्राह्याभावज्ञानमातस्य प्रतिबन्ध- व्याघातेन शङ्केव नावतरित तच तक्षं विनेव व्याप्ति-यहः॥ ५॥

द्रति तत्त्वचिन्तामणी व्याप्तिग्रहोपायः समाप्तः।

विरोधित्वादिलचणा योग्यतेति न तत्सामान्याभावो लीकिकप्रत्यचगम्यः । परन्तु कयि चिहिरोधस्फोर-णादिवशा बूमत्वादी ग्रहीतो धूमविद्वष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावो तिक्कत्वादावुपनयमर्था-दया ग्रह्मते अत्र प्रवानुमानादिना व्यभिचारग्रहेऽपि न व्याप्तिधीः, निर्मयात्मनि साधारणे वा दोषविश्रेषा-जन्योपनीतभाने संश्यादिसाधारणस्य निश्चयात्मनो

कलमते धारावाहिक मंग्रयानुरोधेन, कार्य्यतावच्छेदकेति निर्ण-यानुधावनं, दोषविग्रेषेति तेन पौतलाभावानुमिताविप पौत इत्युपनौतभानं भवत्येवेति, साधारणस्येत्याद्यमते निश्चयाक्षम इति दितीये, श्रवापि प्रतिबन्धके निश्चयत्वस्य प्रवेशाद्वारावाहि-कसंग्रयोत्पत्तिर्वीध्या, मात्रपदं कत्सार्थकं तेन लौकिकालौकिक-साधारण्यलाभः, स्वमते केवलान्वियखण्डने व्यवस्थाप्यमानव्याप्ति-मभिप्रत्याह, तत्त्तदूमादाविति। रह्यमाण इति ननु कथमत्र योग्यानुपलिक्षः देशान्तरहत्तित्वस्य द्रव्यत्वादौ सत्त्वेऽिप देशा-न्तरा सिक्ववेनेवानुपलभसभव इति चेन फलवलेन तथा कस्य- वा विपरीतन्नानमानस्यैव प्रतिबस्वन्नत्वात्, तत्त बूमादी देशान्तरवित्तत्वसम्भावनाविरहादिवशात् ग्रह्ममाणो वङ्गाद्यभाववहृत्तित्वाभावो धूमत्वाद्यवच्छेदेन ग्रह्मते लाघवादित्वपि वदन्ति ॥ ५ ॥

द्रत्यनुमानदीधिती व्याप्तिग्रहीपायः समाप्तः।

नात् यदा ग्रह्ममाणपदेन ग्रहणसुपनीतभानात्मकमेव विव-चितं, समावनाविरहस्तु प्रतिबन्धकाभावस्कोरणाय ॥ ५ ॥

दित महामहोपाध्यायक्षणदाससार्व्वभौमप्रणीतायामनुमान-दीधितिप्रसारिखां व्याप्तियहोपायः समाप्तः ।

अय तर्कः।

तत्त्वचिन्तामणि:।

तयाहि धूमो यदि वज्ञासमवहिताजन्यत्वे सित सिक्समविहिताजन्यः स्याद्गोत्यद्गः स्यादित्यव किं धूमो-ऽवक्नेरेव भविष्यति, कचिद्विक्तं विनापि भविष्यति । अहेतुक एव वोत्पत्स्यत द्रति शङ्का स्यात् सर्व्यव-स्वक्रियाव्याघातः स्यात् ॥ ६ ॥

ग्रय तर्वदीधिति:।

हताशनरासभादिपदार्थसार्थस्यान्वयव्यतिरेक्तयोर-न्वयव्यतिरेको धूमस्योपलभमानोऽवश्यमेतेषामन्यतमं कारणं धूमस्येत्यवधार्व्यं सन्दिग्धे किमेतानि सर्व्वा-ग्येव कारणानि, किम्बा कानिचित्तवा, कानिचिच्च नैति, चव च यस्य व्यतिरेक्षेऽपि दूतरेभ्यस्त्याविधेभ्यो-

अय तर्वदीधिति-प्रसारिणी।

व्यभिचारज्ञानाभावाय कारणताग्राष्ट्रकं तकें प्रदर्भयती मूल-स्यासङ्गतिं परिचरत्रवतारिणकामारभते, इताग्रनित्यादिना सन्दे-इस्यैव विवरणं, किमेतानीति। आपादकविशेषणविशेष्योभयं सार्थकीकर्त्तुम् एतावान् प्रयास इति ध्येयम्। तत्न चेति तथाच तादृशयङ्कायामीदृशयकीवतारो घटत एवेति भावः। तत्न चाका- यदि हि ग्रहीतान्वयव्यतिरेकं हेतुं विना कार्य्यौ-त्पत्तिं शङ्केत, तदा ख्यमेव धूमार्थं वक्नेः, त्रप्तार्थं भोज-नस्य, परप्रतिपत्त्यर्थं शब्दस्य, चोपादानं नियमतः कथं कुर्य्यात्, तेन विनापि तत्समावात् ॥ ६ ॥

धूमोत्पत्तिमुपलभते तस्याइतुत्वमेवावधारयति तथा रासभादेर्यस्य व्यतिरेके ताहणापरसकलान्वयेऽपि धूमानुत्पत्तिं प्रश्चिति, तस्याकारणत्वमेव निश्चिनुते, तथा वज्ञेः तव चाकारणत्वसन्देहो विरोधितामासाद-यिव्वक्ति येन तर्केण तमाह धूम द्रत्यादि । अनुसन्धे-यश्चावश्यं कार्य्यकारणभावग्रहः, तदधीनत्वाद्याप्तिबुद्धेः सामानाधिकरण्येनान्वयव्यतिरेकग्रहात् जायमानस्य तथैव हेत्हेतुमङ्गावं ग्रह्णतस्तस्थैव वा व्याप्तिपरिच्छेद-

रणलसन्देहो विरोधितामिति उपाध्यायमतमभिप्रेत्य, इतरया तत्र सामग्री वोध्या, ननु मूलासङ्गतिस्तदवस्प्रैवेत्यत श्राह, श्रनुसन्धेयस्रेति। श्रपेचणीय इत्यर्थः। तथाच धूमो यदि विङ्ग-व्यभिचारी स्थात् विङ्गिन्यो न स्थात् इति व्याप्तिग्राहके इष्टा-पत्तिग्रङ्गायामुपयुच्यत इति भावः, (१) कारणताग्रहस्यैव व्याप्तिग्रहत्वं व्यवस्थापयति, सामानाधिकरस्थेनेति, तथैव सामा-नाधिकरस्थेनेव ग्रह्मतो विषयी कुर्व्वतः, तस्यैव ज्ञानस्यैव,

⁽१) इं, अपेच्यणीय इत्यादि इति भाव इत्यन्तपाठी नास्ति।

कालात्, विपर्ध्यये तत्कोटिमावपर्ध्यवसियनश्च तर्कस्य तदभावकोटिकशङ्कानिवर्त्तकालम् श्रन्यया धूमो यदि विक्रतक्कृन्यजन्यान्यतरो न स्यात् तदा जन्यो न स्यादित्यादेरिप तथालापत्तेः, तथा पर्ध्यवसायिता च क्वचिद्विश्रेषतो व्याप्ता सामान्यतोऽिप क्वचित्यचधमी तावलात् तत्सम्पत्तये चाव वक्कासमविह्ताजन्यलेन पत्तो विशेष्यः, विशेषणवलेनोपस्थितविशिष्टाभाववृद्धे-विशेष्याभावमाचावलिखलात्, तथोपस्थितिविरोधि

व्याप्तिपरिच्छेदकलात्, व्याप्तिविषयलात्, वक्ष्यसमविष्ठताजन्यलं पविऽपि दातुं प्रणालीमाह्, विपर्यय दित। तलोटीति।
यदा ययक्षतं तदित्यर्थः, मालपदेन तदभावव्युदासः। ददमेव व्यवस्थापयित, श्रन्यथेति। तयालापत्तेः जन्यलशक्षाप्रतिवस्थकलापत्तेः,
तच्छू यलं वक्ष्यभावसमविहतलं न च तहृत्तिभिन्नलाप्रसिद्धेरन्यतरलाप्रसिद्धः, विक्षव्याप्तिकारणस्तोमस्यैव तथाविषस्य सच्चात् न च।
तथापि नान्तरीयके व्यभिचारः, तावतापि प्रकृते प्रयोजनस्थापत्यूहलात्। केचित्तु विक्षविक्षसमविहतः तच्छून्यं तदभावसमविहतं
तदुभयजन्यान्यतरो न स्थादिति च योजना, श्रतएव कचित्युस्तके तथैव पाठ दत्यप्याद्यः। तथा पर्य्यवसायिता तल्लोटिमालपर्यवसायिता। क्षचिदिति। स्वयं वच्यमाणतर्को दत्यर्थः।
तथोपस्थितीति। ताद्यविश्रिष्टपचीपस्थितीत्यर्थः। नन्वत्र तक्रे

चावक्रेरित्यादिशङ्कादयमग्रे निरसनीयम्। वस्तुतो वक्काजन्यमपि विक्किसमविहतजन्यं वक्कासमविहता-जन्यञ्च सम्भवतीति विक्कान्यत्वपर्ध्यवसितं विक्किसम-विहतजन्यत्वं वाच्यम्। तथाच घटादौ व्यभिचारवार-णाय त्रापाद्यकोटिप्रतियोगिविशेषणार्थकं सत्यन्तम्, त्रजन्ये जन्ये च नान्तरीयके व्यभिचारवारणाय जन्य दृति तदर्थस्तु वक्कासमबधानकालीनविक्कितत्समवधाने-

यदि विज्ञिसमविहतजन्यो न स्थादित्यत विज्ञिसमविहतजन्यत्वं यदि विज्ञिजन्यत्वं तदानान्तरीयके व्यभिचारः।

श्रय विज्ञिष्टकारणस्तोमजन्यलं तदोहेश्यस्य विज्ञिन्यत्वस्यासिष्ठिः। किञ्च वस्तृतो विश्रिष्टाभावानगाहिनोऽपि विपर्थयस्य विश्रिष्टाभावलेनैव विषयता, तथा चासङ्गतिः, एवं वज्ञासमविहताजन्यलस्योभयत्र प्रवेशे गौरवादाह, वस्तुत इत्यादि।
ताद्यतको पञ्चधन्मैताबलनभ्यस्यापि साध्यस्यान्यथासिष्ठिं प्रदर्शयति, वज्ञाजन्यमपौति। श्रतएव वज्ञासमविहताजन्यमित्यपि पाठः,
तस्य पञ्चतावच्छेदकविशिष्ट्यस्मीरकत्वात्, श्रुष्ठविज्ञसमविहताजन्यत्वाभावस्य घटादिसाधारणत्वात्, श्रापाद्यकोटौति। जन्यत्वे विशेषणमित्यर्थः। क्रमण श्रष्ठस्य विविच्चतस्य च व्याद्यक्तिं प्रदर्शयति,
श्रजन्य इति। विविच्चतमेवाह, तद्यैस्विति। जन्यत्वप्रवेशे गौरवादाह, तथाविधेति। निकष्टं तह्भैयति तथाचेत्यादि सत्यन्तार्थ-

तरयावत्कारणजन्यत्वं, तथाविधयावत्कारणकाति यावत्, तथाच वङ्गासमविहताजन्यत्वे सति वङ्गा-

व्यावित्तस् खयसुत्तेव । नान्तरीयके विज्ञतसमवधानेतरयावला-रणलस्य सलादाइ, वज्ञासमवधानकालीनित । वज्ञासमवधान-कालीनयावलारणलाभावस्य धृमे सलादिष्टापत्तेराइ, वज्ञीत । एकैकदाने तथाचेष्टापत्तिरित्यत उभयं विज्ञसमवधानं विज्ञकारण-तानिर्व्वाइकप्रत्यासत्तिः । न च विज्ञ्ञ्ञाप्यं नान्तरीयके व्यभि-चारतादवस्त्यं, तत्र हि तसमवधानेतरस्य धूमस्य वज्ञासमवधान-कालीनलाभावादेव व्यभिचारवारणिमिति, श्रतएव वज्ञेः स्नातन्त्रेर-णापि निर्देशः ।

दस्यनादेविज्ञासमबधानकालीनलात्रान्तरीयके व्यभिचारताद-वस्यमित्यतो यावदिति । नन्वत्र तथापीष्टापत्तिः, यावलारण-मध्यपतितस्य धूमावयवस्य वज्ञासमबधानकालीनलाभावात् दति । श्रत्राद्यः धूमस्य दध्यादितुल्यतया धूमद्वाणुक एव विज्ञ-जन्यलं यदभिप्रायेणैतस्य तर्कस्थावतार दति तस्थावयवः पर-माणुरूपो वज्ञासमवधानकालीन एविति, न तत्रेष्टापत्तिरिति । न चान्वयव्यतिरेकप्रदर्भनं स्थूलमादायविक्डमिति वाच्यम्, स्थूलान्वयव्यतिरेकस्यैव परम्पर्या तदनुमापकलेनेव उपयोगित्वा-दिति केचित् । परे तु यावलारणव्यक्तेवेज्ञासमवधानकालीनत्वं न धूमस्थलेऽपि विज्ञसमनियतिस्थनादिव्यक्तेवेज्ञासमवधानकालीन-लाभावादतो यावलं कारणतावच्छेदकस्यैव विशेषणं, तथाच समवधानकालीनविक्तितसमवधानितरयावत्कारणको न स्यादिति पर्व्यवसितोऽर्थः। यत्तु नान्तरीयविक्तिके व्यभिचारवारणाय श्रापादककोटावेव विशेषणं सत्य-न्तार्थः, स च वक्त्राघिटतसामग्राजन्यत्वमिति तन्न प्राक् तदिसिक्षेः॥ ६॥

यावन्ति कारणतावच्छेदकानि तदालिङ्गितस्यैव प्रत्येकं वद्गा-समवधानका जीनत्वं वक्तव्यम्। एवश्व धूमं प्रत्यपि धूमावय-वलेनैव न कारणत्वं म्रवयवत्वस्य समवायिकारणत्या भाका-ययात्, किन्तु दध्यादाविव पृथिवीलेनैव, रूपविशेषादिसु दध्यादी रमविशेषादिरिव सहकारीति नातिप्रसङ्गः। तथाच पृधिवी-लावच्छितस्य वक्त्रासमवधानकालीनलात्रानुपपत्तिरिति समा-दिधरे। न चार्ट्रेस्वनिक्रयाध्वंसे क्रियानन्तरोत्पत्तिकेन विज्ञना सह यः संयोगस्तज्जन्धे व्यभिचारः, भावलेन विशेषणात् (१) श्रापादक-कोटाविति विक्रजन्यलाभावरूपे विक्रसमविद्याजन्यल द्रत्यर्थः। वद्घाघटितेति। अन तदघटितलं तदविषयकप्रतीतिविषयलं, विज्ञिचिटितसामग्रा वज्ञाविषयकप्रतीत्यविषयत्वात्। प्रागिति विज्ञन्यलसंगयद्यायां विज्ञघिटितसामग्राजन्यलस्य । यहीत्मग्रव्यतादिति सिडे विज्ञिन्यते पचिविशेषणीभृतवज्ञा-घटितसामग्रजन्यत्वस्य निश्वयः, निर्णीते च तस्मिन् पच्चधर्मता-बलात् वक्किजन्यलस्य निर्णय इत्यन्योन्यात्रयः, तेन च स्वमतेऽपि

^(!) इं, नचेत्यादिः विशेषणादित्यन पाउन्तु सर्वेसिन् प्रस्तवे नास्ति ।

तस्मात्तत्तदुपादानमेव तादृशयङ्गाप्रतिवस्थकं यङ्गायां न नियतोपादानं नियतोपादाने च न यङ्गा, तदिदमुत्तं तदेव द्यायङ्गाते यस्मिन्नायङ्गमाने

यवाद्या दयी शङ्का दृष्टापत्तिपर्ध्यवसायिनी, दितीया पुनरापादकाद्यप्रसिद्धपर्ध्यवसायिनी, अवङ्केः विद्वश्रन्धात् तदुपादानमिति करणव्युत्पत्था तदीयकार्ध्यप्रयोजक-ताज्ञानपरम् तादृशान्वयव्यतिरेकानुविधानवोधपरं वा यग्रेतनमपि स्वक्रियापदं तत्परमेव क्रत्यादेः शङ्का प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् कारणताग्रहोत्तरकालीन-

विज्ञिसमविज्ञानिस्यलं दुर्ये हं, धृमविग्रेषे वज्जाभावविग्रिष्टकारणा-जन्यलस्य सुग्रहलादिति ग्रस्मकाते तस्यैव पचलादिति ॥ ६॥

स्रवित । स्विविचित्रतर्नेत्यर्थः । इष्टापत्तीति । उभयथापि वद्या-समविद्याजन्यलिविशेषणाभावाद्योध्या । श्रापादकादीत्यादिपदेना-पाद्यपरिग्रहः । ननु स्रविद्धलं विद्धिभिन्नत्वं, तथाच विद्धिभिन्नजन्य-लेऽपि वद्यासमविद्याजन्यत्वं स्थास्यतीति कृत दृष्टापत्तिरित्यत साह, स्रवद्धेरित । उपादानपदस्य भावत्युत्पन्नतया क्रातिप्रसिद्धतया विविचितासिदित्यत साह, करणेति । तदीयकार्य्यं धूमादि । ननु प्रयोजकलस्थान्यथासिदिचतुष्ट्याभावप्रविशे गौरवादाह, ताद्यपित । नियतित्यर्थः । क्रत्यादेरित्यादिना क्रियापरिग्रहः । ननु कारणलग्रहान्यथानुपपत्तिरेव मानमत द्याह, कारणतित । सित्रयात्राचातो न भवतीति, न हि सस्भवति खयं वज्ज्ञादिकं धूमादिकार्थ्यार्थं नियमत उपादत्ते, तत्-कारणं तन्नेत्याशङ्कते चेति, एतेन व्याचातो विरोधः,

वाच। यद्यपि चैतावता धूमलाविक्छ मं प्रति वज्ञेजैनकत्वं नायाति त्यणारिषामिणिन्यायेन वैकल्पिककारणतायामि तथात्वसम्भवात्। तथापि विशेषाणां
कार्य्यकारणभावग्रहस्तर्केण न तिहरोधशङ्कायामपनीतायां जायमानः, सामान्यव्यभिचारानिर्भयानुगतागुकविशेषक्षपान्तरानुपिस्थितिलाघव-प्रतिसम्धानादि-वशात्
सामान्यत एव तं परिक्षिनित्त, प्रामाणिकौ च तथैवा-

ननु विक्रिसमविह्ताजन्यत्वं धूमविशेष एव निरटक्वीति तस्यैव पचलं तल्तुतः सामान्यतः कारणताग्रहः इति शक्कते, यद्यपीति। तथात्वं विशेषे नियतान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वस्। अपनीताया-मिति। विशेषे नियतान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वरूपव्यावर्त्तकधर्म-दश्नादित्यादिः। सामान्येति। तेन द्रव्यत्वनिरासः। अनुगतेति। न तद्रमत्वनिरासः, अगुर्विति। तेन चच्चःकटुजनकद्रव्यत्वादि-निरासः, सामान्यतं एव धूमत्वेनैव तत्कार्य्यकारणभावं परिच्छेदो विषयिकरणं प्रामाणिकौ प्रमाणकौ, तथैव तादृशसामग्रीसम-वधानेनैवाप्रामाणिकौ प्रमाणसिद्धौ तथैव सामान्यत एवंत्यिषः, केचित्तु ननु सामान्यतो व्यभिचारशङ्कासन्त्वे कयं ग्रह द्रत्यत आह, स च सहानवस्थाननियत द्रित तवाप्यनवस्थेति निरसं स्वक्रियाया एव शङ्काप्रतिवस्थकत्वात्। अतएव व्याघातो यदि शङ्कास्ति न चेक्कङ्का ततस्तराम्॥०॥

न्वयव्यतिरेकी, फलबलेन लाघवज्ञानादिश्न्याया एव सामान्यव्यभिचारशङ्कायाः प्रतिवस्थकत्वं कल्पाते। अपरे तु धूमत्वाविक्षित्तस्य वज्ञाजन्यत्वेन जन्यत्वविशि-ष्टस्य यथाश्वतवज्ञासमविह्ताजन्यत्वस्य व्यतिरेक एवा-पादनीयः तच्चोक्तन्यायेन तादृशविज्ञयुक्तकारणक्षलाप-जन्यत्वग्रहेण तद्यातिरेकजन्यत्वशङ्कानिरासात्, विज्ञ-

फलवलेनीत। तथाच लाघवज्ञानमुत्तेजकिमिति। उक्तसामगीव्यतिरेकिऽपि धूमलाविच्छिनस्यैव प्रथमत एव विक्किनस्यलग्रह इति ये
वर्णयन्ति तन्मतमाह, अपरेलिति। यथाश्रुतेति। तेन प्रगल्ममतनिरासः, एतत् सिडतर्कश्च धूमलाविच्छिनो धूमो यदि विक्किनस्यो
न स्याज्ञन्यले सित वक्कासमविद्याजन्यो न स्यादित्येवं रूपः,
वक्कासमविद्याजन्यलस्य विशिष्यलानुधावनं प्रामाख्यल्यापनाय
तेन तित्रर्णयस्यैव शङ्काप्रतिबन्धकलं, अतएवोपादानपदमिष अग्रे
तत्परतया व्याख्यास्यते, धूमलाविच्छित्रलस्यैव वक्कासमविद्याजन्यलं ग्राह्यति, तचेति। अग्रे सुग्रहमित्यनेनान्वितम्। उक्तन्यायेनीति श्राभासोक्षान्यायेनीत्यर्थः। तदिति। विक्कियुक्तकारण-

विरहेऽपि निरितशयसेव तादृशसमूहस्य धूमजनकल-सन्देहस्य च तथाविधात् धूमानुत्पाददर्शनेनेवायोगात्, तादृशसेव क्वचिद्विः क्वचित्वेतरदासायजनकत्वसम्भाव-नायाश्व क्वचिह्नमानुत्पादप्रयोजकत्वेनावधृतस्य विद्व-विरहसेव तथाविधसमूहत्वे धूमानुत्पत्तिसामान्यं प्रति लाववात्, प्रयोजकत्वनिर्भयनापनयान्मनसेव सुग्रहं, विद्वविद्विसमवहितस्योपादानम् ॥ ०॥

कलापेत्यर्थः । अस्यैव कलापस्य वद्घासमविहततादशायां जन्यत्व-गद्धां निरस्यति, विद्विविद्वेऽपौति । निरित्ययस्य निर्विशेषितस्य, तथाविधात्र वद्घासमविहतात्र । ताद्द्यस्यैव तथा कलापस्यैव कालिकसमवधानस्वादस्य दैशिकं व्युदस्यति, क्षचिचेतरदिति । ताद्द्यस्तोमस्यैव वद्घाभावदशायामित्यर्थः । अपनयादिति । सभा-वनाया इत्यनेनान्वितम् । केवित्तु अवद्वेरित्यादिश्वद्धाया आदा-दलेन निरासः । कविद्विद्धं विनेत्यस्थाः श्रद्धायाय वद्घिविरहे-ऽपौत्यादि दाभ्यां निरासः इत्यथमाद्धः । तच ताद्दश्यद्धयोर्मूल-कता तर्क एवोत्यापयिष्यमाणतया सन्दर्भविद्धमिति । धूम-सामान्येन विद्दिरित्यलौकिकसितकर्षाभावात् तद्दिश्यक्षाना-सभावादाह्, मनसेति । ननु वद्घेरवित्यच विद्धिभित्वानुपादानं प्राप्तं, तच न श्रद्धाप्रतिबन्धकमिति वद्घासमविह्नताजन्यत्वमेव श्रद्धा-प्रतिबन्धकतया विवचन्नाह, वद्घेरिति ॥ ७॥ व्याचाताविधराशङ्का तर्कः शङ्काविधः कुत द्रित खग्डनकारमतमप्यपास्तम्। न हि व्याचातः शङ्का-श्रितः, किन्तु स्वक्रियैव शङ्काप्रतिबन्धिकेति न वा

त्रव च नियमव्यवक्तियस्य वज्ञासमवहितानुपादानस्य प्रयोजकी तदजन्यत्वज्ञाने परम्परया वज्ञिसमविह्नतीपादानस्य वा प्रयोजकी तव तात्पर्व्यम् । यन्त्वन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानमेव विशेषदर्शनतयाशङ्काप्रतिबम्बकं तदेव तर्कघटकं, तदिदमुकं यदि
ग्रहीतान्वयव्यतिरेकं हितुमितीति तद्ग, यादक्किकस्य

नन् तथाप्युपादानं कयं प्रतिबन्धकिमत्यत श्राह, श्रव चेति।
तथाच विक्रिसमविहतस्य नियमत उपादानं कयं कुर्यादिति
मूले कथिमत्यव यो नियमव्यवच्छेदस्तिषयस्य वक्रासमविह्ततानुपादानस्य प्रयोजक इत्याश्यः कल्पाः। एतंन वक्रासमविह्ततस्योपादानमेव नियमव्यवच्छेदां, न तु वक्रासमविहतानुपादानिमत्यसङ्गतिप्रदर्शनं परास्तम्। ऋजुमार्गेण वक्रासमविह्तताजन्यत्वज्ञानमेव मृलतात्पर्यविषयतया व्याचचाणः कल्पान्तरमाह, परम्परयेति। वक्रासमविहतताजन्यत्वे ज्ञाते तर्कः
तर्के च सित विक्रजन्यत्वज्ञानं तिस्मन् सित विक्रिसमविहतस्योपादानिमत्येवं रूपया। तत्र वक्रासमविहताजन्यत्वज्ञानं, विश्रपित। व्यावन्तैकत्यर्थः। यादिष्ठकस्य यिलाचिद्यात्तिनष्ठस्य,

विशेषदर्शनात् क्वचित् शङ्कानिष्टत्तिरेवं स्थात्, न चैतादृशतकावितारो भूयोदर्शनं विनेति भूयोदर्शनाद्रः, न तु स स्वत एव प्रयोजकः, अतएव न तदाहित-

तदनुविधानस्य व्यभिचारित्वाद्वियतस्य चोक्ताभेद-सम्पादकत्वादिति वदन्ति तचिन्त्यम्। केचिनु कार्य्यकारणभावग्रहानन्तरं व्याप्तिग्रहाय व्यधिकर-णस्य जनकत्वशङ्कानिरासार्थमयं तर्कः, तयाच धूमो यदि सामानाधिकरण्यातिरिक्तप्रत्यासच्या वङ्काजन्यत्वे सति सामानाधिकरण्यप्रत्यासच्या वङ्किजन्यो न स्यात्, वङ्किजन्यो न स्यात्। अप्रत्यासन्नस्याजनकत्वात्,

व्यभिचारित्वात् अव्यावक्तं कत्वात्, नियतस्य तद्वभीविच्छत्नस्य, छक्तेति। धूमत्वाविच्छत्नकारणत्वं यथा प्रागग्यहीतं तथा तद्वमी-विच्छत्नान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वमित्वर्थः। छक्तं तच्चोक्त-व्यायेनित्यादिना तदभेदपर्य्यवसानात्र मतभेद द्रति केचित्र, तच्च दूषणसङ्गतिश्चिन्तीया तिच्चत्यमिति। नान्तरीयके व्यभिचारा-दिति। यदि प्रागुक्तविवचाया नान्तरीयके व्यभिचारो व्यदस्यते, तदा धूमानुत्यत्तिं प्रति विच्चितरहप्रयोजकत्वं यदुक्तं तच्छियित्य-मेवानेनोक्तमित्यन्ये। लाघवज्ञानस्यावस्थकत्वे उक्तलाधवज्ञानाजन्य-त्यम् एवास्तु किमनेनायासेनेत्यर्थः। द्रत्यपि कश्चित्रान्तरी-यके व्यभिचारं प्रकारान्तरेण खण्डयतामतमाह, कीचित्विति।

संस्कारो न मानान्तरं तर्कस्याप्रमात्वात्, तच प्रत्यच-व्याप्तिचाने हेतुः, तदभावेऽपि शब्दानुमानाभ्यां तद्-ग्रहात्॥ ८॥

तादशाजन्यत्वञ्च प्रत्यासत्यन्तरशालिव क्रिसत्वेऽिष धूमानृत्पादादिना ग्राद्यमिति द्रदमेव च वाचोभङ्गा परे
परिष्कुर्व्वन्ति, धूमो यदि वङ्ग्यनिधकरणदेशानुत्पत्तिकत्वे सित वङ्ग्यिधकरणदेशोत्पत्तिको न स्थात् जन्यो
न स्थात्। ताद्यशानुत्पत्तिकत्वग्रहञ्च धूमानुत्पत्तिं
प्रति विक्रसम्बन्धाभावस्य प्रयोजकत्वे ग्राद्ये उपस्थितत्वाक्षाववाच्च, ताद्यसम्बन्धाभावस्यैव तथात्वावधारणादिति तिचन्त्यम्। मित्रास्तु परं प्रति व्याप्तिग्रहोपाये प्रदर्श्वमाने व्यभिचारशङ्कानिरासहितुत्वेनोपदिश्चितं तक्षे मूलशैथिल्यादिशङ्को द्वावकं तं प्रति व्याघा-

प्रत्यासत्त्रकारित। सामानाधिकरखातिरिक्तेत्वर्थः । इदमैव चेति । व्यधिकरणस्य जनकलग्रङ्गानिरासरूपमुख्यप्रयोजनस्योभयत्र तुल्य-लादित्वर्थः । ताद्यसम्बन्धः सामानाधिकरख्यम् । तथालं प्रयो-जकलम् । तिच्चत्यमिति । उक्तयुक्त्या विज्ञजन्यलस्यैव प्रागिव सामानाधिकरखार्थविषयलादिति ताद्यम्लाघवज्ञानस्य विज्ञ-जन्यलग्रह एव सहकारिलकल्पनस्तु किमैतावताप्रयासेनेत्यपि ननु सच्चारदर्शनव्यभिचारादर्शनवद्यभिचारशङ्का-विरहानुकूलतर्कयोर्ज्ञानं व्यभिचारिसाधारणमिति न ततोऽपि व्याप्तिनिश्चय दृति चेन्न खरूपसतोरेव तयो व्याप्तियाहकत्वात्, सत्तर्काद्याप्तिप्रमा तदाभासात्तद-

तोऽयमुपदभ्यंते, मैवं शिक्षिष्ठाः, तथा सित तत्तत्कार्याः धितया तत्र तत्र कारणे तवैव प्रवृत्तयोव्याहन्येरन् यदाह न हि सम्भवति स्वयं वक्त्रादिकमितीति प्राहुः। तचेति। तत् व्यभिचारादर्भनं व्यभिचारज्ञान-सामान्यामावः योग्यतादिसन्देहेऽपि शब्दादिना अर्थ-निश्चयात् तत्तर्कस्वरूपमिति केचित्॥ ८॥

नन् वस्तुतो व्याप्तिसच्चे तर्काभासात्रमाधमयी-

किश्वत । परं चार्ळीकं, मूलं व्याप्ति ग्रैथिल्यं, तत्न तर्कादानवतार उपदर्भनमेवाह, मैविमिति । ग्रन्थसमातं दर्भयति ।
यदाहिति । प्राहुरिति । तथाच उपादानपदस्य सम्मुख्याथैलमेव
प्रकर्षः । व्यभिचारज्ञानेति । ग्रन्थेऽपि व्यभिचारज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात् सामान्यपदम् । योग्यतादौति । तथाच तज्ज्ञानसामान्याभावस्तत्न न हेतुरिति भावः । स्वरूपमिति । नपुंसकत्वनिर्वीहार्थम् ॥ ८ ॥

तकाभासादिति। धूमो यदि वङ्गिव्यभिचारी स्थाइव्यं न

प्रमा विशेषदर्शनसत्यत्वासत्यत्वाभ्यां पुरुषज्ञानमिव। ज्यपरे तु यव तर्के व्याप्त्रानुभवो सृलं, तव तर्कान्तरा-

कत्यादानुत्यादाभ्यां व्यभिचार दृत्यत श्राह। विशेषदर्श-नेति। तथाच यथा तस्य बीध्यतदभावतिहषयत्वे सत्यत्वासत्यत्वे तथा तर्कस्यापीति, श्रच च सत्यत्वादि-सम्पादके धिर्माणो बीध्यादिमत्त्वे बीध्यादिमहिम्नी-सिद्मकर्षे वा तात्पर्ध्यं लाघवात्, तर्कस्य व्यभिचारेणा-हितुतायाः स्वयमेव दर्शितत्वाच। श्रथ विपरीत-द्वानोत्तरप्रत्यचे तिद्मवर्त्तकत्वेन विशेषदर्शनस्य हितुत्वं

स्यादित्याकारात्मकादित्यर्थः। व्यभिचार इति। श्रायस्य व्यतिरेकव्यभिचारोऽन्त्यस्यान्वयव्यभिचार इत्यर्थः। बोध्येति। विशेषादर्भनस्य सत्यत्वे यत्र पदपाद एवकारम्बमो ज्ञातस्तव व्यभिचार
इति इदमुक्तमिति भावः। ननु व्याप्तिमत्तर्कस्य प्रमाहेतुत्वापेचया व्याप्तिमत्वमेव प्रयोजकमस्त्वत्यभिप्रायेणाह, श्रत्न चेति।
ननु व्याप्तेवौक्तिकप्रत्यचाविषयत्वं प्राप्य यथा व्यवस्थापितं प्रागिव,
तथाचाबौकिक तज्ज्ञाने व्याप्तेः कथं कारणमित्यत श्राह, बोध्यादीति। ननु सित्रकर्षः कचित्तद्वानं, यत्न च बौक्तिकप्रत्यचं तच च
संयुक्तसमवायादिरित्यतोऽननुगमात्तदपेच्य तर्कस्यैव तथात्वमसु
दत्यत श्राह, तर्कस्य चेति। दिश्वतित्वादिति। यत्न व्याघातादिना
शक्षाया सभावस्तत्वैवेत्यर्थः। विपरीतिति। भ्रमसंग्रयोत्तरेच्छा-

पेचा, यव तु व्याप्तिस्मरणं हितुः, तव न तर्कान्तरा-पेचेति नानवस्था, श्रस्ति च जातमावाणामिष्टानिष्ट-साधनतानुमितिहेतुव्याप्तिस्मरणं तदानीं व्याप्तानु-भावकाभावात् तन्मूलानुभवमूलाचाग्रेऽपि व्याप्ति-स्मरणपरम्परेति। यन्त्वनादिसिडकार्व्यकारणभाव-विरोधादिमूलाः केचित्तर्का द्रति तद्ग, तव प्रमाणानु-

तच तर्कस्थापीति चेत्। यसु तावदापाततस्वया,
तथाप्यन्यव क्रुप्तप्रामास्थादिप्रयोजकादेव तच प्रामास्थाद्यपपत्ती न तस्थापि विशेषतः कारणत्वं गौरवात्।
उक्तच विशेषणज्ञानस्य विशिष्टज्ञानकारणत्वमते सर्व्वच
विशेष्यसम्बन्धासम्बन्धज्ञानमेव प्रमाधमप्रयोजकमिति
वदन्ति। तव प्रमाणिति ददमनादिसिद्यत्ज्ञानस्थ

प्रसिचं इत्यर्थः। तिविवक्तं कालेनेति। श्रमादिविरोधिलेनेत्यर्थः। श्रापातत इति। तादृशप्रत्यच्चलं कार्य्यतावच्छेदकमेव न श्रयवित्वस्थावस्थकलेन तत्तदाक्तिल एव विश्वामात् श्रयंवग्रमम्बन्द्वाचाऽभ्युपेत्य समाधन्ते, तथापीति। श्रन्यवेति। बोध्यादिमत्-सिक्कं वेकिमित्युक्तं प्रागित्यत श्राहः। उक्तच्चेति। विशिष्य-सम्बद्धं यद्विशिषणं तस्य ज्ञानिमत्यर्थः। ननु पूर्व्वपचे कार्य-कार्यभावे वास्तवमनादिलसुक्ता दूषणे प्रमाणगवेषणं मूल-

योगेऽनुमान एव पर्ध्यवसानात्। न च व्याप्तिग्रहा-न्यथानुपपत्त्येव तर्कस्थानादिसिडव्याप्तिकत्वज्ञानिमिति वाच्यम् अनुपपत्तेरप्यनुमानत्वात्। अन्ये तु विपच-बाधकतर्कादनीपाधिकत्वग्रह एव तदधीनो व्याप्तिग्रह द्रति तदपि न तर्कस्थाप्रमाणत्वात्।

प्रयोजकत्वमिभप्रेत्य परार्थाभिप्रायेण वा अनुमानत्वात् व्याप्तिग्रहाधीनप्रवृत्तिकत्वात्। व्यभिचारग्रङ्गेति दारेण दारिणो नान्यथासिडिरिति भावः। अनुमानमात द्रति अनिश्चितसाध्यपचके सर्व्वत सम्भवित्वात्, पचे साध्यनिर्भयेऽनुमानवैयर्थ्यात्, उपाधित्वेन खव्यभि-चारेण व्यभिचारोन्नायकत्वेनानुमानमात्रोच्छेदकता-चानमेव साध्यव्यापकताबुडिं विक्रस्थादित्याग्रङ्गाह,

क्कताक्कतं तच न घटत इत्यत आह, इदमनादीति। अभिप्राय-शक्कोचादाह, पराधेति। तथाच प्रमाणमवस्यमेव गवेषणीय-मित्यर्थः। खमतेऽथीपत्तेरतिरिक्तप्रमाणलमभिप्रेत्य मूलं तत्साधा-रखेन योजयति। व्याप्तिग्रहीत। ननु यत पचे साध्यनिश्यो जातस्तत पचेतरस्यानुपपत्यानुमानमाचमिति मूलं न घटत इत्यत आह, अनिश्विति। अनिश्वितसाध्यके साध्यनिश्याधैमनुमान-कल्पने सामागीवनानिश्वितसाध्यकेऽपि तत्करुयत अनिश्वितसाध्य-

Markandeya Purana, Fasc. 5-7 @ /10/ each	a • •	***		1	14
*Mimāinsā Darçana, Fasc. 10-19 @ /10/ each	• • •	• • •		G	Ť
*Nyāyavārtika, Fasc. 16 @ /10/ each	0.8	•••		3	12
*Nirukta, Vol. IV. fasc. 1-8 @ /10/ each	• • •		• • •	5	0
*Nitisara, Fasc. 3-5 @ /10/ each		•••	• • •	1	14
Nityācārapaddhatih, Fasc. 1-7 @ /10/ each	171 19	 @ /10/ anal		4	6 14
Nityācārapradīpah Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II,	Pasc. 1-5. (@ /10/ eaei	٠	6. 0	10
Nyayabinduṭīkā, Fasc. 1 @ /10/ each *Nyāya Kusumāñjali Prakaraṇa Vol. I, Fasc. 2	26 · Vol 1	I Fasc.	•••	٠,	10
1-3 @ /10/ each		2, 2 0500		5	0
Nyayasarah				2	0
Padumawati, Fasc. 15 @ 2/				. 10	. 0
*Parigista Parvan, Fasc. 35 @ /10/ each	***			1	14
Prākrita-Paingalam, Fasc. 17 @ /10/ each	•••			4	ď
Prithivirāj Rāsa. Part II, Fasc. 1-5 @ /10/ eac		•••	****	3	2
Ditto (English) Part II, Fasc. 1 @ 1/		•••	•••	1	0
Prākrta Laksanam Fasc. 1 @ 1/8/ each	1 6 . V	.1 117	•••	· 1	. 8
Paraçara Smrti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fa		01 111,		12	- 8
Fasc. 1-6 @ /10/ each Parāçara, Institutes of (English) @ 1/- each	•••	•••		1	0
Pariksamukha Sutram	***			i	ŏ
Prabandhacintāmaņi (English) Fasc. 1-3 @ 1/4/				3	12
Rasarnavam, Fasc. 1-3	•••			3	12
Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ /10/ each				1	4
Samaraieca Kaha Fasc. 1-3, @ /10/	• • •			1	14
Sankhya Sutra Vrtti, Fasc. 1-4 @ /10/ each	•••	•••	• • •	2	8
Ditto (English) Fasc. 1-3 @ 1/-	each	•••		.3	0
Sankara Vijaya, Fasc. 2-3 @ /10/ each	•••	•••	•••	1	4
Six Buddhist Nyaya Tracts	•••	• • •		0	10
Srāddha Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ /10/ each	***	***	• • • •	3 2	12
Sragdharž Stotra (Sanskrit and Tibetan) Sucruta Sanhitá, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each	• • •	•••	• • • •	1	.0
Suddhikaumudī, Fasc. 1-4 @ /10/ each	•••			2	18
Sundaranandam Kavyam				ī	9
Suryya Siddhanta fasc. 1				1	41
Syainika Sastra	12.44			1	0
*Taittreya Brahmana, Fasc. 11-25 @ /10/ each				9	6
" Pratisakhya, Fasc. 1-3 @ /10/ each				. 1	4
*Taitteriya Samhitā, Fasc. 27-45 @ /10/ each	•••	•••	•••	11	14
Tāndya Brāhmana, Fasc. 10-19 @ /10/ each				. 6	14
Tantra Värteka (English) Fasc. 1-8 @ 1/4/ each	1 10 1	TITE IN	1 0	10	0
*Fattva Cintamani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, F. Vol. IV. Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part IV. Vo.	l II Face	1.12 @ /10	each	24	6
Tattva Cintamani Didhiti Vivriti, Fasc, 1, @ /1	0/ each	12 (49 / 10)	cucii	0	0
Ditto Prakas, fasc. 1-2, @ /10/	each			ž	4
Tattvārthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ eac	ch			1	14
Tirthacintamoni, fasc, I, @ /10/ each				. 0	10
Trikānda-Mandanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each				1	11
Tul'si Satsai, Fasc. 1 - 5 @ /10/ each		***	***	3	2
*Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-2, 5-13	@ /10/ each	•••	•••	6	14
Uvāsagadasāo, (Text and English) Fasc. 1-6 @ 1. Vallāla Carita, Fasc 1 @ /10/	/- eacn	• • •	•••	6	0
Varşa Kriya-Kanmudî, Fasc 1-6 @ /10/ each	***		•••	0	10
*Vāyu Purāņa, Vol. I, Fasc. 36; Vol. II, Fasc.	1-7 @ /10	/ each	***	3 6	12
Vidhāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc. I @	/10/ each	,		5	10
Ditto Vol. II, Fasc. 2-4 @ 1/4/				3	12
Vivadaratnakara, Fasc. 1-7 (a) /10/ each			/54 144 24447	4	
Vrhat Svayambhū Purāņa, Fasc. 1-6 @ /10/ eac	h	1. 1.0/3		3	
*Yoga Aphorisms of Patanjali, Fasc. 3-5 @ /10/	each	••»	•••	1	
Yogasāstra of Hemchandra Vol. I. Fasc. 1-3				3	
		1. Att - 100 h	100		
Tibetan Seri	es.			2	0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.)		***			
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1	4 @ 1/- eacl	1		4	0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1- Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1	4 @ 1/- eacl	1		4 1	0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1— Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Țiĥ, Fasc. 1 @ 1/- cach	4 @ 1/- eacl	n		4	0 6
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1 Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. I Pag-Sam S'hi Ţiĥ, Fasc. 1‡ @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Ayad.	4 @ 1/- eacl	n		4 1 4	0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1 Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Ţiĥ, Fasc. 14 @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Avad. Fasc. 18; Vol. II. Fasc. 1-7 @ 1/- each	4 @ 1/- eacl	vol, I		4 1 4	0 6 0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1—Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Țiĥ, Fasc. 14 @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Avad. Fasc. 18; Vol. II. Fasc. 17 @ 1/- each Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 15; Vol. II, Fasc. 13; Arabic and Persia.	4 @ 1/- eacl	Vol. I.		4 1 4	0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1—Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Țiĥ, Fasc. 14 @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Avad. Fasc. 18; Vol. II. Fasc. 17 @ 1/- each Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 15; Vol. II, Fasc. 13; Arabic and Persia.	4 @ 1/- eacl	Vol. I.		4 1 4	0 6 0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1- Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Țiĥ, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Avad. Fasc. 1-8; Vol. II. Fasc. 1-7 @ 1/- each Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; Arabic and Persiat Alamgirnāmah, with Index. (Text) Fasc. 1-13 @ Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/-	4 @ 1/- each Äĥa Kalpala Vol. III, Fan Series. 2 /10/ each	Vol. I.		4 1 4 15 14	0 0
Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & Sans.) A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1— Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 Pag-Sam S'hi Tiĥ, Fasc. 14 @ 1/- cach Rtogs brjod dpag hkhri S'iĥ (Tib. & Sans. Avad. Fasc. 18; Vol. II. Fasc. 17 @ 1/- each Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 15; Vol. II, Fasc. 13; Arabic and Persia. Ålamgirnāmah, with Index, (Text.) Fasc. 113 (4 @ 1/- each Äĥa Kalpala Vol. III, Fan Series. 2 /10/ each	Vol. I.	1/ each	4 1 4 15 14	0 0 0 0

Akbarnamah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each... ... 55 8
*The other Fasciculi of these works are out of stock and complete copies cannot be supplied.

Ain-)-Aklan, Fasc 1-22 @ 1/8/ each		614 F 77.1 77		33	0
Intto (English) Vol I, Fase 1-7, Vol Ditto (English) Vol I, Fase 1-8; Vol II,	II, Fasc. J	10, YOU 11 Val:: @ 1/2	1, 1/aach	36	0
Ditto (English) Vol I, Fasc. 1-8; Vol II, Arabic Bibliography, by Dr. A Sprenger. 3 /10)/ ((· · ·	i, caen	20	10
*Bādshāhnāmah, with Index, Fasc. 119 (2) /10,				11	14
Conquest of Syria, Fase 1-9 @ /10/ oach	,		Rs.	5	10
Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2	@ 1/- each	1		2	0
Catalogue of the Persian Books and Manuscrip		ubrary of th	he	_	
Asiatic Society of Bengal Fasc 13 @ 1/ cae	ch. Jene Wage	191011	0/ 22.3	3	0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appe Farnang-i-Rashidi, Fasc 1-14 @ 1/8/ each	minx, rasc	. 1-21 (w 1)		21	8
Fih rist-j-Pūsī oi, Tūsy's list of Shy'ah Books, F	Fasc. 1-4 @	1/- each		4	ő
Futūh-ush-Shām of Wāqidī, Fasc 1-9 @ /10/ ea		***	•••	5	10
Ditto of Azādi, Fasc. 1-4 @ /10/ each		***		2	, 8
History of Gujarat		••• <u>•</u>		1	0
Haft Asman, History of the Persian Masnawi, Fa			•••	0	13
Hisatory of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 @ 1,	/1/ each		•••	7 1	8
Iqālnamah-i-Jahāngīrī, Fasc 13 @ /10/ each Isābah, with Supplement, 51 Fasc @ 1/- each		•••	***	51	14
Ma'şāir-r- Alamgiri, Fasc 1-6 @ /10/ each		•••	•••	3	12
Maa'anir-ul-Umara, Vol I, Fasc 1-9, Vol II, Fas	sc. 19; V	ol III, 1-1	0;		
Index to Vol. I, Fasc. 10-11, Index to V	ol. II, F	asc 10-12	;		
Index to Vol. III, Fasc. 11-12 @ /1/ each	• •	***	• • •	35	0
Maghīzi of Wāqīdī, Fasc. 1-5 @ /10/ each Marhamu 'L Ilalı 'L-Mu'Dila	••	***	•••	$\frac{3}{1}$	2 0
Muntakhabu-t-Tawankh, Fasc 1-15 @ /10/ each	•••	•••	• • •	9	6
Ditto (English) Vol. I. Fasc	s. 17 , Ve				
1.5 and 3 Indexes; Vol. III, Fasc 1 @ 1/ cac	h			16	0
Muntakhabu-l-Lubāb, Fasc. 1-19 @ /10/ each		***	•••	11	14
Ditto Part 3, Fasc. 1		***	***	1	- 0
Nukhbatu-l-Fikr, Fasc. 1 @ /10/ Nizāmī's Khiradnāmah-i-Iskandari, Fasc 12 @ /	/19/ 00.3	•••		0 1	10 8
Qawaninu 's Sayyad of Khuda Yar Khan 'Abbasi,	edited in t	the original	***	1	0
Persian with English notes by Lieut. Col. D. C.		***		5	0
Riyazn-s-Salatin, Fasc 15 @ /10/ each .	• • •	444		3	2
Ditto (English) Fasc. 1-5 @ 1/	***	***		5	0
Tadhkira-i-khushnavīsān		* *	***	1	0
Tabaquāt-i-Nāşiri, (English), Fasc. 1-11 @ 1/- ea	ech	• • •	•••	14 1	0
Ditto Index Tārīkh-i-Fīrūz Shāhi of Ziyāu-d-dīn Barni Fasc 1	-5 @ 1101	ench	•••	4	6
Tärikh-i-Firuzshähi, of Shams-i-Sırai Aıf, Fasc. 1-				3	12
Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1-2 @ 1/8/ each		•••		3	0
Tuzuk-i-Jahāngirī, (Eng.) Fase 1 @ 1/		***	,	1	0
Wis-o-Ramin, Pasc. Io (@ /10/ each .	 G /3//	. 1.		3	2
Zafarnamah, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc 1-8	@ /10/ eac	n	***	10	10
ASIATIC SOCIETY'S PU	BLICATI	ONS.			
1. ASIATIC RESEARCHES. Vols. XIX and XX @		***		20	
2. PRODEEDINGS of the Asiatic Society from 1870	to 1904 @	/8/ per No)		
3. JOURNAL of the Assistic Society for 1870 (8)					
(8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 13					
1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 1888 (7), 1889 (10 , 1890 (11), 1891 (7).	1 (0), 100 190-2 (9)	0 (8), 1881 1882/110 ((/), (s.e. /		
(8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8),	. 1899 (8).	1900 (7).	1901		
(7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 r					
@ 2/ per No. to Non-Members					
N. BThe figures evelosed in brakets give the n				ne.	
Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date,					
stock), @ 1-8 per No. to Members and Rs.					
Memoirs, 1905, to date. Price varies fr Discount of 25% to Members	om numb	er on mun	,,Gi.		
6. Centenary Review of the Researches of the Soc	vieta from	1784-1883		3	0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Soc			•••	8	ė
		ai, 1910,			
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N	iety, Beng ew India		127 feb		{ }
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 0	iety, Beng ew India		o o ri	18	
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 0 9. Kaçınıraçıbdanırta, Parts I & II @ 1/8/	eiety, Beng ew Indias i/ cach	a Lepidopt	***	18	o
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ (9. Kaymira; platta, Parts I & II @ 1/8/	ew Indias of each alan, by	a Lepidopt Haji Sha	ikh		
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N. Parts IIII, with 8 coloured Plates, 4to. @ (9. Kaçıniraçıbdämrta, Parts I & II @ 1/8/10. Persian Translation of Haji Baba of Isp Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by	siety, Beng ew Indias b/ cach alian, by major D.	a Lepidopt Haji Sha C. Phillott	ikh	3 10	0
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ (9. Kaçmiraçıldämrta, Parts I & II @ 1/8/ 10. Persian Translation of Haji Baba of Isp Almad-i-Kirmasi, and edited with notes by Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by 1)	siety, Beng ew Indias 5/ cach cahan, by 7 Major D. @ 1/ cach r. R. L. M	a Lepidopt IIaji Sha C. Phillott	ikh	5 10 34	0 0 0
 Moore and Hewitson's Descriptions of N. Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ (9. Kaçıniraçıbdämrta, Parts I & II @ 1/8/10. Persian Translation of Haji Baba of Isp Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by D. N. B. — All Cheques, Money Orders, &c. must 	siety, Beng ew Indias 5/ cach cahan, by 7 Major D. @ 1/ cach r. R. L. M	a Lepidopt IIaji Sha C. Phillott	ikh	5 10 34	0 0 0
8. Moore and Hewitson's Descriptions of N Parts 1-III, with 8 coloured Plates, 4to. @ (9. Kaçmiraçubdämrta, Parts I & II @ 1/8/ 10. Persian Translation of Haji Baba of Isp Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by 1)	every, Beng ew Indias b/ cach alian, by major D. @ 1/ cach r. R. L. M be made p	i Lepidopt IIaji Sha C. Phillott itra oxyable to	ikh	5 10 34	0 0 0 0 3 sure